हिन्दी-प्रेमियोंसे अनुरोध

इस मण्डलके स्थायी ग्राहक होनेके नियम पुस्तकके अन्तमें दिये हुए हैं। आप उन्हें एक बार अवश्य पढ़ लें, और अपनी रुचिके अनुसार स्थायी ग्राहक होकर व अपने मित्रों-को बनाकर इस मण्डलकी पुस्तकोंके प्रचारमें सहायता पहुंचावें।

वर्ष १]　　सस्ती विविध पुस्तकमाला　　[पुस्तक ४
(सस्ती प्रकीर्णक पुस्तकमाला)

यथार्थ आदर्श जीवन

अर्थात्

विड़म्बन जीवन, पाश्चात्य जीवन, प्राचीन व अर्वाचीन
भारतीय जीवन, तुलनात्मक जीवन एवं
अनुकरणीय जीवन—जीवन
पञ्चकसे सम्पन्न।

लेखक—
बाजपेयि मुरारि शर्मा काव्यतीर्थ

प्रकाशक
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल
अजमेर

प्रथम बार]　　१९२६　　[मूल्य ॥-)

प्रकाशक—
जीतमल लूणिया, मंत्री
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल,
अजमेर

लागत का ब्योरा

कागज	२३४॥।)
छपाई	२७३)
बाइंडिंग	२७।)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन	
आदि खर्च	२९५)
कुल जोड़	८३०)

प्रतियां २०००

एक प्रति का मूल्य ।≈)॥

मुद्रक—
रामकुमार भुवालका
"हनुमान प्रेस"
३, माधो सेठ लेन, कलकत्ता।

उपोद्घात।

राष्ट्रभाषा हिन्दीकी सेवा करनेकी इच्छा रहनेके कारण यह पुस्तक राष्ट्रीय सेवाके नाते लिखी गयी है। इसमें पहला जीवन विडम्बन जीवन है जिसके द्वारा यह जनतापर व्यक्त किया गया है कि अर्वाचीन समयमें भारत अपनी आदर्श सभ्यताको भूलता जा रहा है और सम्भव है कि इस कारण अपनी सत्तातकको खो बैठे; क्योंकि वह जो पाश्चात्य सभ्यताकी नकल करता जा रहा है उसका प्रभाव दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है। इस विडम्बन जीवनमें पड़कर लोग बेतरह दरिद्र हो रहे हैं, कर्जके मारे वे यद्यपि चूर रहा करते हैं तथापि पाश्चात्य फेशनपर बाल कटवाते हैं; मूछें बनवाते हैं, रोज़ दाढ़ी मूंड़ी जाती है; साबुनसे देरतक बदन मला जाता है, सुगन्धित सेंट लगायी जाती है; कपड़े एक रोज बीच देकर बदले जाते हैं; मादक वस्तुओंका सेवन खूब छूटकर होता है; व्यभिचार और झूठकी मात्रा बहुत बढ़ गयी है; जूते दस दस जोड़े रक्खे रहते हैं;मकानकी सजावटका क्या कहना है। तरह तरहकी दर्जनों पोशाकें खूंटियोंपर लटका करती हैं; कुत्ते झुण्डके झुण्ड घूमा करते हैं; मोटरगाड़ी मौजूद है, साइकिल अलग है, और गाड़ियां भी मौजूद हैं। ऐसी दशामें बगैर नौकरोंके काम नहीं चलता इसलिये वे भी आधे दर्जन हैं। अलावे मेहतर, भंगी और झाड़कस भी हैं। ऐसी दशामें पांच चार सौ

रुपयोंकी आमदनी गायब सी हो जाती है और सब चीजें उधार आया करती हैं। कर्ज यहांतक बढ़ता है कि उन्हें जीवनमें आनन्द जान ही नहीं पड़ता, तिसपर भी वे अपने भारतीय सभ्यतावाले भाइयोंपर आक्षेपके बाण बरसाते हैं, उनपर घृणाकी दृष्टि रखते हैं। इससे देशकी अधोगति होगी। उन्हें उचित है कि पाश्चात्योंके गुणोंको ग्रहण करें और अपनी प्राचीन सभ्यता न भूलें, उसे जीवनमें स्थान दें, तभी तो भारतीय जीवनकी सत्ता बचेगी और ऋणसे मुक्त होंगे। दूसरे और तीसरे अर्थात् पाश्चात्य और भारतीय जीवनोंके लिखनेका यही अभिप्राय है।

जबतक दोका मुकाबला न हो तबतक तत्त्वका पता नहीं चलता। इस विचारसे ही तुलनात्मक जीवन लिखा गया है। इस जीवनमें पाश्चात्यों और भारतीयोंके जीवनकी तुलना की गयी है और तब निष्कर्ष निकाला गया है। दोनों जीवनोंमें कौनसा जीवन उत्तम है इसका पता इससे चलेगा।

पांचवां जीवन अनुकरणीय जीवन है। यह जीवनके अनुकरणीय होनेकी राह बताता है। जिन गुणोंका ग्रहणकर लोग आदर्श हुए हैं उनका इसमें अच्छी तरह समावेश हुआ है। यथार्थ अनुकरणीय जीवन किसका है सोभी भलीभांति वर्णित किया गया है। आशा है कि निज सभ्यताभ्रष्ट भारतीय इस जीवनको अंगीकार कर लाभान्वित होंगे, और तभी मैं अपनी राष्ट्रीय सेवा सफल मानूंगा।

—लेखक

समर्पण !

दीनबन्धो, इष्टदेव !

आज मैं सात्विक आनन्दसे प्लावित होकर, आनन्दाश्रु के साथ, आपके चरण-कमलोंपर राष्ट्रीय सेवाके नाते यथार्थ आदर्श जीवन' अर्थात् 'मुरारि-ग्रन्थ मालाका प्रथम कुसुम किंवा प्रथम मुक्ताफल' भेंट रखता हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि आप इस तुच्छ भेंटको अपनावेंगे और मेरा उत्साह बढ़ाते रहेंगे, क्योंकि एक पुष्प अथवा मुक्ताफलसे माला तैयार होना असम्भव है।

आपका,

चरणपतित-दास—

मुरारि।

विषय-सूची।

—□*□—

ॐ तत्सत् ।

यथार्थ आदर्श जीवन

(१)

विडम्बन जीवन

यदि आधुनिक-शिक्षा-प्राप्त, नये रंगमें रंगे, पाश्चात्य रीति-नीतिको भारतीय कर्मक्षेत्रमें प्रधानतम स्थान देनेवाले किसी ऐसे व्यक्तिसे, जो अपनी चाल-ढाल निरे यूरोपीय ढंगकी रखता है—अर्थात् पैरोंमें बूट-जूता या स्लिपर, अधोवस्त्रके स्थानमें पैंट, पाजामा, या बंगाल-नुमा धोती, जिसकी चुननका लच्छा पैरों तक लटक रहा है और कमीजका निचला अंश जिसके भीतर आगया है, मोजोंके साथ साथ प्रिजर्वर भी चढ़ा हुआ है, कमीजपर वेस्टकोट और उसपर कोट डाटकर गला भी नेक-टाइ (गलबन्ध) से सुसज्जित है, सरके बाल आगेसे पीछेको गाव-दुम और सुगन्धित सेंटसे सुगन्धित कर एलबर्ट फ़ैशनपर संवारे हुए, दाढ़ी बिलकुल मुड़ी, मूंछें यातो नाममात्रको छोटी तितली-के समान या बिलकुल साफ, हाथमें चुरट, जेबमें रूमाल, आंखों-के ठीक सामने नाकपर सुनहली कमानीका चश्मा जिसका रवैया इन दिनों प्रायः सभी जगह नजर आता है, बायें हाथपर

रिस्टवाच और दाहिनेमें छड़ी, सरपर हैट या फेल्ट-कैप—पूछा जाय कि आदर्श जीवन किसे कहते हैं तो वह,पाश्चात्य सभ्यतामें सिरसे पैरतक रंगा रहनेके कारण, फौरन बिना विचारे कह उठेगा कि यथार्थ आदर्श जीवन यूरोप-निवासियोंका है; भारतीय लोग बिलकुल जंगलीपनसे भरे हुए हैं, इनका ढंगही निराला है ; विवेकको यह स्थान नहीं देते ; गन्दगीसे बचावका इन्हें बिलकुल ध्यान नहीं, गौओंके मलसे ये अपने घर लीपते हैं जिसकी बदबू सब जगह फैलती है, क्योंकि आखिरकार वह भी तो मैलाही है; अक्सर सनातनधर्मी लोग इसी मैलेकी मूर्ति बनाकर पूजातक करते हैं ; इससे बढ़कर जहालत और असभ्यताकी सीमा क्या होगी ? ये नंगे रहा करते हैं; जो एक घृणास्पद दृश्य है। न इन्हें बैठने उठनेका सलीका है न बोलनेका। औरतोंको ये पर्देके अन्दर दासियां बनाकर रख छोड़ते हैं जिनके विकाशका मौका जिन्दगीमें आताही नहीं। वे बराबर दुःखके समुद्रमें डूबा करती हैं, इसलिये कि मजदूरोंसे भी बदतर वे सिवाय, सोने और खानेके, दिनरात खिदमतगारकी तरह अपने घरके आदमियोंकी खिदमत किया करती हैं। हा ! उनके साथ इतना दुर्व्यवहार कि वे मनुष्यतासे वंचित की जायं ! एक समय था कि जब ये औरतें जिन्दा जला दी जाती थीं जिस समय इनके पति मरा करते थे ; और अब भी पतिके मरनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय और अधिकांश वैश्योंके घरकी औरतें बगैर ब्याह किये ही—यानी विधवा ही—ताजिन्दगी रह जाती हैं !

भारतीयोंमें एक कौम डोम और मेहतरोंकी है जिसे, गन्दी रहने-की वजहसे, हा ! कोई छूता तक नहीं, यानी हद दर्जेके निषिद्ध और त्याज्य उस कौमके लोग माने जाते हैं। कितने तो उनकी छाया तकसे बचते हैं और उसके पड़नेपर अपना वस्त्र फींचकर नहाते हैं। भला यह बर्ताव किस कामका ? क्या वे मनुष्य नहीं हैं ?

पाठकवृन्द ! सुनी आपने पाश्चात्य रंगमें रंगे हुओंकी बातें जो रातदिन ऐयाशामें लिप्त रहते हैं ? अपने असली वेशको छोड़ नकली वेशको स्वीकार कर, पाश्चात्योंके गुणोंका अनुकरण तो किया नहीं। हां, योंही अपने देशवासियोंको घृणाकी नजरसे देखने लगे, उनके गुणोंमें भी अवगुण देखने लगे और अपने ही नकली जीवनको आदर्श मान औरोंपर आक्षेपके बाण बरसाने लगे। यदि उनकी आलोचना की जाय तो एक अच्छा प्रकाश दोनोंके जीवनपर पड़ जायगा और गुण तथा अवगुणकी ओर भी हठात् लोगोंका ध्यान चला जायगा।

केवल पाश्चात्योंकी वेश-भूषा, भाषा आदिमें नकल करनाही उत्तम बुद्धि, मनोहर प्रतिभा और शुद्ध विवेकका परिचायक नहीं है; बल्कि जितने गुणोंने उनमें स्थान पाया है उनका समावेश अपने जीवनमें करनाही किसी भी मनुष्यके लिये एक सच्ची आवश्यकता है।

सहानुभूतिकी मात्रा पाश्चात्योंमें अधिकतम पायी जाती है जिसे देखनेवाला पग पगपर इनमें पा सकता है। एक दूसरेके

प्रति प्रतिष्ठा, सम्मान, समादरकी दृष्टि रखता है और यदि इनमें किसीने बाधा पहुंचायी तो उसकी पत्रों और छोटी पुस्तिकायोंके प्रकाशनसे व सभाओंके आह्वान द्वारा इतनी कड़ी आलोचना की जाती है कि पाश्चात्य मण्डलीमें उस बाधाके विरुद्ध एक भारी आन्दोलन खड़ा हो जाता है व घृणा प्रकट की जाती है जो उसे जड़से उखाड़ फेंकती है। इसका फल यह होता है कि सहानुभूति और समवेदनाका उक्त मण्डलीमें अटल राज्य बढ़ता जाता है और एक एक व्यक्ति उक्त गुणके कारण अपनेको इतना शक्तिशाली समझता है कि मानों वह सारे समाजका प्रतिनिधि बना हो।

सहानुभूति व समवेदना ही ऐसे गुण हैं जो एकतामें परिणत हो जाते हैं जिसके बिना सङ्गठन होना बिलकुल असम्भव है। बिना एकताके एक व्यक्ति अपनी सारी जातिका प्रतिनिधि नहीं हो सकता, क्योंकि एकता ही सङ्घशक्ति और सङ्गठनका मूलमन्त्र है। इन सिद्धान्तोंके अनुसार ही पाश्चात्य मण्डलीमें एकता, सङ्गठन और सङ्घशक्तिका अटल राज्य है; और यही कारण है कि आज भूमण्डलके करीब करीब सभी भागोंमें इसका सिक्का जमा हुआ है एवं अपनी अलौकिक सङ्घशक्तिके द्वारा यह शत्रुओंके दबानेवाले पूरे साधनोंके साथ, निर्भय, निःशङ्क राज्य करती है। मनुष्योंके सामने सहानुभूति, समवेदना, एकता, सङ्गठन व सङ्घशक्तिके, एक नहीं अनेक, क्याही अनूठे आदर्श उक्त मण्डलीने रखे हैं जिनकी प्रशंसा जहांतक मुक्तकण्ठसे

की जाय थोड़ी है और जिसका प्रभाव वर्णनातीत है, यद्यपि यह आदर्श राजस व तामस छोड़कर सात्त्विक कदापि नहीं कहा जा सकता अतः सात्त्विक परिणामपर भी कदापि नहीं पहुंचा सकता।

आज भारतवर्षके लोगोंका रहन-सहन प्रायः पाश्चात्योंके समान देखा जाता है। पर शोकके साथ लिखना पड़ता है कि उनके गुणोंका ग्रहण तो बिलकुल नहीं, पर हां, नकल करनेकी चेष्टा पूर्ण रीतिसे की गई है; तदनुसार ही भारतीयोंपर रंग भी चढ़ रहा है कि प्रातः कालसे लेकर रात्रिमें शयनके समयतक नकल की हुई सारी बातें दिखलायी देती हैं, पर असलियतका नामतक नहीं है। वैसे रहन-सहनमें खर्चकी तो भरमार है पर आमदनी महज़ मामूली ढंगकी भी नहीं दिखायी देती। दिखायी भी कहांसे पड़े? अध्यवसायकी ओर किसीका ध्यान नहीं, कलाकौशलका अवलम्बन कोई करता नहीं, किसी एक भी आविष्कारके लिये कोई व्यक्ति निरन्तर कुछ दिनोंतक अटूट परिश्रम करता नहीं, न जितने आविष्कार हो चुके हैं उनके लिये गवेषणा करनेमें ही कोई जीजानसे प्रवृत्त होता है। हा! रात दिन नकल करनेमें ही, ऐयाशीके सिन्धुमें गोते लगानेमें ही क्या लोग अपना कर्त्तव्य पालन करना समझ बैठे हैं! कैसे शोककी बात है कि मादक द्रव्योंका सेवन लोग छूटकर किया करते हैं और अपने अमूल्य समयको नष्टकर अपनी सन्तानोंके सामने ऐसा निकृष्ट आदर्श रखते हैं जिसके द्वारा आनेवाली कई पीढ़ियां

अज्ञानान्धकार, विलासितासमुद्र और आलस्यगर्त्तमें पड़ उस दशाको प्राप्त होती हैं जिससे मनुष्यजाति पुरुषार्थको छोड़, पङ्गु बन, परतन्त्रताकी बेड़ी पहन जिन्दा ही मुर्दा हो जाती है और वह ज्ञानका सोता जो उसके मस्तिष्कमें प्रकृतिदेवीने बहाया है, हा! जम जाता है, जिसके द्वारा भूमण्डलके लोगोंको वह आश्चर्यान्वित कर सकती थी, काम पड़नेपर एक विस्तृत साम्राज्यपर शासन कर सकती थी, जातीय महासभा अथवा राष्ट्रीय समितिमें अपनी जोशीली, उपदेशपूर्ण और भव्य वक्तृता द्वारा समग्र जातिको उन्नतिके मार्गपर ले जा सकती थी।

कितने शोककी बात है कि समयके महत्वको न जान, शिथिलता व आलस्यको अपने कार्य्योंमें स्थान दे पाश्चात्योंकी केवल नकल करनेहीमें आज अधिकांश भारतीय अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री कर बैठते हैं! प्यारे भारतीयो! जरा इस कोरी पाश्चात्योंकी नकलपर ध्यान दें जिसे असलियतको छोड़ आपने अपनाया है, जिसका खाका लेखक यहांपर खींचकर आपके सन्मुख उपस्थित करता है। इसका एक मात्र मतलब यही है कि आपके ही ऊपर भावी सन्तानोंका समुज्ज्वल जीवन निर्भर है। यदि आप स्वयं चूकते चले गये, तो कौनसा आदर्श आप अपनी आगामी पीढ़ियोंके सन्मुख रक्खेंगे जिससे शीघ्र देशोद्धारकी आशा की जा सकती है? देश आज दिन जैसी गिरी अवस्थामें है, क्या उसे उठाना और उन्नत अवस्थापर पहुंचाना आप अपना कर्त्तव्य नहीं समझते हैं? यदि आप इस समय

चूके तो पाश्चात्य सभ्यताके पंजेमें जकड़े जाकर अपनी सत्ता तक खो बैठेंगे! इसी प्रकार भूमण्डलकी कितनी ही जातियां एक दूसरेकी सभ्यताको गले लगा संसारसे लुप्त हो गयी हैं जिनका आजदिन नामोनिशान तक संसारमें नहीं है! प्यारे! ऐसी स्थिति न आने दें, इसीमें आपकी प्रशंसा है, अन्यथा सभ्य जगतमें आप निन्दा व घृणाके पात्र होंगे।

अब जरा नकलके खाकेको खूब ध्यानसे देखिये ताकि आपको अपने जीवनका पता लगे कि वह कैसा जीवन है और उससे मनुष्यताका गला कहांतक घोंटा गया है और घोंटा जा रहा है, देशोन्नतिमें कहांतक बाधा पहुंच चुकी है और पहुंच रही है, कर्त्तव्य-क्षेत्र कहांतक संकीर्ण हो चुका है और हो रहा है।

वैयक्तिक नकलका चित्र आरंभमें ही बहुत ही संक्षिप्त रूपमें आपके सामने पेश है, पर हां, घरकी सजावटका उल्लेख किया जाता है और उसका प्रभाव जीवनपर जैसा पड़ता है उसका भी दिग्दर्शन कराया जाता है।

घरका आगेवाला भाग एक छोटेसे नजरबागसे बड़ा ही सुहावना दिखाई पड़ता है, जिसमें नाना प्रकारके फूलोंके वृक्ष खिल रहे हैं और गमले इस प्रकार सजाकर रक्खे गये हैं कि मानों किसीने गृहका उनके स्थापन द्वारा बड़ा ही मनोहर शृङ्गार किया हो, जिनके पुष्पोंसे वहांकी हरियाली आंखोंको बड़ी रोचक ज्ञात पड़ती है। आगे बढ़कर कई कुत्ते जो शरीरसे खूब मोटे ताजे हैं दिखाई पड़ते हैं, जिन्होंने सारे गृहको अपने पदार्पण द्वारा

पवित्र कर रक्खा है और घरके प्रत्येक व्यक्तिको गोदके शिशु बनकर खान-पान तकके संसर्गमें इतनी घनिष्ठता पायी है जिससे आत्मीयसे वे किसी प्रकार कम नहीं समझे जाते हैं। घरका हरएक कोना उनके पेशाबसे परिमार्जित है। यह आदत उनकी स्वाभाविक है जिसे कोई भी छुड़ा नहीं सकता। घरका बीच-वाला भाग सहनके रूपमें है जिसके चारों ओर बरामदा है और किवाड़ झिलमिली व शीशेवाले दोहरे लगे हुए हैं। सहनके भीतर तरह तरहकी कुर्सियां जिनपर गद्दियां जड़ी हुई हैं और जो लेटने तकके काममें आ सकती हैं चारों ओर लगी हुई हैं। बीचमें टेबुल और कुछ बैठनेवाली कुर्सियां हैं। टेबुलपर गुल-दस्ते सजे हैं। एक तरफ मसहरीदार पलंग लगा हुआ है। दीवारोंमें यूरोपीय रमणियोंके अश्लील चित्र लगे हुए हैं जिन्हें देखकर ही व्यभिचारकी ओर प्रवृत्ति होना स्वभावसिद्ध है। सहनकी दीवारोंमें जो आलमारियां हैं उनमें ऐसी ऐसी अश्लील आख्यायिकायें हैं जिन्हें पढ़ते ही मनुष्य ऐयाशीके समुद्रमें डूबकर विलासी बन जाता है। कुछ आलमारियोंमें सिगार, सिगरेट और कड़ी मदिराकी बड़ी बोतलें परिपूर्ण रक्खी हुई हैं जिनका उपयोग अतिथि-सेवा और इन्द्रिय-तृप्तिके हेतु प्रतिदिन होता है। घर सुधासे धवल और रंगोंसे रंगा हुआ है। किवाड़ोंके साथ ही जालीके महराबनुमा परदे लगे हैं और कुछ लैंप भी अपने स्थानपर हैं। कपड़े टांगनेके लिये रैक हैं जिनपर कोट, पैंट, हैट दिखलायी देते हैं। जगह जगह सहनमें चटाई व दरी अथवा टाट

बिछा है और पैर पोंछनेकी चीज भी हर किवाड़ोंपर है। एक जगह गाने बजानेके सामान रक्खे हैं जिनमें हारमोनियम मुख्य है। तरह तरहके खिलौनोंसे भी वह सहन अपने ढंगका निराला ही जान पड़ता है।

इस घरके पिछले भागमें रसोई-घर, पाखाना और भङ्गीके रहनेके लिये एक कोठरी है। रसोई-घर इतना गन्दा है जिसे देखकर ही घृणा प्रकट होती है; क्योंकि वह कभी न लोपा जाता है न पोता। चारों ओर झोलसे भरा है और मकरोंके रहनेका एक विस्तृत स्थान है। कहीं राख है तो कहीं कोयला; कहीं भोजनार्थ काटे गये पक्षियोंके चंगुल हैं तो कहीं पर; कहीं रुधिरकी बून्दें हैं तो कहीं हड्डियां; कहीं चर्बी है तो कहीं खुर जिन्हें देख शवरालय सा रसोई-घर जान पड़ता है। थोड़े चीन व तामचीनके बर्तन भी हैं; अलुमीनियमके बर्तन भी हैं। पाखाना हिन्दुस्थानी नहीं बल्कि यूरोपीय ढंगका है जहां आइना, साबुन, ब्रश, कंघी इत्यादि रक्खे हुए हैं, जिसे नहाने और शृङ्गार करनेका स्थान कहा जाय, तो अत्युक्ति नहीं होगी। हां, मल-मूत्रके उत्सर्गके लिये गमले रक्खे हुए हैं जिन्हें भंगी फौरन धोकर साफ करके रख देता है ताकि बदबूका नाम न रहे।

प्यारे वाचकवृन्द! घरके चित्रसे आपको भलीभांति विदित हो गया होगा कि पाश्चात्य सभ्यतामें रंगे एक भारतीयने कैसे आदर्शको अपने जीवनका मुख्य लक्ष्य माना है। इस प्रकारके जीवनमें खर्चकी भरमार रहती है और तनख्वाह या आमदनी

खर्चसे आधी मुशकिलसे रहती है; ऐसी अवस्थामें मोदीकी दूकानसे उधार, कपड़ेकी दूकानसे उधार, परचूनकी दूकानोंसे उधार सभी आवश्यक वस्तुएं ली जाती हैं और जब तकाजा पहुंचता है तो कुछ देकर जान छुड़ाई जाती है। यही हाल है बावर्ची और भङ्गी तकके साथ कि उन लोगोंको भी रुपये हिसाब साफ कर नहीं दिये जाते। इसका मुख्य कारण यही है कि आमदसे बेशी खर्चका सामना करना पड़ता है, पर क्या एक भी यूरोपियन इस ढंगसे चलता है या इसे पसन्द करेगा? कदापि नहीं। वह तो अपनी आमदनीमेंसे कुछ न कुछ बचाता ही रहेगा, क्योंकि A penny saved a penny gained. वाली कहावत वह चरितार्थ करता है, अर्थात् एक छोटीसी बचत भी एक छोटासा लाभ है, इसे वह खूब जानता है, तभी तो प्रति मास कुछ न कुछ इकट्ठा करता जाता है। दोनोंके आदर्शमें खर्चके संबन्धमें फर्क इसलिये है कि नकल करनेवालेने अपनेको उस ढंगसे रखनेमें ही अपना फर्ज अदा किया है और यथार्थ यूरोपियनने आमदके अनुसार ही अपना खर्च कायम किया है, तो अब इन दोनों व्यक्तियोंके विचारमें जमीन आसमानका अन्तर है। एक फैशनका गुलाम है तो दूसरा आमदनी या व्यापारका मुख्य जमानेवाला है, एक दिवालिया है तो दूसरा महाजन है, एक नादेहंदा है तो दूसरा किसीकी एक पाई भी नहीं रखता। एकने यदि आमदका ख्याल न कर अनुकरण मात्र किसी तरह किया है, तो दूसरेने अपनी आमद कायम

कर उतना ही पैर पसारा है जितनी लंबी रजाई है; तभी तो एक खर्चसे तंग आकर चिन्ता-चक्रमें पड़ा रहता है और दूसरा खुशीके साथ खर्च करके कुछ जमा भी करता है।

थोड़ा भी यदि विचारसे काम लिया जाता तो नकल करनेवालेको खर्चसे इतना तंग न आना पड़ता। कुत्तोंकी जगह यदि एक गौ होती तो दूध, घी, दही, मलाई, मक्खन, खोआ इत्यादिसे थोड़े परिश्रममें सारे परिवारका हृदय परिपूर्ण रहता और उनकी खूराकके बदले यह क्या खाती, शायद कममें ही इसकी गुजर हो जाती और गोबर जलावनका अलग काम देता। जब आगे बच्चे बढ़ते तो बेचकर दाम मिलते या एक गोशाला ही खड़ी होती और जिनका पालन-पोषण चराईमात्रसे सम्पन्न होता है। यदि गृहिणी और परिवारकी स्त्रियां अपने हाथसे खानेकी चीजें तैयार कर लेतीं तो एक मामूली दाईसे काम चल जाता। भङ्गीकी कोई आवश्यकता नहीं थी यदि हिन्दुस्तानी पैखाना होता। हां, सफाईपर विशेष ध्यान चाहिये। इसी प्रकार मांस और कड़ी मदिराके सेवनकी जरा भी आवश्यकता नहीं थी; क्योंकि भारतीय अन्न, कन्द, फल, मूल एवं गोरस बहुत अपने देशमें पाते हैं, और मद्यकी बात तो सवालके बाहर है; क्योंकि अब तो यूरोप भी इसका जोरोंसे परित्याग करने लगा है। भारतसम्राट् पञ्चम जोर्जतकने अपने राजभवनमें इसकी पहुंचकी मुमानियत कर दी है और स्वयं एक वैष्णवके समान इस विषयमें रहते हैं। इस ढङ्गपर बहुत रुपये बच जाते, जिनसे उस परिवारको यथार्थ

आनन्द प्राप्त होता। साहबी वस्त्रोंकी जगह यदि भारतीय तरज़के कपड़े व्यवहारमें होते तो इस काममें भी खासी बचत हो सकती थी। ऐयाशीके सामान जो सहनके भीतर रक्खे हैं यदि उनकी जगह सादगीसे काम लिया गया होता तो भी व्ययका एक बड़ा हिस्सा कम हो जाता। यदि भारतीय रहन-सहनको वहां स्थान मिलता, तो जो परिवार आज कई कारणोंसे निरानन्द दिखाई देता है, वह सानन्द यथार्थ सुखका अनुभव करता होता। जरा सी नकलका ख्याल अगर दूर किया गया होता, तो आर्थिक अड़चनें इस प्रकार उस परिवारको न जकड़तीं और वह निश्चिन्त रहकर और और परिवारोंके लिये आदर्श रहता।

प्रिय वाचकवृन्द! जो आक्षेप एक नकल करनेवाले भारतीय द्वारा किये गये हैं उनका उत्तर विनीत भावसे देकर समझानेमें कोई हर्ज नहीं है; क्योंकि दो दलोंमें जब आक्षेप किया जाता है तो आक्षेपका उत्तर यदि एक दल दे तो दूसरा अवश्य अपने आक्षेपका उत्तर पाकर सन्तुष्ट हो जाता है। तात्पर्य्य यह है कि दोमेंसे एक दल अवश्य अन्धकारमें और दूसरा प्रकाशमें है; अन्यथा दोनों ही अन्धकार या प्रकाशमें रहें तो ऐसे आक्षेपों-का अभावसा रहे और लेशमात्र भी उनकी ओर किसीकी प्रवृत्तितक न रहे।

पहला आक्षेप भारतीयोंपर जंगलीपन, विवेकहीनता और गंदगीका है। सामाजिक और धार्मिक विचारोंके अनुसार भार-तीय व्यवहार करते हैं;कौनसा जंगलीपन है सो प्रकट नहीं किया

गया। जिस विषयसे जो अभिज्ञ नहीं है वह उसमें कोरा है; यदि इसीका नाम जंगलीपन है, तो यह दोष संसारके सभी समाजोंमें पाया जा सकता है; अर्थात् सभी सब कुछ नहीं जानते। यही उत्तर विवेकहीनताके लिये दिया जाय तो उचित होगा। गंदगीके लिये भारतीय अपनी परिस्थितिके अनुसार बदनाम नहीं किये जा सकते, क्योंकि वे प्रायः प्रतिदिन स्नान करते और अक्सर अपने कपड़े साफ करते हैं। यदि परिस्थितिने उन्हें साबुन या सोड़ा न लेने दिया, क्योंकि वे दीन होते हैं तो पीली मिट्टी या सज्जीसे ही अपने वस्त्र प्रक्षालन कर डालते हैं। साहबी ढंगकी सफाईके लिये बहुत खर्चकी जरूरत है जिसके साथ मुकाबिला करना बेचारे दुःखी भारतीयोंके लिये बहुत कठिन नहीं बल्कि असम्भव है। हां, कला-कौशलोंकी उन्नति भारतवासी नहीं करते, इसका मुख्य कारण यह है कि उनके कला-कौशलोंके साहाय्यदाता व्यक्ति प्रायः लुप्तसे हैं; दूसरे शब्दोंमें, भारतीय कला-कौशलकी ओर भारतीयोंका सहायताके अभावसे झुकाव ही नहीं है। गोबरको विष्ठा कहकर—क्योंकि वह तो विष्ठा ही है—उसके गुणोंका जरा भी खयाल न करना क्या बुद्धिमत्ता है? कदापि नहीं, क्योंकि पूजा या समादर तो गुणोंकाही होता है, कुछ अवगुणोंका तो होता ही नहीं; फिर न मालूम गुणकी ओर गुणी होनेका दम भरनेवालोंका केवल पाश्चात्य सभ्यतामें ही रंगे रहनेके कारण, क्यों घृणापूर्ण बर्ताव है? यदि कस्तूरीपर सुगन्ध गुणके कारण एक समादरकी दृष्टि डाली जाती है, यद्यपि

उसकी उत्पत्ति मृगके अण्डकोशसे है, तो गोबरके गुणोंका ध्यान कर यदि इसका व्यवहार किया जाता है, तो इसमें जंगलीपन, गन्दगी या मूर्खता कैसी? जिस समय मिट्टीकी दीवाल या आंगन तैयार किया जाता है और उनके कच्चे रहनेकी वजहसे कुछ गर्दा उड़ता है तो कहगिल करके सूखनेपर जो दरारें मालूम पड़ती हैं, उनमें जबतक गोबर कसकर लगाया नहीं जाता या आंगनमें जबतक उसका लेप नहीं होता, तबतक यथार्थ चिकनापन नहीं आता, न गर्देका दुःख ही दूर होता है; इसलिये इसका व्यवहार दीन भारतवासी करते हैं। खेतोंमें खादके काममें यह ऐसा गुणकारक है कि जिससे खेतोंकी कई गुनी शक्ति—उर्वरा शक्ति—बढ़ जाती है, जिनकी आजमाइश करते करते यह सिद्धान्तसा माना गया है कि गोबर उक्त शक्तिका अतिशय वर्द्धक है। अब रही उसकी मूर्त्तिकी पूजनकी बात, सो भारतीय जिससे जितना लाभ और सुख उठाते हैं, उसे उतनी ही आदर और पूजाकी निगाहसे देखते हैं। जबकि वे गोधनसे बढ़कर कुछ धन ही नहीं समझते, और लाभके सिवाय हानिका लेशतक जिससे सम्भव नहीं, तब ऐसी अवस्थामें, उसके प्रति पूज्य भावसे कृतज्ञता प्रकाश न करना ही बड़ी भारी भूल है और जबकि धार्मिक ग्रन्थोंतकमें इस गोजातिकी अपूर्व महिमा वर्णित है।

दूसरा आक्षेप यह है कि भारतीय नग्न रहा करते हैं। नग्नके दो अर्थ हैं। भारतीयोंके मतमें नग्न वही है जो अधोवस्त्र नहीं पहने हों; परन्तु पाश्चात्योंके मतमें उसे भी नग्न कहते हैं जो अधोवस्त्रके

अलावे ऊर्ध्ववस्त्र न पहने हो। इसका कारण यह है कि भारतीय जल-वायु पाश्चात्य देशोंकी जल-वायुकी अपेक्षा कहीं गरम है। ज्येष्ठके महीनेसे लेकर भाद्र, आश्विन पर्य्यन्त बेतरह गर्मी पड़ती है जिससे कि पाश्चात्य लोग भी भारतमें नग्न रहते हैं; तिसपर भी उनके वदनसे मांसादि गर्म भोजन करनेके कारण पसीना चला करता है। एक साहबने जिसे लेखकने कुछ समयतक हिन्दी पढ़ाई, अगस्तके महीनेसे अक्तूबरतक बराबर यह कहकर उलहना दिया—'It is very hot today! my life is in danger! I had no sleep last night at all!' उष्ण कटिबन्धवाले देशोंमें यही हालत होती है जो प्राकृतिक है; इसीसे वदनपर कपड़ातक नहीं रक्खा जाता। ऐसा कोई पागल ही होगा जिसे लज्जा न होती हो और वह अधोवस्त्रतक न रखता हो; अतः नग्न रहनेका आक्षेप निर्मूल है।

तीसरा आक्षेप सलीकेकी बाबत है। वाचकवृन्द! यदि सलीका इन्हें न होता तो पाश्चात्योंको इनसे इतना आराम, सुख कदापि न मिलता और ये निःसीम घनिष्ठताके कारण पाश्चात्य रंगमें इतना रंगे न होते कि अपने रहन-सहनतकको एकदम बदल डालते। इससे जान पड़ता है कि सलीका है पर अभाग्यका छत्र लगा हुआ है।

चौथा आक्षेप औरतोंकी हालतपर किया गया है। पाठको! औरतोंकी बाबत आक्षेप ही मात्र है; तत्त्वका विवेचन ज़राभी नहीं किया गया। भारतीय विवाह-कार्य्यको एक परम पवित्र बन्धन

मानते हैं। इसीके अनुसार उनके माता पिता द्वारा यह कार्य्य सम्पन्न होता है। वर या कन्या—किसीको भी अपने विवाहके लिये मुंह खोलनेमें लज्जा होती है। यह कार्य इनके लिये नहीं है। कन्याके माता पिता वरको ढूंढ़कर वेदविधिके अनुसार अग्निको साक्षी दे उसे संकल्पकर वरके हाथमें उसका हाथ पकड़ा देते हैं; तबसे ही वह पतिव्रता हो पतिको देवता समझ उसकी जहांतक उससे हो सकता है सेवा किया करती है। प्राचीन समयमें यह पातिव्रत्य इतना बढ़ा था कि भारतीय स्त्रियां पतिके मर जानेपर शोकाग्निसे दग्ध हो नाममात्रके लिये उसकी चितापर जला करती थीं। लेखकको शोकके साथ लिखना पड़ता है कि जो पाश्चात्य सभ्यताका दम भरता है उसके ही देशमें १६२२-२३ ई०में एक २२ वर्षकी महिलाने १६ विवाह किये, सिर्फ इसलिये कि १६ पतियोंसे उसे रुपये और गहने मिले थे। पुलिसने शेषमें उस महिलापर व्यभिचारका मुकद्मा चलाया। क्या इससे भी बढ़कर घोर व्यभिचार हो सकता है? कदापि नहीं! यद्यपि आज भारतकी अत्यन्त गिरी अवस्था है, तथापि स्त्रियोंका पातिव्रत सम्बन्धी आदर्श इतना उन्नत है कि दुनियाके पर्देपर शायद ही कहीं वैसा दिखाई देता होगा। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है! जो देश सावित्री, सती, सीताके पातिव्रत्यसे आज दिन भी परम गौरवान्वित है, जिस देशके इतिहासमें सुकन्याने, जो एक राज-कन्या थी, अपने वृद्ध पति च्यवन महर्षि-दूकी अट सेवा की है, जहां आज दिन भी असंख्य पतिव्रतायें

दृष्टिगोचर हो रही हैं उस देशकी रमणियोंको इतनी छोटी दृष्टिसे देखना सभ्यताका परिचायक कभी नहीं हो सकता, क्योंकि यथार्थ सभ्यतामें गुणोंके ग्रहणका अंश कहीं अधिक रहता है।

पांचवां आक्षेप अछूत जातिके कायम करनेका है। वाचक-वृन्द! जिस फूटका बीज महाभारतके समय बोया गया था उसने अङ्कुरके रूपमें बढ़कर, शब्दवेधमें सिद्धहस्त दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द्रके समयमें वृक्षका रूप धारण किया। शहाबुद्दीन महम्मद गोरीने आक्रमण कर इससे पूरा लाभ उठाया और तभीसे भारतकी राज्यलक्ष्मी विदेशियोंके हाथ जा लगी, एवं इसकी स्वतन्त्रताका सूर्य दीर्घ कालके लिये अस्त हो गया। जब विदेशियोंने अपना अधिकार इस देशपर जमा लिया उस समय यहांके लोगोंपर इतनी जबर्दस्ती की गयी कि भारतीयोंका अस्तित्व लुप्तप्राय होगा, यही सम्भावना होने लगी। यहांतक ही नहीं, बल्कि लोगोंसे शस्त्रके बलसे निषिद्ध और त्याज्य कर्म भी करवाये जाने लगे। उसी समय जो जाति विड्वराहोंको पालकर उन्हें विष्ठा भोजन प्रत्येक गृहमें करा देती थी, उसीपर उसे उठानेका दबाव डाला गया और विड्-वराहोंका घरोंके पीछे छोटेसे मैदानोंमें जाना रोक, उसी जातिसे यह काम लिया जाने लगा। बस, अब क्या था, वह जाति महा निषिद्ध और अस्पृश्य समझी जाने लगी।

आजदिन भी जो लोग महा निषिद्ध काम करके अपनी

जीविका उपार्ज्जन करते हैं, यदि महात्मा योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र-के बताये रास्तेपर चलें, तो अब भी उनका उद्धार हो सकता है, क्योंकि उन्होंने गीतामें स्पष्ट कहा है—

'उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥'

अर्थात् कोई भी व्यक्ति अपनेसे अपना उद्धार करे, अपनेको गिरावे नहीं, अपना आप ही बन्धु है और अपना आप ही शत्रु है।

शोकके साथ लिखना पड़ता है कि आजदिन इस देशमें व्यभिचारी, मद्यपी, चोर, डाकू, मिथ्यावादी, जुआरी, आलसी, भिखमंगे, हरामखोर और डाही, स्त्री-पुरुषोंकी संख्या कहीं अधिक है। यदि ये उक्त महात्माके बताये मार्गपर आकर अपने कुकर्मोंको छोड़ दें और नाना प्रकारके कला-कौशलोंपर पड़ें जिनके द्वारा अन्यान्य देश आजदिन धन-कुबेर हो रहे हैं, तो अपना ही नहीं, बल्कि अपने गिरे हुए देशका पूरा उद्धार कर सकते हैं और अपने कीर्त्ति-चन्द्रसे जगत्में प्रकाश फैला सकते हैं।

वाचकवृन्द! यूरोपीय रहन-सहनपर जबतक प्रकाश न डाला जाय तबतक आपलोगोंको कैसे ज्ञात होगा कि यूरोपीय लोग किस प्रकार परिश्रम कर अपने जीवनको नमूना बनाकर भूखण्डमें उच्च आकांक्षा रखते हैं। यूरोपमें सब जातियोंसे बढ़कर आजदिन अङ्गरेज जाति अपने आदर्श जीवनके कारण बहुत हो

उन्नत हो रही है। दुनियांके पर्देपर इसने जैसे जैसे काम करके इस समय दिखाये हैं इसका गौरव उनकी कष्ट सहिष्णुता—एक अलौकिक शक्ति—को है जिसके बिना किसी महान् प्रयत्नकी सफलता नहीं होती।

महात्मा ईसाकी मृत्युके अनन्तर, जिस समय ब्रिटेनके नामसे आजका इङ्गलैण्ड विख्यात था, इटालीके अन्तर्गत रोम देशके साम्राज्यका ही पश्चिमकी ओर दौरदौरा था। उक्त देशका एक वीर सेनापति जिसका नाम जुलियस सीजर था फ्रांस आदि और और देशोंको विजय करता हुआ नौका-समूह-पर चढ़कर ब्रिटेनमें पहुंचा और इन देशोंपर उसने अपना सिक्का ऐसा जमाया कि संसारमें रोम देशकी ही तूती बोलने लगी और पश्चिममें प्रायः और राज्य लुप्तप्राय हो गये थे। उस वीर सेनापतिकी कीर्त्ति-पिपासा इतनी बढ़ी कि स्पेन आदि देशोंपर भी उसने अपना अधिकार जमाया। यह सिद्धान्त है कि जिस देशका साम्राज्य फैलता है उसी देशका धर्म प्रधान-रूपसे शासित जनतामें स्थान पाता है और इसीका नाम धार्मिक क्रान्ति है। एवं तदनुसार ही रोमन कैथोलिक मूर्त्तिपूजक धर्म, जिसने रोम देशमें पूर्णतया प्रचार पाया था, इस विजित संसारमें व्याप्त हुआ। अब क्या था? अब तो इसी धर्मकी महिमा सर्वत्र दिखाई देने लगी और पाश्चात्य अथवा विजित संसार इसी धर्मसे दीक्षित हुआ। इसका प्रभाव राजा और प्रजा दोनोंपर पड़ा। इस धर्मके विधाता पोप लोग अपना प्रभाव फैलाने लगे

और वे ही सर्वमान्य हो गये। इन धर्मविधाताओंने यहांतक कहा कि जिसे भोगके साधन अपने साथ स्वर्ग ले जानेकी इच्छा हो वह व्यक्ति अपनी जिन्दगीमें मरणावस्थामें उन वस्तुओंको पोपके हवाले करे या अपनी इच्छा जाहिर करे और उसे एक मानपत्र इस मजमूनका दे दिया जायगा कि अमुक व्यक्तिने इतने भोगके साधन महात्मा ईसाकी राहपर पोपकी सेवामें अर्पण किये हैं, और वह मानपत्र आसन्नमरण व्यक्तिकी समाधिमें उसके सिरहाने रख दिया जायगा, जिस प्रमाणके द्वारा वह व्यक्ति स्वर्गमें अपने साथ उन भोगके साधनोंको लेता जायगा। इस भांति पोपका दर्जा बड़ा ही पूज्य और शक्तिशाली होने लगा। जब कभी किसीपर दबाव डालना होता था तो वह पोपोंके द्वारा ही डाला जाता था।

यह एक प्राकृतिक नियम है कि अत्याचारी राज्यका शीघ्रही विनाश होता है; दूसरे शब्दोंमें, अत्याचार विनाशमें परिणत हो जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि अत्याचार करनेवाला अपनेको अवश्य अपराधी समझता है एवं अपराधी होनेके कारण उसके शरीरमें वर्त्तमान वे शक्तियां, जिनसे सात्त्विक भावोंका उद्गम होता है, नष्टप्राय हो जाती हैं। अब यथार्थ प्रसन्नता, जो सात्त्विक भावोंके उद्गमका फलस्वरूप है, एकदम लापता हो जाती है; इस प्रकार अत्याचारी आप ही अपनेको निर्बल समझने लगता है, पर क्रोधके वश उसे एकमात्र अत्याचारके और कुछ नहीं सूझता जिससे अत्याचार किये जानेवाले व्यक्तिकी

दशापर सभी तरस खाने लगते हैं और सबकी सहानुभूति और समवेदना उसी ओर प्रोत्साहित होती है।

वाचकवृन्द ! जब अपनी प्रबल स्वार्थ-साधनाके लिये रोमवासियोंने ब्रिटन लोगोंपर रोमाञ्चकारी अत्याचार किये उस समय इन लोगोंमें एकताका साम्राज्य था। शनैः शनैः रोम-वासियोंकी इच्छा प्रभावशाली साम्राज्य-विस्तारकी ओर बढ़ती गई, और सैनिक बल, जो ब्रिटेनमें वर्त्तमान था, इधर उधर अन्य देशवासियोंको दबानेके लिये भेजा जाने लगा। बस, यही हेतु था कि ब्रिटेनमें रोमसाम्राज्यकी जड़ ढीली पड़ गयी। अब तो लुटेरे लोग बड़ी बड़ी लंबी नावें जिनमें ५० से १०० डांड़तक लगते थे, ले लेकर ब्रिटेनके किनारोंपर धावा करने लगे और रोमवासियोंकी चीजें, सामान, लड़के, लड़कियां और औरतों तकको, जहां कहीं पाते, ले जाने लगे और गुलामोंके बिकनेके बाजारों और हाटोंमें उनकी बिक्रीतक होने लगी। इन लुटेरोंका अत्याचार यहांतक बढ़ा कि इन्हें दबानेके लिये जर्मनीसे जूट, सैक्सन और एंजिल्स लोग बुलाये गये। इन लोगोंने आक्रमण-कारियोंसे तो युद्ध कर उन्हें दबाया, पर स्वयं ब्रिटेनमें बस गये और ब्रिटन लोगोंका वध कर उनकी जायदाद और स्त्रियोंपर कब्जा कर लिया। बचे बचाये ब्रिटन लोग वेल्सकी ओर खदेड़े गये और आयर्लैंड तकमें जा बसे। अब ये विजेता लोग इङ्गलिशके नामसे प्रसिद्ध हुए और उन्होंने अपने पैर यहांतक फैलाये कि इनके नामसे ब्रिटेन इङ्गलैंड कहा जाने लगा।

यद्यपि साम्राज्यमें परिवर्त्तन हुए, पर धर्म एकमात्र रोमन कैथोलिक ही था। इसमें परिवर्त्तन न होनेका कारण यही है कि यह धर्म यूरोपमें सर्वत्र प्रचलित था और दूसरे धर्मकी वहां प्रवृत्तितक नहीं थी। अनन्तर कई शताब्दियोंके बाद, जर्मनीमें मार्टिन लूथर एक समाजका सुधार करनेवाला हुआ जिसने रोमन कैथोलिक मूर्त्तिपूजक धर्मके विरुद्ध अपने विचार प्रकट किये और उसी समयसे प्रोटेस्टैंट दल बढ़ने लगा। इस नवीन धर्मकी दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति देख साधारण मतावलंबी लोगोंके मनमें इसकी ओर घृणा प्रकट होने लगी।

राजा अष्टम हेनरीके समयमें प्रोटेस्टैंट मत निकास पाकर फैलने लगा। उक्त राजाकी आन्तरिक सहानुभूति इस नवीन धर्मके साथ थी, पर जाहिरा वे कैथोलिक मतके साथ ही थे। जब छठे एडवर्डके समयके बाद इनकी बड़ी बहन मेरीका राज्य-काल आया, जिनका विवाह स्पेनके राजकुमारके साथ हुआ जो इस नवीन धर्मका कट्टर शत्रु था, तो ऐसा जान पड़ा मानों नवीन धर्मकी जड़ ही काट डाली जायगी। कैथोलिक धर्मवालोंको प्रोत्साहित कर प्रोटेस्टैंट लोगोंका पीछा किया जाने लगा और ये लोग भागकर अपने बालबच्चोंके साथ नावोंपर समुद्रकी शरण लेने लगे। हा! ये अभागे जहां पकड़े जाते थे वहां जिन्दा जला दिये जाते थे। चाहे और कोई सबूत न मिले पर प्रोटेस्टैंट धर्मकी पुस्तिकाका मिलना ही किसी भी व्यक्तिके अपराधी होनेका पक्का प्रमाण था। उस समय कैथोलिक धर्मकी ओरसे जितना

अत्याचार किया जाता था उसकी सीमा नहीं थी। कालकोठरी जिसमें बन्द कर सूर्य्यके प्रकाशका दर्शनतक न करने देना और वायुके सेवनका लेशमात्र मौका न देना, एक मामूली बात थी।

मेरीके अनन्तर जब एलिजाबेथ महारानी हुईं, तब प्रोटेस्टैंट धर्म उनका शक्तिमान व साहाय्यकारी हस्तक्षेप पाकर द्वितीयाके चन्द्रमाके समान वृद्धिको प्राप्त हुआ। अंगरेज जातिने यथार्थ उन्नति इसी समयसे की है। इसके पहले ये लोग समुद्रके कुत्ते कहे जाते थे, मछलियां मारा करते थे, क्योंकि इन्हींके द्वारा ये अपना भोजन सम्पन्न करते थे और समुद्रके किनारे किनारे डाके डाला करते थे। ये लूटना और डाके डालना घृणित कर्म नहीं समझते थे, क्योंकि इनके मनमें ये कार्य वीरताके परिचायक थे।

फ्रूड साहबने 'सोलहवीं शताब्दीके सामुद्रिक मनुष्य' नामक पुस्तकमें ऊपर लिखी हुई बातोंका बड़ा ही विचित्र चित्र खींचा है, जिसे देखकर कैथोलिक धर्मके माननेवालोंकी उन्मत्तताने कहांतक सभ्यताकी सीमाका अतिक्रम किया—यह बात भलीभांति व्यक्त हो जाती है। उस समय ड्रेक और हौकीन्सने किस प्रकार साहस कर जलयात्रा की और स्पेन राज्यकी सम्पत्ति जो नौकापर लादकर वहां भेजी जाती थी, इन लोगोंने रास्तेहीमें लूट ली और महारानी एलिजाबेथने इन वीर पुरुषोंके कार्य्यका अनुमोदन किया, ये बातें भी उक्त पुस्तकमें सविस्तर दी हुई हैं। अफ्रिकामें नरबलिकी प्रथाके कारण

वहांके मनुष्योंने सार्वजनिक करुणाको अपनी दशापर आकृष्ट किया और इस पशुताके व्यवहारके कारण वे मनुष्य पशु समझे गये। तदनुसार, यदि उनसे खेतीका काम लिया जाय तो ये नरपशु बड़े कामके होंगे—ऐसे विचार यूरोपीय लोगोंके मनमें उठे और कार्य्यमें भी परिणत हुए।

संसारमें जब कहीं कुछ भी परिवर्त्तन होना होता है उस समय क्रान्ति उपस्थित हो जाती है; अर्थात् क्रान्तिसे ही परिवर्त्तनका युग आरम्भ होता है, चाहे वह क्रान्ति धार्मिक, सामाजिक अथवा आर्थिक ही हो। इस सिद्धान्तके अनुसार इंगलैण्डमें एक नवीन युगका आगमन हुआ। नवयुवक लोग वहांके नये रंगमें रंग गये, कलाकौशलकी ओर लोगोंकी तन, मनसे प्रवृत्ति हुई। सभ्यताकी चीजें दनादन बनने लगीं, व्यापार बढ़ने लगा, औपनिवेशिक राज्य दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे, कष्टका स्थान सुखने पाया, प्रजातन्त्रकी फिर भी चल बनी, उन्नतिका शिखर प्रत्यक्ष हुआ, पर यथार्थ सात्त्विक आनन्द प्राप्त हुआ या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

जबतक कर्त्तव्य-बुद्धिका मस्तिष्कमें उत्थान नहीं होता तबतक कर्त्तव्यकी ओर जीवमात्रकी प्रवृत्ति नहीं होती। इस प्रवृत्तिने ही संसारके मध्यमें सरलताको कठिनताका उत्तराधिकारी बनाया है; अर्थात् जहां जहां कठिनता थी और उसका अनुभव कर लोग घबराते थे, वहां वहां कर्त्तव्यकी ओर प्रवृत्तिने उसके स्थानपर सरलताका राज्य स्थापित किया।

कर्त्तव्य-बुद्धि (Sense of duty) ने अपनी ओर प्रवृत्ति कराकर भूखे जीवोंका भोजन सम्पादन किया, प्यासेको जल पीनेके उपाय बताये, गृहहीनको गृहके निर्माणका ढङ्ग बताया, जिसमें वह आनन्दके साथ अपना जीवन व्यतीत करे एवं और और आवश्यक वस्तुएं तैयार करनेके लिये प्रोत्साहन दिये जिनसे प्राचीन और अर्वाचीन समयकी अधिकांश वस्तुएं देखनेमें आती हैं और कितनी ही लुप्तप्राय हैं।

कर्त्तव्यकी ओर प्रवृत्ति करानेवाली कर्त्तव्य-बुद्धि मनुष्यमें उस समय उत्पन्न होती है जब उसे शारीरिक, सामाजिक व आर्थिक कार्य्य सम्पन्न करना अनिवार्य्य सा दीख पड़ता है। जबतक यह कार्य्य ऐच्छिक रहा करता है तबतक मनुष्य दिलो-जानसे कर्त्तव्यकी ओर प्रवृत्त नहीं होता। तब फलप्राप्तिका सुख उसे क्योंकर भोगनेको मिले।

शारीरिक कार्य्य सम्पन्न करनेके लिये संसारमें आयुर्वेदकी सृष्टि हुई है, जिसकी सहायतासे जीवनवृक्ष अंकुरसे पौधेके रूपमें विकास पाता हुआ अपने समयपर फल-पुष्पादि सम्पन्न हो कर्त्तव्य-बुद्धिकी ओर झुकता है और नाना प्रकारके उपकार, उदारता एवं सभ्यताके कार्य कर सांसारिक जीवोंको अपने उत्तमोत्तम फल-फूलोंका अकृत्रिम उपहार देता है। सामाजिक कार्य्य पूरे करनेके लिये वस्त्र, आभूषण आदि वस्तुएं धारण करना और भिन्न भिन्न सुविधाजनक तथा आराम देनेवाली चीजें तैयार करना जगत्में एक प्रथा सी हो गयी है। आर्थिक

कार्य्यके लिये ही विज्ञानकी उन्नति हुई है, जिसके द्वारा धूमशकट, धूमपोत, आकाशयान, टेलीफोन, बेतारके तार आदिकी उत्पत्ति हुई है जिनके द्वारा व्यापार करना, भिन्न भिन्न स्थानोंपर अधिकार जमाना, दूर देशकी यात्रा करना आदि अन्यान्य कार्य्योंका सम्पादन होता आता है।

यह कर्त्तव्य-बुद्धिका ही फल है कि जिस ओर अपने ध्यानको आप लगावेंगे उस ओर, यदि अध्यवसाय आपका ठीक ढंगपर जा रहा है, तो अवश्य, सफलता हाथ बढ़ाये आपको अपने मार्ग-पर ले जानेके लिये तैयार रहेंगी। यदि इस सिद्धान्तको वाचक-वृन्द! आप सिद्धान्त न मानें तो क्या दिखला सकते हैं कि दुनियाके पर्देपर, बगैर इस सिद्धान्तका आश्रय लिये किसी भी देशने उन्नति की है? इसीके अनुसार अङ्गरेज लोगोंने शनैः शनैः सब विभागोंकी उन्नति की है और यहांतक बढ़ गये हैं कि जिस ओर आप दृष्टि डालें उसी ओर इनका पराक्रमी हाथ दृष्टिगोचर होता है; अर्थात् ऐसा कोई भी विभाग नहीं जिसमें इन्होंने पूरी तरक्की न की हो।

इन दिनों संसारके जितने पराक्रमशाली राज्य हैं उनमें सबसे बढ़ा चढ़ा इङ्गलैण्ड है—यह बात एक स्वरसे सब लोग माननेके लिये तैयार हैं। इसके माननेका मुख्य कारण यही है कि इस देशने एकाङ्गीन उन्नतिका खयाल न कर सर्वाङ्गीण उन्नति की है, जिसकी बदौलत वह सब देशोंके सामने अपना मस्तक ऊंचा किये व छाती अकड़ाये खड़ा है। आज इंगलैंड-निवासियोंकी

आशालता लहलहा रही है! आज उन्हें उनके निरन्तर अध्यवसायका फल प्राप्त हो रहा है! आज वे अपने परिश्रमको फलीभूत होते देख फूले नहीं समाते! यदि ऐसी उन्नतिपर उन्हें आनन्द न हो, जिसपर संसार आनन्द मनाता और उन्हें बधाई देता है, तो यह अप्राकृतिक होगा। अप्राकृतिकताके दर्शन इस विश्वमें नहीं हो सकते। जो कुछ आपके दृष्टिगोचर है वह सब प्रकृतिके अनुकूल है, प्रतिकूल नहीं।

---

(२)

पाश्चात्य जीवन

पाश्चात्योंने मुख्यतया दो बातोंपर ध्यान रक्खा है जिनके बिना गार्हस्थ्य जीवन कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भवसा हो जाता है। चाहे कुछ ही क्यों न करो, पर जबतक ये दोनों बात अमलमें नहीं लायी जातीं,सारा किया कराया मिट्टी है और किसी प्रकारकी उन्नतिकी आशा करना विडम्बनमात्र है। ये दोनों बातें कुछ नयी नहीं हैं बल्कि जबसे सृष्टिकी कल्पना है तभीसे कार्यरूपमें परिणत हैं; और तभी तो सृष्टिका विकास होता रहता है, अन्यथा ह्रासकी पग पगपर सम्भावना है।

वे दोनों बातें दो शक्तियां हैं जिनमें पहलीका नाम उपार्जन अथवा लाभशक्ति है और दूसरीका नाम संरक्षण-शक्ति है। उक्त

दोनों शक्तियां आपसमें अन्योन्या श्रय-संबन्ध बड़ी ही सघनताके साथ रखती हैं और एक दूसरीकी उपेक्षा कदापि नहीं करतीं बल्कि सदा सापेक्ष रहती हैं।

उपार्ज्जन अथवा लाभकी महिमा विश्वविदित है, जिसे सजीव निर्जीव दोनोंही उपलब्ध करते हैं। बगैर उक्त शक्तिके और तो और आहारतक नहीं मिलता, जिसके ऊपर जीवन निर्भर है। वाचकवृन्द सजीवके बारेमें इस शक्तिका परमोपयोग जान गये होंगे किन्तु निर्जीवकी बाबत उन्हें सन्देह होगा। सन्देहास्पद तो यह विषय कदापि हो ही नहीं सकता, क्योंकि आहार विहार बिना जिस भांति शरीरयात्रा सिद्ध नहीं हो सकती, उसी प्रकार निर्जीवका भी प्राकृतिक जीवन इस उपार्ज्जन अथवा लाभशक्तिके बिना चलता दिखाई नहीं देता। उदाहरणके लिये किसी वृक्षको ही लीजिये। जबतक वह अपना भोजन प्राप्त नहीं करता तबतक लहलहाता नहीं। पत्थरके रूपमें जो मृत्तिका परिवर्त्तित हुई उसका एकमात्र कारण उसकी लाभशक्ति है। पत्थर उन कान्तिमान् व सौन्दर्य्यशाली रत्नोंमें जो परिवर्त्तित हुए, जिनके बिना बड़े बड़े राजा महाराजाओंके किरीट मुकुट शून्य दीख पड़ते, रमणीरत्नोंका शृंगार शून्यप्राय जान पड़ता, वे अपनी उक्त शक्तिहीके द्वारा। इसीलिये उक्त शक्तिको सृष्टिकर्त्ताने सारी सृष्टिके लिये प्रदत्त किया है जिसमें सभी अपना विकास करें।

तदनुसार ही पाश्चात्य संसार उपार्ज्जन शक्तिकी प्राप्तिकी

ओर अत्यधिक सापेक्ष हो अपनी धुनमें मस्त रहा करता है और उक्त शक्ति प्राप्त कर अपना मुख उज्ज्वल करता हुआ सारे संसार की भलाई करता है। इसकी एक एक वैज्ञानिक बातपर दर्शकोंके मुखसे अनेक अनेक धन्यवाद निकलते हैं। सच है, कला-कौशलके बिना भौतिक संसारका काम उत्तम रीतिसे नहीं चल सकता।

यदि आज और जगहोंकी बात न चलाकर इस दीन भारतवर्षकी ही बात चलायी जाय और पाश्चात्य संसारकी उपार्ज्जन शक्तिका नमूना भारतीय नगरोंकी दूकानोंमें देखा जाय तो वाचकवृन्द! आप विक्रयार्थ रक्खी हुई चीजोंको देख फौरन खिल उठेंगे और आपके हृदयमें एक प्रकारका आनन्दोद्भास होगा; तब आप कहेंगे—वाह, ये चीजें कैसी उत्तम हैं! ये तो बड़े कामकी हैं! इनके बिना भौतिक संसारका चलना कठिन ही नहीं बल्कि एकदम असम्भव है!

ये दोनों शक्तियां, वाचकवृन्द! प्रकृतिदेवीके द्वारा जन्मके साथ ही साथ दी जाती हैं, किन्तु इनका विकास सत्संगतिके अधीन रहता है। जिसने सत्संगतिमें रहकर इन दो शक्तियोंका विकास कर पाया और तदनुसार कला-कौशलके मार्गका पथिक बना, तो फिर क्या कहना है! स्वयं देवता होकर पूजा जाता है और संसारमें अपना आदर्श इस प्रकार स्थिर कर जाता है कि वही आदर्श लोगोंके हृत्पट्टपर अंकित होता हुआ अपना प्रभाव जमाता है।

अलुमीनियमके बर्तन—यदि आजकल भारतीय गृहोंमें बरतने वाली किसी भी वस्तुको लीजिये तो सच्चा उदाहरण इन बातोंकी पुष्टिमें मिलेगा। व्यवहारके बर्तनोंमें लोटा, ग्लास, कटोरा, कटोरी, थाली यहांतक कि कड़ाही, करछुल, चमचा वगैरह प्रायः सभी बर्तन हैं जो पीतल, लोहा, कांसा, भरत अथवा तांबेके न होकर कम कीमतमें मिलनेवाली अलुमीनियम धातुके बने दिखायी देते हैं। ये बर्तन हलके, राखसे मंजनेपर साफ और खट्टी वस्तुओंके रखने योग्य निःसन्देह होते हैं। यद्यपि टूटनेपर इनकी कीमत बिलकुल नहींके बराबर रहती है तथापि इनसे समयपर बड़ा काम निकलता है। क्या आप जानते हैं कि यह अलुमीनियम धातु किस प्रकार तैयार की जाती है? कहते हैं कि इसे विज्ञानवेत्ता रासायनिक सहायता द्वारा बालूसे तैयार करते हैं और इससे असीम लाभ उठाते हैं। आज भारतमें उसकी इतनी खपत है कि विरला ही कोई ऐसा घर होगा जहां दस पांच बर्तन इसके बने हुए जर्मन सिलवरको मात न करते हों! धन्य रासायनिक विज्ञान! धन्य कला-कौशल!! धन्य परिश्रम!!!

वस्त्र—यह तो हुई बरतनेके बर्तनोंकी बात। अब वाचकवृन्द! जरा उन वस्त्रोंकी ओर दृष्टि डालिये जिनके द्वारा भारतीय अपनी लज्जा निवारण कर अपनी परम प्रतिष्ठा समझते हैं। ये वस्त्र तरह तरहके उत्तमोत्तम सूतोंकी रचनाके नमूने हैं जिन्हें भारतवर्षके समान मजदूर नहीं कातते, बल्कि दैवी सिद्धियोंके

समान कलें कातकर रख देती हैं। इतना ही नहीं वे मनुष्योंके समान उत्तमतासे वस्त्र भी तैयार कर देती हैं। तभी तो आज जहां देखिये पाश्चात्योंकी तूती बोल रही है। इसकी दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति दिखायी दे रही है। यथार्थमें वही देश संसारमें अपना मस्तक ऊंचा कर सकता है जो विज्ञान द्वारा मनुष्योंके अत्यधिक परिश्रमको कम कर देता है और कलोंके द्वारा शीघ्रतापूर्वक सभी काम लिया करता है। निःसन्देह ये वस्त्र देखनेमें सुन्दर, पहननेमें हलके और देशीकी अपेक्षा कम कीमतमें मिलते हैं पर ये अधिक दिन टिकते नहीं। दस बारके धोनेपर उनकी हालत बिगड़ जाती है और यदि पहननेवाला व्यक्ति दीन रहा तो उसे पुनः वस्त्रके खरीदनेकी जरूरत आ जाती है।

जिनकी तबीयत मखमल, साटन या रेशमी कपड़े पहननेकी है वे कीमतका ख्याल न कर सानन्द अपने दिलकी आरजू पूरी कर लेते हैं। खासकर इस दीन भारतको रमणियां किसी प्रकार अपनी इच्छाके अनुसार चमकीले कीमती वस्त्र पहनकर अपनेको धन्य मानती हैं। यह बात दूसरी है कि जितनी कीमत उनके खरीदनेमें लगती है उसका ख्याल करते हुए वे भड़कीले वस्त्र बहुत कम टिकाऊ होते हैं।

और चीजें—इसी प्रकार और और चीजें—अर्थात् जूते, टोपियां, ऐयाशीकी चीजें, जेवर, नगीने वगैरह—पाश्चात्य संसार ऐसी तैयार करता है कि देखनेसे चित्त मुग्ध हो जाता

है ! भड़कदार जूते किसका मन हरण नहीं करते ! चटकोली टोपियां किसे ख्वाहिशमन्द नहीं बनातीं ! ऐयाशीकी चोजें किसे स्वर्गका सुख लूटनेके लिये विवश नहीं करतीं ! जेवर जिनकी कारीगरी ही देखकर लोग दंग रह जाते हैं, किसका मन नहीं चुराते ! नगीने जिन्हें हम नकली कह सकते हैं, क्योंकि वे इमिटेशन (Imitation) कहलाते हैं, आज दिन भारतीय नागरिकोंके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे हैं ।

मोटर—आज दिन मोटरें प्रायः भारतकी सभी जगहोंमें दौड़ा करती हैं । एक स्थानसे मनुष्य वायु-वेगवत् दूसरे स्थानको शीघ्र चला जाता है । यद्यपि चढ़नेवालेको आराम होता है, क्योंकि वह बहुत जल्द अपनी ख्वाहिश पूर्ण करता है, पर दोनों ओर रास्तेके जो दूकानदार या राही हैं वे गर्दसे भर जाते हैं और हालत बुरी हो जाती है । इसी प्रकार साइकिलसे भी कम लाभ नहीं है, यदि चढ़नेवाला होशियार हो और बहुत सचेत होकर चलावे । पर यदि टूटनेपर लागतकी ओर ज़रासा भी ध्यान दिया जाय तो यही कहना पड़ेगा कि जो कुछ काम लिया गया वही क्या कम लाभ है जब कि जरूरत अच्छी तरह पूरी हुई है ।

किस तरह हरएक काममें आराम मिलेगा इसपर पाश्चात्य संसारने भलीभांति अपनी बुद्धिकी प्रखरता दिखायी है और एकसे एक आरामकी वस्तुएं तैयार कर लोगोंको उनसे लाभ उठानेसे वञ्चित नहीं किया; बशर्ते कि लाभ उठानेवाला व्यक्ति रुपये खूब खर्च कर सकता हो । तात्पर्य यह है कि उक्त संसार

अपने कला-कौशल द्वारा आरामकी चीजें तैयार कर उनसे कई गुना लाभ उठाता है और इस प्रकार अपने देशको समृद्धिशाली बनाता है।

लैंप बाइस्कोप—भारतके धनी मानी लोगोंमें इनके कला-कौशलोंकी परिचायक चीजें प्रायः सभी दिखायी देती हैं। बड़े बड़े आलीशान महल व कमरे ऐसे ऐसे लैम्पोंसे सजे जाते हैं कि यदि एक सूई भी जमीनपर गिर पड़े तो सहज ही मिल जाती है। दीवारोंमें पाश्चात्य सभ्यतासूचक जो चित्र लगे हुए हैं उन्हें देखकर दर्शकोंके मनमें ऐसे ऐसे भाव उत्पन्न होते हैं कि थोड़ी देरके लिये वे अपनेको भूल जाते हैं। ऐसी मुग्ध करनेवाली शक्तिसे सम्पन्न उनकी चित्रोंकी कारीगरी हद दर्जेकी है! बाइस्कोप भी चित्र-प्रदर्शन ही है जिसमें चित्र लिखित व्यक्ति इशारेसे सारे काम करते हैं सिर्फ बोलते नहीं। यदि किसी प्रकार वे बोलने लग जाते तो आज निःसन्देह पाश्चात्य लोग एक प्रकारके सृष्टिकर्त्ता कहे जाते; क्योंकि उन व्यक्तियोंकी कार्रवाईसे सभी रसका आस्वादन किया जाता है।

फोनोग्राफ—इस दीन भारतके समृद्ध लोगोंके रंगमहलोंमें फोनोग्राफ भी इनके कौशलका अपूर्व प्रदर्शन है। जिस समय अच्छे अच्छे रेकर्ड गानेवाले कवियोंके गानेसे भरे चढ़ाये जाते हैं और आंखें बन्दकर बाजेसे ज़रा दूर जाकर सुननेवाला बैठता है, तो उसे ठीक वही आनन्द प्राप्त होता है जो उसे कविका गाना सुनकर प्राप्त होता है। मनोविनोदके लिये यह एक अच्छा

साधन है और परिश्रम करनेके बाद यदि इसका गाना सुना जाय तो निःसन्देह तबीयत बदल जाती है, चेहरेपर आनन्दका विकास दृष्टिगोचर होता है, मनकी मुरझायी हुई कलियां खिल जाती हैं। बेशक, यह बड़ी ही उत्तम कारीगरी है।

गाड़ियां—दिनोंदिन परिश्रम करते हुए पाश्चात्योंने जो गाड़ियोंके बनानेमें उन्नति की है उसे वाचकवृन्द हवाखोरीके लिये तरह तरहकी गाड़ियोंपर चक्कर मारते हुए अमीर उमरा लोगोंको देखकर ही जान सकेंगे। इसके लिये आपको बहुत दूर नहीं जाना होगा। कोई धनपात्र अपनी गाड़ीपर सवार होकर चला जा रहा है और रास्तेमें तरह तरहकी कहीं अच्छी बराबर, और कहीं ऊबड़खाबड़ सड़कें मिलती हैं, पर क्या ज़रा भी चढ़ाव उतारकी वजहसे कष्ट मालूम होता है? कदापि नहीं। क्योंकि पाश्चात्य देशकी बनी कमानी है और पहियोंमें रबर लगा हुआ है, फिर लचकके सिवा विशेष कष्ट ही क्यों होने लगा।

मोटरमें विभिन्नता—मोटरके जरिये आजकल जितने काम पाश्चात्य लोग लेते हैं शायद किसी जमानेमें न लिया गया होगा। मोटरकी खड़ाऊं, मोटरकी साइकिलें, मोटरकी छोटी छोटी डेंगियां इनपर चढ़नेवालोंको हदसे बेशी आराम पहुंचाती हैं जिसके उदाहरण पग पगपर भारतीयोंको मिलते हैं। तैरनेके लिये ऐसी ऐसी तैरनेवाली चीजें तैयार की जाती हैं कि जिनकी सहायतासे तैरनेवाले जलपर अपनी जबर्दस्त हुकूमत रखते हैं। क्या यह कम कारीगरी है? नहीं, कदापि नहीं।

सुन्दरताकी वृद्धि—किस प्रकार किस वस्तुकी सुन्दरता बढ़ेगी, इसपर पाश्चात्योंने बड़ा मनन किया है और तदनुसार काम करनेसे जरा भी पीछे पैर नहीं दिया। अपनी सुन्दरता वे यथार्थमें केशोंके द्वारा ही समझते हैं। पाश्चात्य सभ्यताके रंगमें सिरसे पैरतक रंगे लोग आगेसे पीछेको गावदुम केश कटवाते हैं और सुगंधित तैल जिसमें सेंटकी गन्ध भरी हुई है, लगाते हैं। उमदा साबुन लगाकर अपने शरीरके सर्वांगको धोकर बादमें सेंटसे सुवासित करते हैं और झीने वस्त्र पहन कर रंगरेलियां मनाते हैं। गलेकी शोभाके लिये गलबन्द—नेकटाई—चढ़ा रहता है और पैरमें गर्द न लगे इसलिये मोजे बराबर चढ़े रहते हैं।

घड़ी—आज दिन घड़ी रखनेका रवैया सभी जगह दिखायी देता है। इसके कई कारण हैं, पर मुख्य कारण समयका ज्ञान है। चाहे जिस फिर्केका मनुष्य हो, कितना दिन चढ़ा है या बाकी है, अथवा कितनी रात्रि बीत चुकी है या बीतनेको बाकी है, यह जाननेकी इच्छा उसके मनमें बनी रहती है। जिसके लिये उत्कट इच्छा होती है उसका आविष्कार या गवेषण अवश्यमेव होता है। बस, यही कारण है कि लोग ठीक समय जाननेकी इच्छासे ही घड़ियोंका आदर इतना अधिक करते हैं। ज्यों ज्यों इसका आदर बढ़ता गया त्यों त्यों यह बहुतायतसे तैयार की जाने लगी और इसपर लोगोंका प्रेम इतना बढ़ा कि अब तो बड़ीसे बड़ी घड़ीसे लेकर छोटीसे छोटी घड़ी कारीगरोंने तैयार की है।

और कहांतक कहा जाय, लोगोंके हाथ, गलेका गहनातक भी इससे खाली नहीं है, तभी तो हाथपर रिस्ट-वाच और जेबघड़ी होलचेनके साथ गलेका गहना बन गयी है।

छड़ी—छड़ीका हाथमें, कहीं जाने या टहलनेके वक्त, रखना लोग पसन्द करते हैं। इसके भी कई कारण हैं, पर मुख्य कारण आत्मरक्षा है। कोई कटहा कुत्ता वार न करे, कोई उचक्का झपटकर शरीरपरसे कुछ ले न भागे, शरीर दुर्बल होनेपर कहीं तलमलाकर चलता हुआ व्यक्ति गिर न पड़े, या कोई गाय या भैंस अथवा भेड़ या बकरी अपने सींगोंसे कुठांव कहीं ठोकर न दे दे, अथवा अन्धेरेमें ऊबड़खाबड़ ज़मीनका पता न मिलनेपर गिर जानेवाला चोट न खाय, इसीलिये लोग छड़ी या डण्डेसे इतनी मुहब्बत रखते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह बड़े ही कामकी चीज है। यदि पानीमें कहीं जाना हो, तो उसका भी पता यह लगा देती है। तभी तो आज बाजारोंमें यह नाना प्रकारकी दिखलायी देती है। कहीं सुन्दर मुठवाली बेतकी छड़ी है तो कहीं सींगोंकी जिसके अन्दर लोहेका अच्छा गज़ दिया हुआ है। आबनूसकी छड़ी कहीं विक्रयार्थ रक्खी है तो कहीं कहीं जंगली बांस या काठकी। तात्पर्य यह है कि एकसे एक अनूठी छड़ी जिसमें पाश्चात्योंके हस्तकौशल दिखलायी पड़ते हैं, आज भारतीय बाजारोंकी शोभा बढ़ाती हुई जहांसे वह आई है उसे धन-सम्पन्न कर रही है।

बिजलीका पंखा-बिजलीका पङ्खा भी आधुनिक समयमें बड़ा ही महत्व पा रहा है। इसका कारण यह है कि बड़े बड़े

आफिसोंमें जहां बहुतसे कर्मचारी लोग काम करते हैं और गर्मीका मौसिम आ जाता है तो खासकर पंखोंकी सख्त जरूरत होती है। एक एक कर्मचारीके ऊपर एक एक पंखा हिलानेवाला यदि रख लिया जाय तो उस आफिसको खर्चके बोझसे दब नहीं जाना पड़े; यदि एक साथ कर्मचारियोंके बैठनेका इन्तज़ाम कर झालरदार लटकते हुए पङ्खोंके चलानेके लिये एक एक खींचनेवाला भी रक्खा जाय, तो भी वह आफिस खर्चके भारको उठा न सकेगा। बस, इसीलिये जिसमें लोगोंको तरद्दुद न हो बिजलीके पङ्खोंका प्रचार हुआ है। पर याद रहे कि जैसे तैसे बने हुए पंखे उस कामको पूरा न कर सकेंगे,इसी कारण पाश्चात्योंने नये ढंगके परदार बिजलीके पंखे तैयार कर असीम लाभ उठाया है।

बिजलीकी रोशनी—जिन कारखानोंमें दिनकी अपेक्षा रातको ही अधिक काम हुआ करता है वहां रोशनीकी—ऐसी रोशनी जिससे खूब साफ मालूम पड़े और पैसा भी कम खर्च हो—सख्त जरूरत आ पड़ती है। यदि एक एक दीपक या लालटेन अथवा मोमबत्ती प्रत्येक कर्म्मचारीके हाथमें दे दी जाय तो सारा कारखानेका नफा तेल बत्तीमें ही गायब हो जायगा। फिर कारखानेवाले कारखाना कैसे चला सकेंगे। इसीलिये बिजलीकी रोशनी पाश्चात्योंने चलायी है, जिसके जरिये आसानी और कम खर्चमें आला दर्जेका काम होता है; हां, पहले सिर्फ बिजलीका एक खज़ाना बनाना पड़ता है।

ब्रश—स्वच्छताके बिना जीवन-संग्राममें विजय प्राप्त करना एक दुराशामात्र है। जिसमें भलीभांति लोग स्वच्छताका पालन करें इसलिये मैल दूर करनेके कितने ही साधन पाश्चात्योंने प्रस्तुत किये हैं। इन साधनोंमेंसे एक ब्रश (Brush) भी है। सरके बाल झाड़नेमें, ऊनी कपड़े या मखमल या शाल दुशालोंके साफ करनेमें ब्रश बड़ा काम देता है। टोपियोंको धूपमें रखकर इससे झाड़ देनेसे एक बार उसकी आब नयी टोपीसी हो जाती है। जिन गहनोंमें मैल जकड़ा हुआ है उन्हें सोडेके पानीमें भिंगाकर चार हाथ ब्रशके लगानेसे वह गहना बिलकुल नया हो जाता है। और तो और जमीनतक बहारनेके काममें ब्रशने बड़ा काम किया है; जूतोंकी सफाई इसके बिना जैसी होनी चाहिये वैसी कदापि नहीं होती। इसी वजहसे पाश्चात्योंने ब्रशको कई परिमाणमें तैयार किया है जिसके द्वारा वे निःसीम लाभ उठाकर अपने देशको सम्पन्न करते हैं।

छुरी कैंची—इसी प्रकार कतरनेके काममें रंग बिरंगी कैंचियां और तराशनेके काममें तरह तरहकी छुरियां, जिन्हें पाश्चात्य जगत जन्म देता है, आज भारतीय गृहोंके अन्दर रमणियोंकी सन्दूकोंमें दिखायी पड़ती हैं। ये दोनों चीजें बड़ीही उपयोगी हैं और ये एक बड़ी भारी आमदनीका निर्माण करती हैं। धन्य वह देश है जो जरूरतके मुताबिक चीजोंको तैयार करता है और दुनियांकी जरूरत रफा करता हुआ एक अच्छी आय प्राप्त कर अपनेको समृद्ध करता है।

सूई पेचक—वस्त्रोंकी बड़ी महिमा है, क्योंकि ये लज्जा निवारण करते हैं। किन्तु यदि पोशाक तैयार करनेके साधन सूई और पेंचक या सीनेके मशीन न हो तो उसे तैयार करना असम्भव है; फिर लज्जा निवारण कौन करेगा? धन्य है पाश्चात्य संसार जिसने उक्त सीनेवाले साधनोंको बनाकर औरोंको सुख दिया और अपना घर भरा।

चश्मे—जबतक सारी इन्द्रियां अपने काम कर सकती हैं तबतक इनकी उपयोगिता है,अन्यथा वे बेकार होकर सिवा कष्ट देनेके और कुछ नहीं करतीं। यों तो सभी इन्द्रियां अपने अपनेको बड़े कामकी सिद्ध करती हैं, पर नेत्रोंको उपयोगिता और इन्द्रियोंसे कहीं बढ़कर कही गयी है—कही गयी है क्या! यह बात अनुभव-सिद्ध है। जिस समय नेत्रोंपर किसी तरहका जरर आ पहुंचता है उस समय जीवन भारसा प्रतीत होने लगता है, क्योंकि नेत्रोंकी अमूल्यता सबपर विदित है। जब टाइपकी खराबी या केरोसन तेलके दोषसे, या ब्रह्मचर्य्यके अत्यन्त अभावसे नेत्रोंमें दृष्टि शक्ति कम हो जाती है तब बिना चश्मा (उपनेत्र) के काम चलना एकदम कठिन हो जाता है। इसलिये लोग चश्मा लगाते और जीवनका कुछ आनन्द पा जाते हैं। जैसे भूखेके लिये अन्न, प्यासेके लिये पानी, निर्धनके लिये धन, और दुर्बलके लिये बल है उसी प्रकार कमजोर नेत्रके लिये चश्मा है। तरह तरहकी कमानियोंके साथ ऐसे पेबलको लगाना जो दूरदर्शी और अदूरदर्शी हों, पाश्चात्य संसारका ही कार्य है, जिससे नेत्रशक्तिहीन

लोग अपूर्व लाभ उठाते हैं और उक्त जगत् मालामाल हो जाता है।

ताले—जिस समय मनुष्य असीम लाभसे अपने घरोंको भरने लगता है उस समय उपार्जित धन भलीभांति स्थिर होकर रहे यही सदिच्छा उस उपार्ज्जन करनेवाले व्यक्तिकी रहती है और तदनुसार वह सुरक्षाके साधन ढूंढ़ने लगता है। सबसे बढ़कर सुरक्षाका साधन तो किसी सच्चे व्यक्तिको उस धनकी रख-वालीमें नियुक्त करना है, पर यदि कई स्थानोंमें धन हो अथवा धन वस्तुओंके रूपमें हो तो ऐसी अवस्थामें बहुतसे सच्चे व्यक्तियों-की नियुक्ति—वह भी जगह जगहपर—खर्चका एक विशेष कारण है। जिसमें अंधाधुन्ध खर्चसे बचाव हो और धन भी सुरक्षित रहे इसीलिये पाश्चात्योंने तरह तरहके मजबूत ताले और लोहेकी आलमारियां और सन्दूकें तैयार की हैं जिनमें रखनेसे ही ईप्सित धनकी सुरक्षा हो जाती है, सिर्फ कुञ्जी हिफाजतके साथ रखनी पड़ती है। इस जमानेमें तालोंकी व आलमारियों तथा सन्दूकोंकी बिक्री इतनी बढ़ीचढ़ी है कि ये चीजें एक ख़ासी रास्ता आमदनीका बनाती हैं।

सेफ़-जिनकी सम्पत्तियां बहुत दूरतक फैली हुई हैं और जगह जगह नकद बिक्रीको जमा रखनी पड़ती है और अग्निभयकी पग पगपर आशङ्का रहती है वहां उस हालतमें धनसंरक्षाकी समस्या और भी जटिल हो जाती है जब कि मुद्रायें सोने, चांदीकी न होकर कागजके बने हुए नोटोंकी प्रचलित हैं। इस

घोर विपत्तिका सामना करनेके लिये पाश्चात्य जगत्ने 'फायर प्रूफ' लोहेके सेफ तैयार किये जो आगमें जलनेतक नहीं और उनमें रक्खे हुए नोट उसी भांति सुरक्षित रहते हैं जैसे कि तहखानोंके अन्दर। इन सेफोंसे कम लाभ नहीं होता, क्योंकि शायद ही कोई ऐसा लक्ष्मीपात्र व्यक्ति होगा जिसके घरमें दो चार सेफ न हों।

लालटेनें—अन्धकारके नाश करनेके मुख्य उपाय सूर्य्यदेव अथवा अग्निदेव हैं। यह बात बिलकुल प्रत्यक्षसिद्ध है, क्योंकि यदि यह दैनिक घटना कही जाय तो इसमें यथार्थताके सिवाय अत्युक्तिका लेशमात्रतक नहीं है। जबतक सूर्य्यदेवका प्रकाश वर्त्तमान रहता है तबतक तो अन्धकार फटकने नहीं पाता; पर हां, ज्योंही वह अस्ताचलावलम्बी हुए कि इसने शनैः शनैः अपना अटल राज्य जमाना प्रारम्भ किया। यह घटना प्रायः रात्रिमें होती है जब चन्द्रदेवके दर्शन नहीं होने पाते; अन्यथा इसकी ह्रासकी दशा रहती है। पहली हालतमें अर्थात् चन्द्रदेवके दिखलाई न देनेपर अग्निदेवके प्रकाशके सिवा दूसरा कोई चारा नहीं। इन्हीं अग्निदेवके प्रकाशकी यथेष्ट रूपमें वृद्धि करनेके लिये पाश्चात्य संसारने तरह तरहकी रंग विरंगी लालटेनें तैयार की हैं, जिनके शीशे सभी तरहके मोटे पतले होते हैं व रङ्ग उनके बड़े आकर्षक होते हैं। घटाने बढ़ानेवाली पेंचसे घुमाकर बत्तीको कम बेशी भी कर सकते है। इन लालटेनोंके द्वारा उक्त जगत् कम लाभ नहीं करता।

हाथकी पंखियां—जब ग्रीष्म कालका आगमन होता है उस समय उष्ण कटिबन्धवाले देशोंमें ठंढी हवा पैदा करनेके साधनोंका जितना आदर होता है उतना अन्यका नहीं होता। इन्हींमें-से पंखा भी एक है जिसके बिना काम नहीं चलता, यहांतक कि कहीं जानेपर छोटे छोटे पंखे स्त्री पुरुषोंके हाथके भूषण रहते हैं। सौन्दर्य्यकी महिमा विचित्र है। इसीका नाम आकर्षणशक्ति है। जिसमें भलीभांति वायुसेवन भी हो और आकर्षण भी बना रहे, इसीलिये पाश्चात्योंने ऐसी ऐसी मोहनी पंखिया तैयार की हैं कि देखने ही मात्रसे चित्त अपने काबूके बाहर हो जाता है और ये कम लाभमें परिणत न हो एक विशाल आय खड़ी कर देती हैं।

छाते—धूपसे व वर्षासे समयपर बचनेके लिये छातेकी सृष्टि मनुष्यजातिने की है। इसके द्वारा जो आराम गर्मी व बारिशके दिनोंमें होता है उसे हरएक आदमी अनुभव करता है। परन्तु छाता ऐसा होना चाहिए जो वजनमें बहुत भारी न हो; खोलने, बन्द करनेमें आसानीके साथ खुल व बन्द हो सके। इस जरूरत-को पूरी करनेके लिये पाश्चात्योंने कैसे कैसे उत्तमोत्तम छाते तैयार किये हैं जिन्हें देखते ही मन प्रफुल्लित हो जाता है, और जब उनके द्वारा ईप्सित कार्य्य सम्पन्न हो जाता है उस समय धन्य-वाद व आनन्दके अश्रु प्रवाहित होते हैं। इनकी खपत आज-दिन भारतवर्षमें कहीं अधिक है और तदनुसार ये कम आमदनी-के साधन नहीं हैं।

होल्डर पेन—लिखनेके कलमोंका पाश्चात्य जगत्‌ने कम प्रचार

नहीं किया है,जिनके द्वारा लेखनकला भलीभांति सिद्ध होती है। ऊपरका अंश होल्डर कहलाता है क्योंकि वह नीचेके अंश निबको पकड़े रहता है। होल्डर प्रायः काठके होते हैं, पर शीशे, हड्डी आदिके भी वे बहुत सुन्दर बनते हैं। निब लोहे, तांबे, पीतल व जस्तेकी बनी हुई होती है और तुरत होल्डरमें लगाकर लिखनेके काममें आती है। इन कलमोंका समधिक प्रचार भारत-वर्षमें पाया जाता है। इनके अलावे परकी लेखनियां भी चली हुई हैं जिन्हें छुरीसे तराशकर लकड़ी या कंडेके कलमोंके समान बना लेते हैं और काम चलाते हैं। इनके द्वारा भी उक्त संसार कम आय नहीं प्राप्त करता।

फौंटेन पेन—जब लिखनेके साथ हद दर्जेका प्रेम उत्पन्न हुआ तब पाश्चात्य जगत्ने मसी और लेखनीको एक साथ रखने-का निश्चय किया और तदनुकूल 'फौंटेन पेन' की सृष्टि की गयी। इसके ऊपरी भागमें रोशनाई रहनेका खजाना बना और निचला हिस्सा जिसमें निब लगी है, एक स्याही आनेवाले सङ्कीर्ण मार्गसे युक्त किया गया। फिर क्या कहना! एक अनूठा लिखनेका उपकरण तैयार किया गया। जिसमें रोशनाई छलक-कर न गिरे, इसलिये उक्त लेखनोमें एक अटकानेका साधन लगा-कर उसे और भी महत्त्व दिया गया। इन कलमोंके कई प्रकार हैं जिनसे आज भारतवर्षके पाश्चात्य शिक्षाप्राप्त लोग अपनेको धन्य मानते हैं। इन लेखनियोंके द्वारा उक्त जगत् बड़ी भारी आमदनी करता है और अपना व्यापार बढ़ाता है।

खिलौने—छोटे छोटे बच्चोंके प्रसन्न रखनेके लिये, जिसमें वे अपनी माताओंको गृह-कार्य्यमें कुछ समयके लिये संलग्न रहने दें, कुछ मनोरञ्जनकी आवश्यकता है। मनोविनोदकी सामग्रियोंका निर्माण करते हुए जैसे जैसे क्रीडनक (खिलौने) पाश्चात्य जगत्‌ने बनाये हैं उन्हें देखकर ही कोई भी सहृदय व्यक्ति मुक्त-कण्ठसे उसकी प्रशंसा किये बिना न रहेगा। प्रशंसा क्यों न की जाय जब कि निर्जीव खिलौने आकार प्रकार द्वारा सजीवसे जान पड़ते हैं; और कोई कोई तो यंत्र द्वारा सम्पन्न की गयी अपनी सजीवताके कारण अङ्ग-चालन भी करते हैं, नेत्रोंको फेरते हैं, हाथोंमें दी हुई झांझ भी बजाते हैं, जिनके कौतुकको देखकर ही बच्चे कुछ देरके लिये अपनी माताओंको भूलसे जाते हैं। क्या इन खिलौनोंकी विभिन्नताकी ओर पाठकवृन्द! आपने ध्यान दिया है? जो वस्तु सृष्टिमें दिखायी देती है ये खिलौने उसीकी नकल हैं, उसीका छोटा कृत्रिम रूप धारण कर मनोमोहन करते हैं। क्या इनके द्वारा उक्त संसार कम आमदनी करता है? नहीं! यह आय ऐसी होती है जिसके द्वारा यह एक अच्छा व्यापार कहा जा सकता है।

सजावटके उपकरण—जब लोग सब कामोंसे निश्चिन्त होते हैं और भोजनादि करके आराम करते हैं उस समय कुछ तत्त्वोंके प्रति अभिरुचि उत्पन्न करनेवाले पदार्थ सामने आवें, अथवा मनोरञ्जन भलीभांति हुआ करे—ऐसे ऐसे विचार उनके मस्तिष्कमें उत्पन्न होते हैं। उसी समय उनका अपने अपने घरोंकी सजावटकी ओर

ध्यान आकृष्ट होता है। यह बात प्राकृतिक है,कुछ बनावटी नहीं। तदनुसार पाश्चात्य जगत्की बनाई हुई सामग्रियां सजावटका काम दे रही हैं। क्या ही अच्छी अच्छी हांड़ियां और कूंड़ियां, शीशेकी बनी दीवालगीरें और लटकानेके लट्टू, रंग विरंगी झाड़ व बैठकें, निर्जीवताको भी सजीवतामें परिवर्तित करनेवाली तस्वीरें लोगोंके घरोंकी सजावटका उपकरण हो रही हैं। ऐसे घरोंके अन्दर जाते ही स्वर्गसुखकी याद आती है और इन थोड़ेहीसे उपकरणों द्वारा उसका कुछ अनुभव किया जाता है। क्या इन साधनोंसे कुछ कम लाभ होता है? नहीं! एक बड़ी भारी आय इनके द्वारा सम्पन्न होती है।

छुरे—आत्मरक्षाके कारण पाश्चात्य संसार ऐसे ऐसे साधनके निर्माण करनेमें जरा भी नहीं चूका जिनके द्वारा भलीभांति आत्मरक्षा सम्पन्न की जा सके। तदनुसार चन्द्रमा सी चमकवाले, चकाचौंध मचानेवाले छुरे उक्त जगत्ने बनाये जिन्हें हाथमें लेते ही शत्रुका सामना करना बहुत ही सरल हो जाता है, यदि उसका ग्रहण करनेवाला व्यक्ति साहसी, चतुर व धीर है; अन्यथा उसके द्वारा अपनी ही हानि संभव है। इन छुरोंके द्वारा असीम लाभ होता है, क्योंकि लोग अपनी रक्षाके लिये इन्हें खरीदते हैं और हिफाजतसे रखते हैं।

उस्तरे—बालोंको मूड़नेके लिये जब उपाय ढूंढा जाने लगा उस समय उस्तरोंकी सृष्टि हुई। तरह तरहके उनके बेंट बने और अच्छे अच्छे फाल; फिर तो बालोंके मूड़नेका काम इनके

द्वारा भलीभांति सम्पन्न होने लगा। यद्यपि काम चलता था, परन्तु इसकी बनावटमें हेर-फेर कर इसको उन्नत अवस्थापर लाना यह पाश्चात्य ही जगत्‌का काम था। इस जगत्‌ने इसे ऐसा बना दिया जिसमें सब लोग बगैर देखे, अन्दाजसे ही इसका प्रयोग करें और पेंच खोलकर इसपर सिल्ली भी दे लें। यह अद्भुत उस्तरा बड़े कामका है और इसके द्वारा उक्त जगत्‌को असीम लाभ होता है।

बाल काटनेकी कल—तरह तरहकी कैंचियोंके द्वारा हजाम लोग बाल काटते चले आते हैं। पर जिसमें बाल एकदम बराबर कटें इसके लिये चतुर हजामकी जरूरत पड़ती है। इस जरूरतको दूर करनेके लिये एक कल ऐसी पाश्चात्योंने निकाली है जिसके द्वारा अनारीसे अनारी व्यक्ति भी बाल काटनेका काम उत्तमोत्तम रूपसे सम्पन्न कर सकता है, क्योंकि उस कलमें कैंची और कंघी दोनों लगी हुई हैं। ये बाल काटनेकी कलें कुछ कम लाभकी चीजें नहीं हैं, जिनके द्वारा उक्त जगत् असीम व्यापार बढ़ा रहा है और अपनी कलाओंका परिचय दे रहा है।

घास काटनेकी कलें—इन दिनों अङ्गरेजी बंगलोंका रवैया चारों ओर देखा जा रहा है और उनके चारों ओर ऐसे मैदान हैं जिनमें हरी हरी घास क्या ही सुहावनी मालूम पड़ती है। पर जिस वक्त घास बढ़ जाती है उस वक्त बंगले जंगलके बीचमें खड़ेसे जान पड़ते हैं और बढ़ी हुई घासकी वजहसे उन बंगलोंमें रहनेवाले व्यक्तियोंको मच्छड़, कीट, पतङ्ग, दंश आदि बहुत

कष्ट देते हैं। इस कष्टको दूर करनेके लिये पाश्चात्य जगत्‌ने एकसे एक बढ़िया कलोंको तैयार किया है जिनके द्वारा घास काटी जाती है और एक बड़ी आमदनी पैदा की जाती है।

आइना--इस जमानेमें किसी चीजको सुन्दर और सुडौल बनाना व उसकी मनोहरताको इतना बढ़ाना कि जिसमें लोग उसे लेनेपर टूटें, यह पाश्चात्य सभ्यता अपना मुख्य कर्त्तव्य समझती है। तदनुसारही आज मुंह देखनेके रंग विरंगे आइने बाजारोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। ये आइने छोटे बड़े सभी तरहके बनते हैं जिनके द्वारा धन-कुबेरोंके महल अमरावतीकी समता करते हैं। यह तो हुई बड़े आइनेकी बात, पर छोटे आइने भी कम आमदनीके कारण नहीं, क्योंकि इनकी कद्र थोड़ी कीमतकी वजहसे सभी करते हैं और इसीलिये क्या पुरुष और क्या रमणी सभी इन्हें अपने शयनागारमें—या यों कहिये कि सब समय—पास ही रक्खा करते हैं। इसीका नाम है व्यापार द्वारा अपने देशको समृद्ध करना।

छापनेके साधन—किसी भी एक लेख या ग्रन्थ अथवा पुस्तक-मालाकी नकल कराना या करना एक कठिन परिश्रम है, क्योंकि प्रथमवार उसके लिखनेमें जो करना पड़ता है वही बात द्वितीय और अन्यान्य कई वार करनी पड़ती है। प्यारे वाचकवृन्द ! यदि किसीको एक प्रति लिखनी पड़ती है तो उसीमें उसके छक्के छूट जाते हैं और लेखक घबड़ाकर सौ, हजार या लाखकी संख्यामें किसी भी पुस्तककी नकल नहीं कर सकता।

सच तो यह है कि उसे पिष्टपेषण यानी पीसेको पीसनेमें जरा भी आनन्द जान नहीं पड़ता। दूसरी बात यह है कि हाथसे लिखनेमें अशुद्धियोंका होना प्रायः संभव है जिन्हें हटाकर किसी भी ग्रन्थको शुद्ध प्रकाशित करना सभी चाहते हैं। जिसमें भली भांति शुद्ध प्रकाशन हो और वह अधिक व मनोनुकूल संख्यामें हो, इसके लिये छापनेके साधनोंकी सृष्टि पहले पहल चीनमें हुई; पर मशीनोंके द्वारा जो इन साधनोंको एक बृहत् व शीघ्र कार्यसाधक रूप दिया गया वह पाश्चात्योंकाही प्रभाव है। फिर कहना क्या, चाहे जैसी पुस्तकें हों असंख्य छपती चली जा रही हैं और जगत्की भलाई पुस्तकों व लेखोंद्वारा ऐसी होती जाती है कि सभी इसके लिये पाश्चात्योंको धन्य कहे विना नहीं रहते। छापनेके साधनोंद्वारा जो लाभ पाश्चात्य संसारको होता है वह एक बड़ी पूंजीका निर्माता है।

टाइप करनेकी कल—पाश्चात्य सभ्यताके कारण उन्हींकी भाषाने सर्वत्र स्थान पाया है। हस्तलिपिको अशुद्धता व विभिन्नतासे भरी जान, आजदिन सरकारी अदालतोंने टाइप की हुई दर्ख्वास्तोंका अङ्गीकार करना जारी कर दिया है। इसलिये यह कल जिसे पाश्चात्योंने चलाया है आजदिन कचह-रियोंहीमें क्या, जहां जहां पाश्चात्य भाषामें काम होता है, वहां वहां सर्वत्र इसका आधिपत्य है। इसकी जो खपत भारतवर्षमें है उससे और अन्यान्य जगहोंकी खपतोंसे पाश्चात्य देश अपरिमेय आर्थिक लाभ करते हैं।

पानीकी कलें—जलके लिये लोग कूंआके प्रचारके पहले नदियोंकाही आसरा रखते थे। पर जबसे कूंए खोदवाये जाने लगे तबसे नदियोंके अलावे उनके द्वारा भी जलका कार्य्य सम्पन्न होने लगा। जिसमें भरने व लानेमें कष्टोंका सामना करना न पड़े, इस विचारसे नदियों, तालाबों या कूओंके साथ नलोंका सम्बन्ध किया गया जिनके द्वारा निहायत आसानीसे जल लानेका कार्य्य पूरा हुआ। इनके द्वारा भी एक बड़ी भारी आमदनी पाश्चात्य लोग करते हैं और असीम लाभ उठाते हैं।

पानी छीटनेका प्रबन्ध—बड़े बड़े नगरोंमें जहांपर रातदिन घोड़ागाड़ियां चला करती हैं, मोटरकारें धूम मचाये रहती हैं सड़क इस प्रकारकी हो जाती है कि जहां देखिये वहीं गर्देकी भरमार रहा करती है। फिर तो यदि एक भी घोड़ागाड़ी या मोटरकार आयी कि बाजारकी दोनों ओरकी दूकानें और साथही बेचनेके लिये रक्खी हुई उनकी चीजें एकदम गर्दसे भर जाती हैं। बेचारे दूकानदारको झाड़ते पोंछते नाकों दम आ जाता है। इस असुविधाके दूर करनेके लिये पहले भिश्ती लोग पानी छीटा करते थे, बादमें बैलगाड़ियोंने यह काम करना प्रारम्भ किया, पर इन साधनोंसे यथार्थ काम होते न देख पाश्चात्योंने पाइप लगाकर जल छीटनेका उत्तमोत्तम प्रबन्ध किया जिसके द्वारा पानी छीटनेका यथार्थ काम होता है व गर्दा मिट जाता है। इसके द्वारा कुछ कम लाभ नहीं होता।

अन्न पीसनेकी कल—मामूली कामोंके करनेके लिये जिसमें मनुष्यजातिको अधिक श्रम न करना पड़े पाश्चात्योंने नयी नयी चीजें ईजाद की हैं। उदाहरणके लिये अन्न पीसनेकी कलको लीजिये; जितनी देर मनुष्य-जातिद्वारा अन्नके पीसनेमें लगेगी उससे बहुत ही कम समयमें अधिकसे अधिक अन्न पीसा जाता है और मेहनत तथा पैसेकी भी खासी बचत होती है। क्या पाश्चात्योंने इस अनूठी कलके द्वारा कम लाभ उठाया है? नहीं, कहीं अधिक।

सुरखी पीसनेकी कल—जिस वक्त बड़े बड़े आलीशान मकान बना करते हैं उस वक्त पिसा हुआ मसाला अधिकाधिक परिमाणमें दरकार होता है। बगैर इसके तेजीसे काम नहीं बढ़ सकता; इसलिये महीन सुरखी तैयार करनेके लिये पाश्चात्य-जगत्‌ने बड़ी बड़ी चक्कीवाली कलें ईजाद की हैं जिनके द्वारा यह कार्य्य थोड़े श्रमसे सम्पन्न हुआ करता है। इसके द्वारा उक्त संसार खासी आमदनी करता है और सभ्यतामें नाम मारे हुए है।

दवातोंकी विभिन्नता—प्रायः मनुष्यजातिमें लिखनेका काम पड़ा करता है और लेखनीके अलावा सुसम्पन्न मसीभाजन जबतक न हो तबतक सिर्फ कागज या कलमके द्वारा कुछ भी काम नहीं चलता। जिसमें रोशनाई भलीभांति रक्खी जा सके इसलिये तरह तरहकी दवात पाश्चात्य जगत् बनानेमें नहीं चूका। और इस कौशलके द्वारा इसे समधिक आय होती है।

डिब्बे व डिब्बियोंकी विभिन्नता—किसी वस्तुको रखकर यदि कहीं ले जाना होता है तो छोटे उपकरण—डिबियोंकी और बड़े उपकरण—डिब्बोंकी जरूरत मनुष्य-जातिको होती है। तदनुसार इन उपकरणोंकी सृष्टि भी उक्त जातिने की; पर इन उपकरणोंको वस्तुओंकी विभिन्नता तथा परिमाण व कदके अनुसार तैयार करना और उन्हें यथार्थ सौन्दर्यका स्वरूप प्रदान करना कुछ पाश्चात्योंके ही बांटमें पड़ा है। तभी तो आज जिस बाजारमें देखिये उसी जगह ये चीजें मनोहर रूपमें बिका करती हैं। इनके द्वारा पाश्चात्य लोगोंको एक बहुत बड़ी आय होती है।

सन्दूकोंकी विभिन्नता—चीजोंके रखनेके लिये मनुष्यजातिको एक ऐसे उपकरणकी आवश्यकता होती है जिसमें सब चीजें सुरक्षित रह सकें, क्योंकि सभी चीजें सुरक्षाके बिना खराब हो जाती हैं और काम लायक नहीं रहतीं। इसी सुरक्षाके अर्थ भिन्न भिन्न प्रकारके सन्दूक—क्या छोटे क्या बड़े—बाजारोंमें बिक्रीके लिये रक्खे रहते हैं। ये पाश्चात्योंद्वारा बनाये गये हैं और इनके द्वारा एक खासी आय होती है।

तरह तरहके बाजे—मनोविनोदके लिये जिसमें कानोंको सुख जान पड़े भांति भांतिके बाजोंकी पाश्चात्योंने सृष्टि की है। जिस समय मित्रमण्डलीके बीच हारमोनियम, पियानो, फोनोग्राफ इत्यादि बाजे बजते हैं उस समय जैसा मनोविनोदके साथ उनका सत्कार होता है वह अकथनीय है। इन वाद्य विशेषज्ञोंके

द्वारा उक्त जातिने जो व्यापार बढ़ाकर लाभ किया है उसे देख व्यापारी-जगत् आश्चर्यान्वित हो रहा है।

दमकलें—जिस समय किसी भी स्थानपर आग लगती है उस समय वहांकी परिस्थिति इतनी भीषण हो जाती है कि लोग 'त्राहि त्राहि' पुकारने लगते है, क्योंकि जीवनमें सुख देनेवाली सामग्रियां, नहीं नहीं, परिवारके व्यक्ति लोग भी जिसमें न जलें यही वहांके निवासियोंकी कामना रहती है; तदनुसार जलद्वारा, विच्छेदन द्वारा वहांके रहनेवाले उस अग्नि-भयको दूर करते हैं पर यह कार्य्य शीघ्र सम्पन्न नहीं होता। इसके लिये पाश्चात्य संसार दमकलोंके बनानेमें नहीं चूका और इसके निर्माणद्वारा एक खासी आमदनी बना ली।

टेलीफोन—शीघ्रताके साथ जिसमें एक स्थानसे कोई व्यक्ति दूसरे स्थानपर किसी भी व्यक्तिके साथ सुसम्बद्ध भाषण कर ले इसलिये पहले पहल लड़कोंने खेलके ढंगपर सूतके द्वारा तारबर्की बनायी। कुछ दूरपर वक्ता और श्रोता दोनों खड़े होकर अपने अपने हाथोंमें एक एक चोंगा लिये अपने मुंह, कान लगाये रहते थे और वे दोनों चोंगे सूत द्वारा, छेदके साथ जो इनके बीचमें बनाया जाता था, संबद्ध रहा करते थे। इस प्रकार अपने अपने अभिप्रायको ये दोनों कह सुनकर उसे एक विनोदकी सामग्री जानते थे। यह खेल लड़कपनमें हमलोग खेला करते थे, जिस समय टेलीफोनकी सृष्टि नहीं हुई थी। पर इसे यथार्थ रूप देकर इसके द्वारा असीम लाभ उठाना कुछ पाश्चात्योंके ही हिस्से

पड़ा, और यह जाति इस समय इससे दिन दूना रात चौगुना नफा करती है।

टेलीग्राफ—दूर दूरसे जिसमें खबर मिले, इसलिये टेलीफोनका रूपान्तर टेलीग्राफ तैयार किया गया। फर्क इतना ही है कि पहलेसे बोलकर व सुनकर काम लिया जाता है और दूसरेसे खटखटाकर व आवाज सुनकर और लिखकर। खटखटाने और सुनकर लिखनेकी जगहोंपर तारोंसे सम्बद्ध सूतकी डोरियां साथ ही खटखटानेका काठवाला यन्त्र रहता है। इसीपर हाथ रखकर खटखटाना पड़ता है, जिसे सुनकर ही और जगहका कर्मचारी लिख लेता है, क्योंकि खटखटानेमें भी संकेत है और यही संकेत अक्षरों और शब्दोंमें परिणत हो जाता है। ये तार जिसमें गिर न पड़ें, इसलिये दृढ़ खंभोंपर बनी हुई अनेक खूंटियोंसे लिपटे रहते हैं। इसके द्वारा पाश्चात्य जगत् एक बड़ी भारी आय कर लेता है। ठीक है, दामके दाम और मुफ्तमें काम!

वायरलेस टेलीग्राफ—इससे भी बढ़कर बेतारका तार इन दिनों चल रहा है। बेशक यह आविष्कार बड़ा ही आश्चर्यजनक है। बड़े बड़े बुद्धिमानोंकी अक्ल काम नहीं करती, क्योंकि इसमें सिवाय श्रोता और वक्ताके पास एक यन्त्रके किसी तरहकी लाग नहीं है, इसी यन्त्रके सहारे दोनों आपसमें बातचीत कर लेते हैं। यह यन्त्र एक दूसरेसे सम्बद्ध नहीं है। अभी इसके द्वारा केवल पाश्चात्य जगत् ही लाभ उठा रहा है। जनसाधारणके लिए इससे लाभ उठानेका हुक्म आविष्कारक लोग नहीं देते,

अथवा आविष्कारक लोग पाश्चात्योंसे जब अपने आविष्कारका मूल्य ले लेते हैं तो ऐसी अवस्थामें आविष्कारपर उनका स्वत्व ही क्या है।

रेलगाड़ियां—एक जगहसे दूसरी जगह जाने या कुछ भेजनेमें पहले गाड़ियों द्वारा काम लिया जाता था। ये गाड़ियां बैलोंकी, घोड़ोंकी या ऊंटोंकी होती थीं। सिवाय इस उपायके लोग उन जानवरोंपर ही लादकर चीजें भेज दिया करते थे। पर पाश्चात्योंने इंजिनका निर्माण कर उसके भीतर गरम पानीके बलसे काम लेना शुरू किया और चलाने व रोकनेके साधन तैयार कर लोहेकी पटरियों और मजबूत गाड़ियोंतकके बनानेमें अटूट परिश्रम किया। तभी तो आज इन रेलगाड़ियों द्वारा पाश्चात्य जगत् मुसाफिरोंको दूर दूर पहुंचाकर एक बड़ी भारी आमदनी कायम करता है और एक जगहका माल दूसरी जगह पहुंचाकर उसके द्वारा असीम लाभ उठाया करता है।

जहाज—जो काम स्थलमें रेलगाड़ियों द्वारा होता है वही काम जलमें जहाजोंके द्वारा संम्पन्न किया जाता है। इनमें भी लोग बैठकर और माल लादकर एक जगहसे दूसरी जगह आराम-के साथ ले जाते हैं। यदि दूर ले जानेके ये साधन नहीं रहते तो अधिकाधिक परिमाणमें चीजें एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना बड़ा ही कठिन व असम्भव होता। ये जहाज कुछ कम आमदनीके जरिये नहीं; बल्कि इनके द्वारा पाश्चात्य जगत् अमूल्य लाभ उठा रहा है।

फोटोग्राफ—मनुष्यजातिमें शायद ही ऐसा कोई होगा जिसके चित्तमें यह भाव न आता हो कि 'मैं अपना सर्वाङ्ग सम्पन्न चित्र देखता।' जब इस बातकी उत्कट इच्छा हुई तो हस्तकौशल द्वारा लोगोंने चित्र लिखना शुरू किया और धीरे धीरे जब इस काममें उन्नति की जाने लगी, तब तो पाश्चात्य जगत्‌ने फोटोग्राफीका आविष्कार किया। फिर तो एकदम प्राकृतिक चित्र ज्योंके त्यों खींचे जाने लगे; जैसा अक्श पड़ा वैसा ही चित्र खिंच गया। इसके द्वारा चित्र खींचकर उसे धुंधली कोठरीमें अथवा हरे रंगके कपड़ोंको टांगकर, जिससे हरा प्रकाश मिले, अभिव्यक्त (development) करते हुए तैयार कर डालते हैं। इस साधनसे पाश्चात्य जगत्‌ने जो लाभ उठाया है उसका तो कहना ही क्या है, क्योंकि उस जगत्‌का तो यह व्यापार ही है; पर भारतवर्षके लोगोंने इस कलाको सीखकर जो जीविका उपार्ज्जन की वह विशेष उल्लेख्य है, क्योंकि उनकी जीविकाका यह प्रधान अवलम्ब हुआ।

साइक्लोस्टाइल—झटपट २०० या ४०० नोटिसें अथवा प्रश्न-पत्र आदि छोटी लिखी हुई कामकी चीजें छापनेके लिये ऐसा कोई साधन नहीं था कि बगैर कम्पोज किये उनका प्रकाशन सम्भव हो सके। इस त्रुटिको दूर करनेके लिये साइक्लोस्टाइलकी पाश्चात्योंने सृष्टि की, जिसके द्वारा मोमी कागजपर एक खास लोहेकी लेखनीसे लिखकर फौरन लिखित बातोंको छाप सकते हैं। इसके द्वारा पाश्चात्योंको कम आय नहीं

होती, बल्कि इस वस्तुके व्यापार द्वारा वे बड़ा पैसा पैदा करते हैं।

पाश्चात्योंकी लाभशक्ति अथवा उपार्ज्जनशक्ति कहांतक बढ़ी चढ़ी है व व्यापार द्वारा इन्होंने कहांतक लाभ अथवा उपार्ज्जन किया है, इसका मैंने दिग्दर्शन मात्र कराया है। इसी प्रकारकी और और असंख्य चीजें इन्होंने बनायी हैं जिनके द्वारा ये असीम लाभ उठाते हैं और अपने देशोंके मुख उज्ज्वल कर संसारके धन्यवादके पात्र बनते हैं।

कला-कौशलसे सम्बन्ध रखनेवाली कौनसी चीजें इन्होंने नहीं बनायीं! विनोदसे सम्बन्ध रखनेवाली किन वस्तुओंका निर्माण इनके द्वारा नहीं हुआ! विलासिताके कौनसे साधन इन्होंने जगत्के सम्मुख प्रस्तुत नहीं किये! आरामको देनेवाली किन वस्तुओंको इन्होंने ईजाद नहीं किया! व्यापारके कौनसे उपकरण इन्होंने सम्पन्न नहीं किये! तभी तो इनके देशोंकी कीर्त्ति-पताकायें दिग्दिगन्तमें उड़ रही हैं और यह गिरे हुए देशोंके प्रति शिक्षा दे रही हैं कि जबतक कोई भी देश अपनी लाभशक्ति अथवा उपार्ज्जनशक्ति कला-कौशलों और उनके व्यापार द्वारा नहीं बढ़ाता, तबतक उसका उदय कदापि नहीं हो सकता। इसलिये ऐ पददलित देशो! अपने कला-कौशलोंको कदापि न भूलो, अन्यथा अपनी सत्तातक खो बैठोगे, क्योंकि कला-कौशलोंके बिना व्यापार नहीं और व्यापारके अभावमें किसी भी देशका जीवन दरिद्र हो जाता है।

संरक्षणशक्ति

पाश्चात्य जीवनमें लाभशक्ति अथवा उपार्ज्जनशक्तिकी बानगी दिखलाकर अब उनकी संरक्षणशक्तिका नमूना दिखलाया जाता है, जिसे प्यारे वाचकवृन्द ! आप उनके जीवनके प्रायः सभी विभागोंमें उपलब्ध करेंगे। संरक्षणशक्तिका पहला नमूना उनके वेशमें ही दिखलायी दे रहा है, जिस वेशमें रहनेसे काम पड़नेपर यथार्थ संरक्षा दे कर सारी आफतें दूर भगा सकते हैं।

टोप—पाश्चात्योंके वेशमें पहले पहल यदि निगाह डाली जाय तो वह शिरोवेष्टन अर्थात् टोपपर पड़ती है जिसे देखकर ही विचारशील कह सकता है कि चारों ओर जो अंश टोपके बाहर निकला हुआ है वह धूप व कुहेसा तथा बौछारोंसे मस्तक, नेत्र और मुखकी रक्षा बिना किये नहीं रह सकता, क्योंकि उसकी बनावट इसी प्रकारकी और साहबान सा निकला हुआ वह अंश इस कार्य्यमें पक्का योग देता है।

कोट—दूसरी चीज संरक्षणमें सहायता देनेवाली पाश्चात्यों-का कोट है जो शरीरमें चुभा रहकर किसी कामके करनेमें जरा भी रुकावट नहीं डालता, न किसी अङ्गमें लगता बझता है जिसे सुलझानेमें विलम्ब हो। यह कोट कई ढंगका बना हुआ होता है; अर्थात् मृगयाके लिये अलग, खेलके लिये अलग, शीतप्रधान व ग्रीष्मप्रधान देशोंमें शत्रुसे दूर व नजदीकसे मुकाबला करनेके

सुलझानेमें विलम्ब हो। यह कोट कई ढङ्गका बना हुआ होता है; अर्थात् मृगयाके लिये अलग, खेलके लिये अलग, शीतप्रधान व ग्रीष्मप्रधान देशोंमें शत्रुसे दूर व नजदीकसे मुकाबला करनेके लिये अलग। इनकी विभिन्नताका क्या कहना है! इन कोटोंमें छोटी बड़ी सभी तरहकी चीजोंके रखनेके लिये जेबें लगी रहती हैं, जिनमें पहननेवाला व्यक्ति मतलब हल करनेके सामान रख सके और समयपर उनसे लाभ उठावे।

पैंट और उसकी विभिन्नता—काम पड़नेपर जिसमें दौड़ने, चढ़ने, उतरनेमें जरासी भी किसी प्रकारकी अड़चन आ उपस्थित न हो, इसलिये संरक्षणशक्तिका नमूना फुल पैण्ट या हाफ पैण्टमें देख लें कि उसके द्वारा उक्त कार्य्य किस शीघ्रतासे सम्पन्न होते हैं। पहलेवाले पूरे पैण्टमें यह एक दोष था कि उसे पहनकर बैठना असंभव था, क्योंकि वह उतना ही ढीला बनता था जितनेमें जांघ आसानीसे उसके भीतर पैठ सके; परन्तु इन दिनों पाश्चात्योंने उस त्रुटिको भी दूर कर दिया, अर्थात् उसे इतना ढीला किया जिसमें पहननेवाला आरामके साथ बैठ सके और दूसरा ढंग यह निकाला कि ठेहुनोंके नीचेतक उसे कसा रक्खा और जोड़से ढीला, ताकि बैठनेकी अड़चन एकदम दूर ही हो जाय। ये पैण्ट या तो कमर पेटी द्वारा कमरके साथ इतने कसे रहते हैं कि वे किसी प्रकार गिर नहीं सकते, या गेलिस (एक प्रकारके समीचीन बन्धन) द्वारा जो दोनों कन्धोंपर चढ़ा रहता है, तने रहते हैं। इन पैण्टोंमें हाथ गरमानेके लिये कुछ

कैश या नोट रखनेके लिये जेबें भी लगी रहती हैं और उनसे बहुतसे काम निकलते हैं; क्योंकि उनमें कुछ न कुछ रक्खा ही जाता है। फुल पैण्ट और हाफ पैण्टमें फरक इतना ही है कि पहला एड़ीतक और दूसरा ठेहुनोंतक आच्छादित किये रहता है। हाफ पैण्ट पहिननेके समय ठेहुनोंतक मोजे रहते हैं और फुल पैण्ट धारण करनेमें हाफ मोजे।

मोजे—पैरोंकी संरक्षाके लिये मोजे तैयार किये गये और इनमें पाश्चात्योंने कई प्रकारकी विभिन्नता भी की। तदनुसार शीतसे पैरोंकी संरक्षाके लिये ये मोजे सूती, ऊनी, तसरी सभी ढंगोंके बनने लगे और पूरे और आधेका भेद भी शनैः शनैः दिख-लायी देने लगा। यदि इन मोजोंको चढ़ाकर ऊपरसे बूट पहनकर कोई भी व्यक्ति चले तो जो काम खाली पैर कोई भी शीतकालमें घंटेमें करेगा उसे वह आधे घंटेमें पूरा उतार देगा। मोजोंके अभावमें पैरोंकी जो हालत शीतमें होती है वह किसी भी व्यक्तिसे छिपी नहीं है।

जूते और उनकी विभिन्नता—यदि चलनेकी सड़कें सम हैं, ठुकरीली नहीं हैं, तब तो आसानीके साथ नंगे पैरों भी चलना संभव है, परन्तु जिस समय ये विषम और ठुकरीली रहती हैं उस समय जो हालत पैरोंकी ठेस लगनेपर होती है वह वर्णना-तीत है; कभी तो अंगुलियां कट जाती हैं और नाखूनतक निकल आते हैं। इन कष्टोंसे पैरोंकी रक्षा करनेके लिये पाश्चात्य सभ्यताने भिन्न भिन्न प्रकारके जूते तैयार किये हैं जिनके द्वारा

घरमें घूमना, फर्शपर चलना, घुड़सवारी, लड़ाईपर धावा और शिकार खेलना—सभी काम सम्पन्न हो जाते हैं। कुशाच्छन्न भूमिपर अथवा कण्टकाकीर्ण मार्गमें चलनेके लिये जूते बड़े कामकी चीजें हैं, खासकर बर्फपर चलनेके जूते बहुत ही उपकारक हैं। इनकी बनावटमें विचित्रता यह है कि ये बिछल नहीं सकते, यद्यपि चिकनी बर्फपर चलना पड़ता है।

अभेद्य वस्त्र—निहायत जबर्दस्त दुश्मनोंके वार बचानेके लिये मेलुकोट अर्थात् कवचकी सृष्टि पाश्चात्योंने की है जिसे पहनकर बेखौफ जंगके मैदानमें जा सकते हैं। हाथसे चलानेवाले शस्त्रोंके वार इसे पहने हुए व्यक्तियोंपर चोट नहीं पहुंचा सकते, क्योंकि यह अभेद्य रहता है। इसी प्रकारके अभेद्य और और वस्त्र हैं जिन्हें गलेसे मस्तकतक हाथोंमें पहन सकते हैं। पैरों व टांगों तथा कटि पर्यन्तकी रक्षाके लिये ऐसे ऐसे अभेद्य परिधानीय बन चुके हैं जिनके द्वारा युद्धमें सुरक्षा भलीभांति सम्भव है।

बन्दूकें और उनकी विभिन्नता—मल्लयुद्ध और शस्त्रयुद्धमें लड़ाई करनेवाले दो दलोंके अगणित व्यक्ति कटते व मरते हैं। इसका कारण यह है कि जिस समय दोनों दलोंके वीर आपसमें घुस पड़ते हैं और मार-काट होने लगती है उस समय जोशके मारे अपने बचावका ध्यानतक नहीं रहता। ध्यान भी कैसे रहे क्योंकि मुठभेड़ होनेपर दोनों दलोंका मिश्रीकरण हो गया; फिर बचावका ध्यान कहां? जिसमें वीर अधिकाधिक संख्यामें न छीजें और लड़ाई इस प्रकार जारी रहे कि दोनों दलोंका हौसला

बना रहे, पाश्चात्योंने बन्दूकोंकी सृष्टि कर डाली जिनके प्रयोग द्वारा यदि निशाना ठीक लगा तो योद्धा फौरन वीरगतिको प्राप्त होते हैं; अथवा जिस अंगमें गोली लगी कि वह फौरन बेकार हुआ। युद्धके अलावा मृगया वगैरहमें इससे बड़ा काम निकलता है। इससे जल-जीवका निशाना भी कारगर होता है। इसके द्वारा आकाशके बीचमें उड़नेवाले प्राणी भी मार गिराये जाते हैं। इस अस्त्रमें बहुतसी विभिन्नतायें हैं जो आज दिन तरह तरहकी बन्दूकोंमें पायी जाती हैं; पर सर्वोत्तम विभिन्नता वही है जिसका इन दिनों फौजमें खूब प्रचार है। इसकी एक विभिन्नता मशीनगन भी है जिसमें ढाले हुए शीशेके लम्बे लम्बे छड़ डाले जाते हैं और गोलियां कटकर चला करती हैं। इस विभिन्नताके द्वारा पांच मिनटमें पांच सौ व्यक्ति भूतलशायी किये जा सकते हैं।

तोपें—किसी गढ़ या किलेको तोड़ने या ढानेके लिये एक ऐसा जबर्दस्त यन्त्र पाश्चात्य संसारने तैयार किया है जिसकी प्रशंसा जहांतक की जाय थोड़ी है। इस यन्त्रका नाम तोप है। इसकी विभिन्नतायें गोलोंके कदके अनुसार बहुतसी हैं जिनके द्वारा ढाने या तोड़नेके सभी छोटे बड़े कार्य्य सम्पन्न किये जाते हैं। आत्मरक्षाके विचारसे राजा लोग, जिसमें शत्रु किसी प्रकार उन्हें पकड़कर कैद न करें या मार न डालें, गढ़ या किलेकी रचना मजबूतीके साथ कई प्रकारसे करते हैं और इसी गढ़ या किलेके अन्दर निश्चिन्त होकर निर्भयताके साथ अपनी

सौभाग्यश्रीका विस्तार किया करते हैं। परन्तु वैज्ञानिक जगत् थोड़े ही आविष्कार द्वारा अपनेको सन्तुष्ट न रख सका। उसने ऐसे ऐसे गढ़ों व किलोंके ढानेकी विधि सोच निकाली जिसके फलस्वरूप ये तोपें हैं। इनके द्वारा ७५ से ८० मीलतक २० से २५ तथा ३० मनके गोले फेंके जाते हैं। ये गोले निर्दिष्ट दूरीपर पहुंचनेके पहले फटते हैं और उनके भीतरसे दूसरा गोला निकलकर पहलेकी अपेक्षा दूनी तेजीसे चलता है जो बड़ी तेजीके साथ इष्ट स्थानपर गिरता है। बस, गिरते ही वहांपर एक बड़ा गढ़ा हो जाता है। इसी भांति बड़े बड़े दुर्ग ढा दिये जाते हैं। इन तोपोंमें जो सबसे भारी गोला फेंकती हैं उसका नाम हैविट्ज़र है जिसका प्रयोग जर्मन महासमरमें हुआ था।

तलवारें और इनकी विभिन्नता—जब किसी प्रबल शत्रुका सामना करना होता है, उस समयके साधनोंकी पाश्चात्य संसारमें ज़रा भी कमी नहीं है; तथापि मुठभेड़के समय जो शस्त्र काम देते हैं, उनकी अपेक्षा मशीनगनें और तोपें बिलकुल रद्दी जान पड़ती हैं, क्योंकि मुठभेड़में हाथोंहाथ युद्ध करना होता है। उस समय सिवा बड़ी बड़ी तलवारोंके जो तीन तीन गज़ लम्बी होती हैं और खासकर इसीलिये तैयार की जाती हैं, दूसरे शस्त्र बेकार हो जाते हैं। इनके द्वारा मारकाटमें बड़ी सहायता मिलती है। चार अंगुल चौड़े फलकी तीन गज लम्बी तलवार उसी प्रकार अरिदलको काटती है जैसे किसान खेत काटा करते हैं। इनकी विभिन्नताय तरह तरहकी हैं। जो टेढ़ी बनावटकी है उसके द्वारा

तिरछा काटनेका काम ठीक होता है परन्तु जिसकी बनावट सीधी है उससे भोंकनेका कार्य सम्पन्न किया जाता है। सीधी बनावटवाली किर्च कहलाती है और टेढ़ी बनावटवाली तलवार। यदि चलानेवाला हद दर्जेका उत्साही है तो हाथी, बाघ तथा शेरतकका शिकार इसके द्वारा खेला जाता है और उसमें सफलता प्राप्त होती है। इन्हींकी एक विभिन्नता यह है जो बन्दूकके नलके पास लगी रहती है जिसका व्यवहार भोंकनेके काममें आसानीसे हुआ करता है; उस समय यह भालेका काम मजे में देती है।

हवाई नावें—जिस समय किसी ऐसे प्रबल शत्रुका मुकाबिला करना पड़ता है जिसकी सेना बहुत दूरतक एवं एक बड़ी संख्यामें व्याप्त है उस समयके लिये पाश्चात्य संसारने हवाई नावें तैयार की हैं। इनके द्वारा यह भी आकाश मार्गसे पता लगाया जाता है कि शत्रुकी सेना कहां कहांपर और कितनी कितनी व्यूह बांधकर सुसज्जित है। इतना पता पा जानेपर उनके ज़रिये बड़े बड़े गोले जो नाना भांतिकी विभिन्नताके साथ तैयार किये जाते हैं, आकाश मार्गसे फेंके जाते हैं और ये उनके सैन्यका विनाश कर डालते हैं। सैन्यके विनष्ट होते ही दुश्मनका हौसला मट्टीमें मिल जाता है और वह सन्धिके लिये उत्सुक होने लगता है। ये नावें छोटी बड़ी सभी तरहकी बनायी जाती हैं। जो गोले इनके द्वारा ऊपरसे फेंके जाते हैं वे जहां गिरते हैं वहां चालीस गज वर्गक्षेत्रका एक विशाल गढ़ा बना देते हैं, ऐसी

अवस्थामें मनुष्यकी बात ही क्या है जो बेचारा तुरत इस भांति उड़ जाता है कि उसकी हड्डी पसलीतकका पता नहीं रहता। इस प्रकार इनके द्वारा मजबूतसे मजबूत छतोंका विनाश और बड़े बड़े सैन्यदलोंका अन्त किया जाता है। कभी कभी विशाल गोले गिरकर ज़हरीली गैस फैलाते हैं ताकि सांस लेते ही मनुष्यका जीवन समाप्त हो जाय।

लड़ाऊ जहाज—जलयुद्धके लिये छोटी छोटी नावें या नौका-समूह, अथवा बड़े २ बेड़ोंसे काम न चलता देख पाश्चात्य जगत्‌ने लड़ाऊ जहाजकी सृष्टि की है। ये लड़ाऊ जहाज कोस कोसभर विस्तृत होते हैं। इनके अन्दर एक बड़ा नगरसा बसा होता है एवं युद्धजीवनके सारे सामान सुसज्जित रहते हैं। जगह जगह तोपोंके नाके बने रहते हैं जहांसे ये छोटे बड़े सभी तरहके गोले फेंका करती हैं और प्रतिद्वन्द्वी लड़ाऊ जहाजोंको नाश किया करती हैं। इनकी बनावट चौड़े मुंहवाली मछलीके समान होती है जिसकी वजहसे पानी काटनेमें इन्हें कुछ भी कष्ट नहीं होता। तांबेकी बड़ी बड़ी चद्दरें जलमग्न भागमें जड़ी रहती हैं जिनके कारण जलका लेश भी अन्दर नहीं आने पाता और उसके द्वारा इच्छानुसार युद्धका काम चला करता है। प्रतिद्वन्द्वियोंके फेंके हुए गोले जिसमें ज़रा भी जहाजोंको जरर न पहुंचावें इसलिये रसायनशास्त्रकी सहायतासे भूगर्भके ऐसे ऐसे पदार्थ बाहरी हिस्सेमें लगाये जाते हैं कि वे कुछ कालके लिये स्थायीरूपसे जलयुद्धका कार्य्य सम्पन्न कर पाश्चात्य संसारकी कीर्त्ति-पताका भूमण्डलपर सर्वत्र उड़ाते हैं।

सबमेरीन—उक्त लड़ाऊ जहाजोंको क्षणभरमें जलमग्न करनेके लिये अन्तर्जलचारिणी नौकाओंकी सृष्टि उक्त जगत्‌ने बड़ी योग्यतासे की है जिसके द्वारा टारपीडो उनके पैंदोंमें मारा जाता है और एक विशाल छिद्रके होनेसे भीतर पानी पैठकर उन्हें डुबा देता है। ये नौकायें पानीके अन्दर गोते मारकर चक्कर लगाया करती हैं और पनडुब्बियां कहलाती हैं। तारीफ है उक्त जगत्‌के उद्यम और अध्यवसायकी जिसने ऐसी पनडुब्बियां निकाली हैं और अभेद्य जहाजोंका उनके द्वारा विनाश किया है।

सबमेरीन चेजर—जिसमें उक्त पनडुब्बियां बड़े बड़े लड़ाऊ जहाजोंका दमभरमें विनाश न कर सकें इसलिये पाश्चात्य-संसारने एक ऐसी पनडुब्बी तैयार की है जो उक्त पनडुब्बियोंका पीछा करती है और उन्हें विनष्ट कर डालती है। इसका नाम सबमेरीन-चेज़र है। जिस प्रकार दो मल्ल दाव पेच करते हैं और आपसमें हरएक दावपेचका तोड़ भी किया करते हैं, उसी प्रकार उक्त जगत् एक साधनके विनाश करनेका दूसरा साधन तैयार किया करती है।

तोबड़ा—अर्वाचीन समयमें लोहेके गोले तो बड़े बड़े गढ़ ढानेके लिये तैयार होते ही थे; पर जिसमें सेनाका शीघ्र नाश हो इसलिये ऐसे विषभरे गोले पाश्चात्य जगत्‌ने बनाये हैं कि जिनके गिरते ही ज़हरीली गैस वायुमण्डलमें इस भांति फैल जाती है जैसे पानीमें तरङ्ग उठनेसे तेल, और सैनिकवर्ग उस वायुका पानकर क्षणभरमें अचेत होकर गिर जाता है। जिसमें

इस विषाक्त गैससे किसी प्रकारकी हानि न पहुंचे इसीलिये पाश्चात्योंने मुखप्रभटक यानी तोबड़ा तैयार किया है जिसके लगानेसे ज़हरीली गैस सैनिकवर्गका कुछ बिगाड़ नहीं सकती।

तमंचे— जिस समय मनुष्य अकेला कहीं जाता है अथवा उसके उन्नतिशील होनेके कारण उससे ईर्ष्या करनेवाले बहुतसे व्यक्ति संसारमें हो जाते हैं, उस समय नीति यही कहती है कि शत्रुओंसे सावधान! तू अकेला है, दूसरेको अपने साथ रख। ऐसी अवस्थामें दूसरा कोई भी गुप्त सहचर मिलना कठिन है। इस अभावकी पूर्त्तिके लिये पाश्चात्य जगत्‌ने ऐसे ऐसे छोटे छोटे तमंचे तैयार किये हैं जिन्हे पाकेटमें लेकर सर्वत्र कोई भी निर्भय घूम सकता है, क्योंकि जो काम बंदूक देती है वही तमंचा भी देता है।

भाले और उनकी विभिन्नता—जब किसीको पांच चार गजके फासलेसे भोंक डालना होता है उस वक्त सिवा ऐसे शस्त्रके जो लंबा और नोकीला हो दूसरा शस्त्र काम नहीं देता। इसी विचारको ध्यानावस्थित कर पाश्चात्य जगत्‌ने तरह तरहके भाले तैयार किये हैं जिनके द्वारा उक्त कार्य्य आसानीसे पूरा किया जाता है। ये भाले छोटे बड़े सभी प्रकारके होते हैं और नजदीक, दूरके सभी तरहके उक्त कार्य्य साधन कर डालते हैं।

आर्मर्ड मोटरकार—जिस समय प्रजा अथवा शत्रु अपनी निःशस्त्र होनेकी हालतमें ईंट पत्थर फेंककर उपद्रव करना चाहता है अथवा रोष प्रकाश करता है ऐसी हालतमें सिवा

खबरदार गाड़ियोंके और किसी प्रकार देश रक्षाके लिये सैनिक लोग उपद्रव स्थानपर नहीं भेजे जा सकते। इसीलिये यह अनूठा साधन उक्त जगत्‌ने तैयार किया है। इसपर बैठकर सशस्त्र सैनिक उपद्रवी दलमें विभीषिका उत्पन्न करनेके अर्थ उपद्रुत स्थानपर गश्त लगाकर उपद्रव शान्त करनेमें समर्थ होते हैं। यदि विभीषिका उत्पन्न करनेसे काम चलता नहीं दिखायी देता है तो गोलियोंके द्वारा उपद्रवी दल जख्मी किया जाता है। गोलियां चलानेके लिये इन मोटरोंमें छेद बने रहते हैं।

जबर्दस्त बिजली—घोर अन्धकारके समय जहाजका चलाना एक बड़ा कठिन कार्य्यसा हो जाता है। जिस वक्त यह शंका पल पलमें बनी रहती है कि कोई ऐसी दुर्घटना न हो जाय जिसके कारण जहाज टकरा जाय और फट जाय अथवा सूखे स्थानपर चढ़ जाय और पुनः यथेष्ट पानीमें जाना असंभव हो जाय या कभी यह सन्देह बना रहता है कि कोई नाव ही टकराकर न डूब जाय; ऐसी अवस्थामें तीव्र प्रकाशकी सख्त जरूरत आ पड़ती है। इस अभावका नाश करनेके लिये कड़ी बिजलीकी आवश्यकता हुई और तदनुसार उक्त संसारने इसे साथ विभिन्नताके तैयार कर डाला। धन्य विज्ञान!

घड़ी—मनुष्यजातिके लिये समयके सदुपयोगसे बढ़कर और दूसरा महत्त्वपूर्ण कोई कार्य्य नहीं। मानवजातिकी वृद्धि एवं उन्नति समयके सदुपयोगके द्वारा ही हुआ करती है, यह सिद्धान्त निर्विवाद है। जिसने समयका मूल्य समझा वह पारस हो

गया अन्यथा जिस भांति पशु अपना समय नष्ट किया करते हैं उसी तरह वह भी इसको खो देता है। आजदिन वैज्ञानिक संसारमें जितने आविष्कार हो चुके व हो रहे हैं तथा आगे होंगे वे समयके सदुपयोगके फलस्वरूप हैं अतः यह कहना अत्युक्तिका परिचायक कदापि न होगा कि समयकी महत्ता वर्णनातीत है। जिस समयका महत्व इतना है, जिसका उपयोग मनुष्यको दैवीशक्ति-सम्पन्न सिद्ध करता है, जिसका मूल्य निश्चित करना मानवीय बुद्धिके बाहरकी बात है उस समयका अन्दाजा करना अथवा किस काममें कितना समय लगा इसका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना जिसमें भलीभांति सम्पन्न हो इसलिये घड़ीकी सृष्टि पाश्चात्य संसारने की है। इसके द्वारा समयका पूर्ण ज्ञान बना रहता है और मानवजातिके विकासके जितने कार्य हैं सब कमसे कम समयमें जहांतक हो सकते हैं उसकी भी जानकारी इससे हो जाती है। सच तो यह है कि समयका बतानेवाला यन्त्र मनुष्योंकी संरक्षण-शक्तिकी वृद्धिके लिये एक अत्युत्तम, अमूल्य और बड़ी महत्ताकी वस्तु है। नेपोलियन बोनापार्ट फ्रांस देशके इतिहासमें एक अलौकिक शक्ति, प्रतिभा तथा उत्साह-सम्पन्न वीर कहा जाता है। यह वीर अपनी धुनका पक्का, अपने उद्योगका सच्चा उत्साही और असंभवको संभव कर दिखानेवाला अपने देशका एक अमूल्य रत्न था। जिस समय इसके डाही शत्रु इसके संवर्धमान प्रतापको न सह सके, वे छल-कपटका अवलम्बन कर इसको

बन्दी बनानेपर तुल गये। उसके प्रधान सेनापतिको मिलाकर लड़ाईके मैदानमें पहुंचनेमें पांच मिनटकी देर करवा दी। अकेला नेपोलियन अपने सेनानायककी बाट देखता रहा और लाचार उसके न आनेपर बन्दी बना। तात्पर्य यह है कि जिसकी महिमा इतनी है उसकी सूचना देनेवाले यन्त्रका संरक्षण शक्तिके खयालसे जितना आदर किया जाय थोड़ा हैं।

गुप्ती—पशुओंसे रक्षा करनेके लिये तरह तरहकी छड़ियोंका प्रचार मानव समाजमें हुआ था। परन्तु कृपाण अथवा खड्ग जिसे तलवार भी कहते हैं गुप्त रीतिसे साथ रखनेके लिये गुप्तियोंकी सृष्टि उक्त संसारने की। ऊपरी भाग मूठ कहाता है जिसमें सीधी तलवार जड़ी रहती है और निचला भाग म्यानका काम करता है जिसके भीतर गुप्तरूपसे वह तलवार रहा करती है। दोनों भागोंका योग होनेसे सिवाय छड़ीके और दूसरा आकार उसका नहीं बनता। बस यही कारण है कि इससे संरक्षणमें बड़ी सहायता मिलती है, खासकर जब अकेले कहीं जाना होता है।

बिजलीके तार—कैदियोंको अपने कब्जेमें रखनेके लिये तथा अपने अधिकृत परन्तु अनावृत प्रदेशोंमें किसीको न आने देनेके लिये पाश्चात्य संसारने बिजलीके तार ईजाद किये हैं जिनसे टकराते ही कोई भी जीव अपनी जानसे हाथ धो बैठता है। ये तार उस समय बड़े ही उपयोगी सिद्ध होते हैं जब रात्रिके

समय शत्रु का बड़े जोर शोरसे हमला होता है। तारका स्पर्श होते ही अरिदल विध्वंस हो धराशायी हो जाता है। यदि इसे संमोहनास्त्र कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। धन्य पाश्चात्योंका निरन्तर उद्योग !

टेलीफोन—जिस समय देशमें विद्रोहके भाव भरे होते हैं, उस वक्त देशके रक्षक एक स्थानपर मौजूद न रहकर भिन्न भिन्न स्थानोंमें देशवासियोंमें शान्तिके भाव उत्पन्न करनेके लिये चक्कर लगाया करते हैं। यद्यपि ये इतस्ततः चक्कर लगाते हैं परन्तु अपने दलके साथ बात बातमें परामर्श करनेकी आकांक्षा बनी रहती है। उस समय टेलीफोन संरक्षामें पहले हाथ बटाता है, क्योंकि इसीके द्वारा प्रतिक्षण देशरक्षकदल आपसमें परामर्श कर देशरक्षाके कार्य्य सम्पन्न करता है।

टेलीग्राफ—यद्यपि टेलीफोन फौरन परस्पर बातचीत करनेका एक अपूर्व साधन है तथापि दूरसे बातचीत करनेके लिये जहांसे यह यन्त्र सम्बद्ध नहीं, संरक्षाके लिये एक ऐसे यन्त्रकी आवश्यकता है जिसकी साङ्केतिक ध्वनिसे अक्षरोंका और उनसे शब्दोंका भली भांति निर्माण हो। इस अभावको हटानेके लिये पाश्चात्य सभ्यताने टेलीग्राफका आविष्कार किया। इस यन्त्रके द्वारा देशरक्षाके सम्बन्धमें सदुपायोंका परामर्श ऐसे ऐसे दूरवर्ती स्थानोंमें पहुंचाया जा सकता है जहांका सम्बन्ध टेलीफोनसे नहीं है।

वायरलेस टेलीग्राफ—जब देशमें राजद्रोहके भाव फैलते हैं

तब जिसमें एक जगहसे दूसरी जगह खबर न भेजी जाय इसलिये राजद्रोहीदल टेलीफोन और टेलीग्राफके सम्बन्ध जारी रखनेवाले तारोंको काट फेंकता है। ऐसी दशामें परस्पर बातचीत न कर सकनेके कारण देशरक्षकोंको आपसकी कार्रवाई समझनेमें बड़ी अड़चन आ उपस्थित होती है। इस अड़चनको हटानेके लिये बेतारकी तारवर्की पाश्चात्योंने निकाली, जिसके द्वारा केवल यन्त्र हाथमें लेकर ही खबर पा जाते हैं। फिर तो देशरक्षाका कार्य्य भलीभांति सम्पन्न हो जाता है। धन्य पाश्चात्य जगत् !

दृढ़ ताले—जैसे जैसे चोर-चाइंइयोंकी संख्या संसारमें बढ़ी वैसे ही वैसे लोगोंने इनसे अपनेको सुरक्षित करनेके लिये उपाय ढूंढ़ निकाले। जिस समय इनकी संख्या समाजमें नहींके बराबर थी उस समय लोग सिर्फ जंजीर और कुण्डा अथवा अर्गलके द्वारा अपने मालकी सुरक्षा कर लेते थे; पर ज्यों ज्यों इनकी भयानकता बढ़ती गयी त्यों त्यों लोगोंने उत्तमोत्तम प्रबल ताले बनाना प्रारम्भ किया। इस समय चूंकि ईमानदारोंकी संख्या नहींके बराबर है इसलिये पाश्चात्य जगत्के दृढ़ ताले शायद ही ऐसा कोई होगा जिसकी रक्षा न करते हों।

लोहेकी आलमारियां—डाकू जिस समय डाकेजनी करनेपर उतारू हो जाते हैं उस समय धनकी रक्षा करना एक बड़ा ही विकट प्रश्न उपस्थित होता है, क्योंकि तालोंकी दृढ़ता उस समय कुछ काम नहीं देती, इसलिये कि वे उन्हें तोड़नेके साध-

नोंसे चूर चूर कर डालते हैं। उनके आक्रमणसे गृहस्थाश्रमके एकमात्र स्तम्भ धनकी रक्षा करनेके अर्थ आज पाश्चात्योंने ऐसी ऐसी मजबूत लोहेकी आलमारियां तैयार की हैं जिनमें बन्द किया धन न केवल डाकुओंसे ही सुरक्षित रहता है बल्कि कड़ी आगसे भी वह नष्ट नहीं किया जा सकता।

छुरे—अकेले कहीं जानेमें-खासकर उस वक्त जब कुछ जोखिम की चीजें पास रहती हैं छुरेके मुकाबले ऐसी कोई चीज नहीं जो बराबर सहायताके रूपमें उत्साह प्रदान करती रहे। इस उत्साह-प्रदानके द्वारा यात्री निर्भय होकर सर्वत्र विचरता है, सब प्रकारके लोगोंमें अपनी धाक बांधता हुआ जिस कार्यके लिये उसने यात्रा की है उसे सम्पन्न कर लाता है। अकेलेका दूसरा यदि है तो वही छुरा! इसके द्वारा एकाकी यात्रीका भलीभांति संरक्षण जान उक्त जगत्‌ने इसे तैयार कर जगत्‌के सामने प्रस्तुत किया।

पानीकी कलें—पानीकी कलोंके द्वारा जो संरक्षा पाश्चात्य जगत्‌ने की है वह वर्णनातीत है। मनुष्योंकी एक छोटी संख्याके लिये जलका काम किसी भी कूप द्वारा सम्पन्न हो सकता है परन्तु सारे नगरका काम एक समय बगैर जलके लानेका परि-श्रम उठाये कदापि नहीं चलता। आज बड़े बड़े नगरोंमें पानीकी जो कलें दिखलायी पड़ती हैं वह पाश्चात्य जगत्‌के ही अध्यवसायका फल है।

दमकलें—जिस समय अग्निप्रकोप होता है और टोलेका टोला,

महल्लेका महल्ला जलने लगता है उस समय एक ऐसी आपत्ति आ उपस्थित होती है जिसका टालना बड़ा कठिन हो जाता है। इस बलाको दूर करनेके लिये ऐसी ऐसी दमकलें तैयार की गयी हैं जिनके द्वारा बहुत शीघ्र जलाशयोंसे जल खींचकर लोगोंका अग्निकष्ट दूर किया जा सकता है। इसके लिये उक्त जगत् सर्वथा प्रशंसनीय है।

रेलगाड़ियां—उभड़े हुए लोगोंको दबानेके लिये, खासकर उस वक्त जब शासित देश ऐसे ऐसे काम करने लगता है जिन्हें वहांकी सरकार नहीं करने देना चाहती है, रेलगाड़ियों द्वारा सशस्त्र संरक्षक दल किसी भी स्थानपर पहुंचाकर वह अपने शासनकी संरक्षा कर लिया करती है। शासित देशकी सभी कामकी चीजें हो ले जाकर अपने देशको संपन्न बनाना और अपनी संरक्षाका पूर्ण निधान कर डालना बगैर रेलगाड़ियोंके असम्भव है। इसलिये, इस स्वार्थसाधनके लिये, जो साधन उक्त जगत्ने तैयार किया है तदर्थ उसकी प्रशंसा जितनी की जाय थोड़ी है।

युद्धके जहाज—जो काम रेलगाड़ियोंसे स्थलके ऊपर होता है वही काम जहाज द्वारा जलके ऊपर सम्पन्न किया जाता है। जिस अवसरपर विद्रोही प्रजा स्थलके ऊपर वर्त्तमान रेलगाड़ियोंके मार्गका अवरोध कर डालती है और खुश्कीके रास्तेको चलने लायक नहीं रहने देती, वह अवसर शासनको धक्का पहुंचानेवाला कहा जाता है। उस समय जलके मार्गद्वारा जहाजों-पर लाये गये युद्धके सामान और सशस्त्र संरक्षक विद्रोहियोंके

शान्त करनेमें भलीभांति समर्थ होकर शासनको सबल बनाते हैं और उन्हें दण्ड देकर सुख, शान्तिका राज्य विस्तार करते हैं। यह पाश्चात्य जगत्‌के लिये प्रशंसाकी बात है।

पाश्चात्योंका रहन सहन।

पाश्चात्योंका रहन-सहन आदर्श मानकर जो आज पूर्वीय देश अपना विडम्बन जीवन व्यतीत कर रहे हैं उसमें गुणग्राहकताका एक भी उदाहरण दृष्टिगोचर नहीं होता। क्या बगैर अपने जीवनमें गुणग्राहिकताके दृष्टान्त दिखाये उक्त देशोंने नकल करनेहीमें अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझ ली है,अथवा इसीमें वे स्वर्गसुख भोगनेकी इच्छाको फलीभूत समझेंगे?

पाश्चात्योंका सारा परिवार सोद्योग रहा करता है और सभी कार्य्योंमें—ख्वाह वे घरके हों अथवा बाहरके—हाथ बटाना उसके लिये एक महज मामूली बात है। ये लोग किसी भी जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले कार्यको छोटा समझकर छोड़ नहीं देते बल्कि छोटेसे छोटे कामको भी मन लगाकर करते हैं, तभी तो आज जहां देखिये वहां इनकी कीर्त्तिचन्द्रिका फैली हुई है और ये प्रशंसाभाजन बन रहे हैं।

जिस किसी परिवारकी ओर दृष्टि डालिये उसके सभी व्यक्ति अपना अपना काम बांटकर गृहकार्य सम्पन्न करते हैं। इस बातका उदाहरण आप वाचकवृन्द! सफ़ाईका दिन* (Cleaning day) समझें। यह दिन हर पन्द्रहवें दिन आया करता है और उस दिन प्राचीनता नवीनतामें बदल जाती है, अर्थात् पन्द्रह

दिनोंतक घरकी चीजोंमें व्यवहार करते करते जो पुरानापन आ गया था उनमें सफाईको स्थान देकर नयापन लाया जाता है। फिर तो जिसे देखिये वही गृहकार्यमें व्यस्त दिखायी देता है; क्योंकि गृहकार्य आजदिन सबके हिस्से पड़ा है। कोई जूते साफ कर उनपर रोगन लगाता हुआ ब्रशकी मारसे उन्हें पौलिश करता है। कोई कपड़ेकी भट्ठी चढ़ा रहा है तो कोई बर्तन और रकाबियां, प्याले और ग्लास साफ कर रहता है। किसीने घरकी छतोंमें, दीवारोंमें, कोनोंमें लगे हुए मकरीके जालोंको साफ किया है तो कोई नीचे नीचे झाड़ू देकर सारे मकानको स्वच्छ कर चुका है। किसीने हजामत बनानी शुरू की है तो कोई शिकारके साधन ठीक ढङ्गपर मरम्मत कर रहा है। कोई कपड़ोंको धोकर साफ कर चुका है तो कोई उनपर कलप इस्त्री कर रहा है।

इस भांति पन्द्रह दिनोंके अन्दर जितना मैल, जितनी गन्दगी, जितना कूड़ाकरकट एकत्रित हुआ था वह सब दूर हुआ और स्वच्छताका पूर्ण रीतिसे समावेश हुआ, मानों अकार्य्य कार्यमें, घृणा मनोहारितामें एवं नरक स्वर्गमें परिवर्तित हुआ। जो वस्तुएं पन्द्रह दिनोके जमे हुए मैलसे मैली होकर अरुचिकर प्रतीत होती थीं आज वे ही रुचिकर मालूम पड़ती हैं। जिस प्रकार वसन्तऋतुके आविर्भावके पूर्व ही वनस्थलीकी अपूर्व शोभा हो जाती है मानों उसे किसीने दिव्य हाथोंसे संवारा हो, उसी प्रकार आज गृहकी सफाईके कारण अद्भुत शोभा

हो रही है। सफाईके अनन्तर सब चीजें यथास्थान रक्खी गयीं। सुधासे धवलित गृहमें साफ किये हुए लैम्पोंकी रोशनीकी जगर मगर देखते ही बन पड़ती है। इस रहन-सहनमें कायदोंकी पाबन्दी इतनी रहती है कि नियम-विरुद्ध चलना पाश्चात्योंमें एक प्रकारका पाप समझा जाता है। जो स्थान जिस बातके लिये मुकर्रर है वहां ही वह बात की जाती है, अन्यत्र नहीं। जिस जगह जो चीज़ रक्खी जाती है वहांपर वह चीज़ यदि अन्धेरेमें भी ढूंढ़ी जाय तो मिल सकती है। उसके तलाशनेमें निरर्थक इधर उधर भटकना नहीं पड़ता।

धूम्रपान

इनके रहन-सहनमें धूम्रपानने मुख्य स्थान पाया है; अथवा यों कहिये कि इनकी सभ्यताका मुख्य चिह्न धूम्रपान है। तभी तो आज सिगरेट और सिगार पीनेकी प्रथासी चल गयी है। इन्हींका रूपान्तर बीड़ियोंका पीना है। बीड़ियोंने भारतवर्षमें इतना व्यापी प्रचार प्राप्त किया है और ख़ासकर छोटे २ बालकोंके समाजमें जिसकी वजहसे उनका स्वास्थ्य नष्टप्राय हो रहा है। यदि पाश्चात्योंके सभ्यतास्वरूप इस धूम्रपानका इतना प्रचार न होता तो उनका देश और भी बली, सोद्योग और गम्भीर बातका मनन करनेवाला होता।

मद्यपान

पाश्चात्योंके रहन-सहनमें मद्यपानकी अधिकता पायी जाती है। यही कारण है कि ये तरह तरहके मद्य तैयार करके उनकी

विक्रीसे एक अपूर्व लाभ कर लेते हैं। यद्यपि मद्यपीकी स्मृति, उसकी विचारशक्ति एकदम नष्ट हो जाती है तथापि पाश्चात्य सभ्यतामें इसकी प्रधानता होनेके कारण इसका बहिष्कार उक्त जगत् नहीं कर सकता। जहां कहीं दस पाश्चात्य सज्जन एकत्रित हुए कि मद्यपानकी बारी आयी और फिर तो अपनी सभ्यताके अनुसार वे बोतल लेकर एक दूसरेका स्वास्थ्यपान करने लगते हैं। केवल पुरुष ही नहीं बल्कि स्त्रियां भी इस कार्यमें भाग लेती हैं। परन्तु आजकल मादक-निषेध सभाओंके प्रचारके कारण मद्यपानका व्यवहार कम होने लगा है। ईश्वर इन्हें सुबुद्धि दे! इनकी धर्मपुस्तक बाइबिल (इंजील) में मद्यपानकी स्पष्ट रूपसे मनाही है तथापि ये विलासिताके कारण अपने धर्मकी ज़रा भी परवा नहीं करते। नाना प्रकारके प्राणान्तक एवं असाध्य रोग मद्यपान द्वारा उक्त जगत्में उत्पन्न हुए हैं और इतने हानिकर प्रतीत हुए हैं कि उन्हें दूर भगाना इन दिनों उनके लिये एक कठिन समस्या हो गयी है।

विलासिता

पाश्चात्य लोगोंमें विलासिताकी मात्रा बहुत चढ़ी बढ़ी है। विलास करनेके लिये ऐसे ऐसे उत्तेजक साधन इन लोगोंने तैयार किये हैं और दिनोंदिन अधिकाधिक संख्यामें बनाये चले जाते हैं कि देखनेवाला दंग रह जाता है। कड़ी कड़ी मदिराओंकी सृष्टि इनने विलासिताके ही लिये की है, तरह तरहके सेंट इन्होंने विलासिताके ही लिये बनाये हैं। सजानेके सारे उपकरण,

परिधानके निमित्त नाना प्रकारके वस्त्र, रंग विरंगके अमूल्य रत्नों से जटित अलङ्कार इनने तैयार किये हैं,मानों संसारको विलासिता सिखा दी है कि देखो ! जिसे विलास करना हो हमारा अनुकरण करे। उत्तमोत्तम बाजे जिनकी सुरीली आवाज़ कानोंमें पहुंचकर हृदयमें विलासिताकी ओर तृष्णासे भरी चाह उत्पन्न करती है, मुर्दे मनको उठाकर जिन्दा बना देते हैं। यह लिखनेकी आवश्यकता नहीं कि धूम्रपान और मद्यपान विलासितामें परले दर्जेके उत्तेजक हैं। यह विलासिताहीका प्रताप है कि स्त्री, पुरुष साथ मिलकर एक दूसरेके हाथ पकड़ मद्यके नशेमें चूर सारीरात नाचा करते हैं और परस्पर रज़ामंदीके साथ इन्द्रियसुखको व्यभिचार न मानकर अव्वल दरजेकी सभ्यताके अधिकारी बननेका गर्व रखते हैं

प्रेमके भाव

पाश्चात्य रहन-सहनमें प्रेमके भाव समधिक रूपमें दिखायी पड़ते हैं। इनका देशप्रेम,जातिप्रेम,समाजप्रेम और उद्योगप्रेम प्रशंसनीय है,क्योंकि यह सदा जागरित रहता है। ज़रासा भी अपमान हुआ कि इनमें खलबली मच गयी और ये बगैर उसका बदला लिये नहीं माननेके।

ये अपने देशको सर्वदा उन्नत अवस्थामें देखना चाहते हैं इसलिये ये अपने देशकी बनी हुई वस्तुकाही आदर करते हैं। तभी इनका व्यापार संसारमें व्याप्त है;अन्यथा व्यापारके जरिये अन्यान्य देशोंका धन ये अपने देशमें ले जानेमें कदापि समर्थ न होते।

जिसमें अपनी जाति संसार भरमें फैले, इसलिये ये अपने

धर्मके प्रचार करनेमें ज़रा भी कोरकसर नहीं करते। धर्मके प्रचार द्वारा इनकी जाति विश्वव्यापी हो रही है; क्योंकि जो व्यक्ति इनके धर्मका अंगीकार करता है वह इनकी सभ्यता भी गले लगाता और तदनुसार इनकी जातिकी स्त्रियोंसे विवाहतक करके इनके रक्त, मांसमें सम्मिलित हो इन्हींका रूप धारण करता है। इस प्रकार पाश्चात्योंकी आत्मोन्नति दिनोंदिन हो रही है और ये अपनी आशालताको सर्वदा प्रफुल्लित देखते हैं। वे उसे प्रफुल्लित देखकर ही चुप नहीं बैठते बल्कि अपने निरन्तर उद्योगके द्वारा उसे पुष्पवती अनन्तर फलवती बनाते हैं।

समाज-प्रेमका नमूना यदि वाचकवृन्द! आपको देखना है, तो चलिये क्लबघरकी ओर चलें और देखें कि ये अपने समाजपर कितना प्रेम रखते हैं। क्लबघरमें इनकी सभ्यताके सभी उपकरण एकत्रित हैं और तदनुसार इनके विनोदके प्रायः सभी साधन वहां वर्तमान हैं जिनके द्वारा ये अपनेको प्रसन्न करनेमें कृतकार्य होते हैं। वहां ये सभी प्रकारके खेल जिनमें अंटाका खेल निशाना लगानेके ख्यालसे मुख्य है, खेला करते हैं। इन खेलोंमें स्त्री, पुरुष सभी भाग लेते हैं। ज्योंही दिनके कार्यों से इन्हें फुरसत मिली, अथवा अपनी अपनी दिनचर्याके अनुसार जब सूर्यास्तका समय करीब हुआ, बस, अपनी अच्छी पोशाकें पहिन, ऊपरी सफाईसे अपना मुखमण्डल विकसित कर, सुगन्ध लगा, बालोंको संवार, ये अपना समाज-प्रेम दिखानेके लिये क्लब-

मूठके समान मुड़ी रहती है और गेंद काठके समान कड़ा होता है। यह खेल भी नियमसे खाली नहीं। इसके द्वारा भी अच्छा व्यायाम होता है।

पोलोका खेल घोड़ेपर चढ़कर मैदानोंमें खेला जाता है। यह भी गेंद और डण्डेसे उसी प्रकार खेला जाता है जैसे हाकी। इसमें गेंदके पीछे स्वयं न दौड़कर घोड़ेको दौड़ाते हैं और गेंदको मुगरीसे मारते हैं। इसके द्वारा एक जबर्दस्त अङ्गचालन होता है और भयभीत हृदयमें निर्भीकताका इतना संचार होता है कि खेलाड़ीमें आपसे आप जमामर्दी और बहादुरी आ जाती है।

टेनिसका खेल भी व्यायामका एक अच्छा साधन कहा जा सकता है। इस खेलमें किसी भी प्रकारका खतरा नहीं; न अंगोंके टूटनेहीका डर है। इसके अतिरिक्त और और खेल, यदि खेलाड़ी चूक जाय तो, हो सकता है खेलाड़ीके किसी अंगको भंग कर दें, पर इसमें सिवाय अंगचालनके और मनोविनोदके किसी तरहकी चोटतकका भय नहीं; बस, यही कारण है कि इसे लोग 'औरताना खेल' कहा करते हैं।

इन व्यायामोंके द्वारा अंगचालन और वर्जिश तो होती ही है, साथही साथ नियमकी पाबन्दी और जीवनके सुधारनेका ऐसा बढ़िया अभ्यास हो जाता है कि उस खेलाड़ीका जीवन नियुद्ध शिक्षाके उपयुक्त हो जाता है जो देशकी सहायताके लिये नितान्त आवश्यक है। देशकी सहायता, देशका उद्धार, देशकी सेवा तथा देशकी उन्नति करना प्रत्येक देशवासीका फ़र्ज़ है।

देशकी सहायता द्वारा कला-कौशलोंका उपजीवन, देशके उद्धारसे मजदूरी पेशेवालोंके प्रति बन्धु-बुद्धि, देशकी सेवासे अशक्त देशवासियोंके प्रति सहानुभूति-प्रदर्शन और देशकी उन्नतिसे देशान्तरसे व्यापार द्वारा धनाउर्जन करना समझा जाता है। यदि शरीर ही सबल नहीं है, यदि वह इतना कमजोर है कि १०, १५ मिनटके परिश्रमसे कायरकी भांति कांप उठता है तो ऐसा शरीर पृथ्वीका बोझ है। उस देहधारीका जीवन भी बोझ है, क्योंकि उसके शरीरका होना न होना दोनों बराबर है। धन्य पाश्चात्य जगत् जिसने अपनेको सब प्रकारसे उपयुक्त बनाया है !

जरूरत रफा करना।

पाश्चात्य सभ्यता जरूरत रफा करनेका नमूना कही जाय तो किसी प्रकार अत्युक्ति न होगी। यों तो प्रकृतिदेवी ही जरूरत रफा करनेकी जैसी शिक्षा देती है शायद ही दूसरा कोई इस सृष्टिमें देता हो; उदाहरणके लिये छ ऋतुओंको ही लीजिये।

पहली और सर्वोत्तम ऋतु वसन्त कही जाती है। इसका कारण यह है कि इस ऋतुके आगमनकालमें ही सारी सृष्टिकी एक अपूर्व शोभा दीख पड़ती है; क्यों न हो, तभी तो सृष्टिके चक्रको चलानेके लिये इन छ ऋतुओंकी आवश्यकता होती है, और पहले पहल ऋतुराजकी अवाई हो जाया करती है।

जैसे कोई किसी उन्नत पदाधिकारी व्यक्तिके आनेके समय उसके आनेके उपलक्ष्यमें उस स्थानकी अपूर्व सजावट करता है जहां आगन्तुक व्यक्ति अपना पदार्पण करेगा, उसी प्रकार ऋतु-

राज वसन्तके आनेके उपलक्ष्यमें प्रकृतिदेवीने सारी सृष्टिकी कैसी मनोरंजक व शान्तिदायिनी सजावट की है जिसका सूक्ष्म व सारगर्भित वर्णन बिना किये उक्त विषयपर भलीभांति प्रकाश नहीं डाला जा सकता।

अहा हा! जरा प्रकृतिदेवीकी बुद्धिमत्ता तो वाचकवृन्द, देखिये! जिस प्रकार किसी भी जगहका कूड़ाकरकट दूर करनेके लिये मार्जनीसे परिमार्जित करना पड़ता है, एकत्रित किये गये करकटको दूर फेंकना पड़ता है, धीमा धीमा छिड़काव देना पड़ता है और तब उस स्थानको सुसज्जित करना पड़ता है, उसी प्रकार शिशिरके अन्तमें बड़े झकोरेके साथ जो पश्चिम वायु चली उसने जंगलके सारे करकटको दूर कर मानों झाड़ू देनेका काम किया। वृक्षोंके, लताओंके जीर्ण पत्ते सूख सूखकर गिरे और न मालूम कहां गये जिनका पतातक नहीं। फिर तो वासन्ती मलयगिरिकी वायु बही और सूक्ष्म मेघोंके द्वारा जंगलमें पानी छींटा; फिर क्या? नये नये पत्तोंकी कलियां मुकुलित हुई और बादमें नये नये पत्ते! इस समय हरियालीकी अनोखी छटा देखते ही बनती है! ऐसी गम्भीर तरावट शायद ही और किसी समय देख पड़ती हो! सूत, मागध, वन्दीगण तथा वैतालिकवृन्द जिस प्रकार मंगलस्तुति पाठ कर किसी भी प्रतिष्ठित व्यक्तिकी विरुदावली गान करते हैं, आज ठीक उसी ढंगपर सभी चिड़ियां वसन्तागमके उपलक्ष्यमें चहक रही हैं। एक ओर पुंस्कोकिल अपनी कूकसे प्रणय-कलह-कुपित मानिनीको

मान दूर कर प्रियतमसे सप्रेम, समश्रय मिलनका आदेश दे रहा है ! पपीहा मधुसे मस्त होकर जो 'पी कहां'की बोली बोलता है उससे संयोगी और वियोगीको एक समान उत्कण्ठित होना पड़ता है। मोरका मस्तीमें नाचना क्या नर्त्तक नर्त्तकियोंके प्रणयनृत्यसे किसी प्रकार कम है? इसी भांति ऋतुराजकी अगवानीमें सारी सृष्टि प्रकृतिदेवीके द्वारा अपनी अनोखी समां गांठकर आज गुलाब, बेला, मोतिया आदि पुष्पोंके प्रणयोपहार देकर उनका जो स्वागत कर रही है, क्या अपने उपकारीके प्रति यह कृतज्ञता-प्रकाशन नहीं है? है क्यों नहीं।

न केवल पुष्पोंके ही वृक्ष और लतिकायें खिलीं, बल्कि फलोंके वृक्षने भी अपने मुकुलित फलोंके द्वारा हार्दिक प्रेमकी सूचना दी। रसालने इनमें पहला स्थान पाया, अनन्तर जम्बू आदि वृक्ष अपने फलोंके उपहार देनेसे न चूके। यह सब किसलिये? इसीलिये कि ऋतुपरिवर्त्तनका चक्र चलता रहे। एककी जरूरत दूसरेके जरिये रफा हो।

यदि वसन्तका आविर्भाव न होता तो ग्रीष्म ऋतु नहीं आती क्योंकि वासन्ती वायु अपने शोषक गुणके द्वारा ठंढकको दूर भगा, स्वयं सूर्यकी किरणोंसे समुत्तप्त हो ग्रीष्म ऋतुको उत्पन्न करती है; फिर तो सूर्य अपनी किरणोंसे जलाशयों व नदियोंके जलोंको सोख लेनेमें जरा भी कोताही नहीं करते। तात्पर्य यह है कि सूर्य्यकी गर्मीसे जलाशयोंका जल भाफ बनकर अनन्त आकाशके गर्भमें विलीन हो जाता है। वही भाफ मेघमण्डलोंके

निर्माण करनेमें कृतकार्य होती है और वर्षाका आगम श्याम व स्निग्ध घनोंके द्वारा सूचित हो जाता है। जिस प्रकार वसन्तके आगमनसे ग्रीष्म और ग्रीष्मके आगमनसे वर्षाका आगमन होता है, उसी प्रकार वर्षा ऋतु शरदृऋतुको उत्पन्न करती है। आर्द्रा नक्षत्रसे लेकर हस्त नक्षत्र पर्य्यन्त जो गम्भीर वृष्टि हुई उसने ग्रीष्मके तापको दूर किया। जिन वनोंमें गर्मीके मारे आग लगी हुई थी वे वन शीतल जलके धारा सम्पातसे हरेभरे दिखलायी देने लगे; जो मण्डूक गर्मीके तापसे सन्तप्त हो पीले पड़ गये थे और पृथ्वीमें बिलोंके भीतर ही शरण लेते थे वे गड्ढोंके जलको पीकर पेट फुला बैठे और इस भांति 'टर्र टर्र'की पुकार मचाने लगे मानों वटुसमूह वेदाभ्यास करते हों। जो सर्प गर्मीसे व्याकुल हो दिनभर बिलोंमें शयन कर केवल रात्रिमें अपनी जीवन-यात्रा सम्पन्न करनेके लिये निकलते थे वे अब फुर्तीसे दिन-रात एकसां घूमने लगे।

जब गम्भीर वर्षाके कारण नद, नदियां लहराने लगीं, जब जलाशयोंमें पानी लबालब भर गया, जब पूर्ण रीतिसे पृथ्वी तरबतर हो गयी तो इस बढ़ती हुई शीतलताने जाड़ेके ढंग पैदा किये। जहांतक ग्रीष्म कालमें सूर्यकी प्रखर किरणें वसुन्धरामें पैठी थीं वहांतक जब जल पहुंचा तो सारी गर्मी ऊपर निकल पड़ी जैसे आगसे तपा हुआ लाल तवा पूरा पानी पड़नेपर अपनी गर्मीको ऊपरकी ओर फेंकता है। बस कुछ कालके लिये तो शरद् ऋतुमें इसी गर्मीके कारण ताप जान पड़ा पर शीघ्र ही

शैत्यका आविर्भाव हुआ। फिर तो इसकी बढ़तीने हेमन्तको उत्पन्न किया जब कि भूतलके सारे प्राणी जाड़ेसे थरथराने लगे, और इसने यहांतक अपनी शक्तिका संचार किया कि इससे बचनेके लिये मनुष्योंने गर्म वस्त्रोंको धारण किया और उसी भांति मोखे, झरोखे, किवाड़ बन्द कर घरमें घुसे जैसे निर्बल शत्रु। जो जीव पशु हैं और अपने बदनपर बड़े २ रोएं पाकर इसलिये खुश हैं कि दैवने कुदरती कपड़ेसे शरीरको आवृत किया है, अब जाड़ा क्या करेगा, वे भी जमीनकी सतहोंमें मांदें बनाकर जङ्गली पत्रोंसे उन्हें गुलगुल कर तबतक सोया करते हैं जबतक मौसम बदलकर फिर वसन्त न आवे।

संसारमें किसीकी भी हमेशा एकसां नहीं रही। जब सूर्यदेवकी दिनभरमें कई हालतें दिखलायी देती हैं तो औरोंकी हालतका कहना ही क्या! पहले उत्पत्ति,तब विकास, तब प्रौढ़ता और तब ह्रास, अन्तमें विनाश ही निश्चित है। यही सृष्टिका नियम है, यही रचनाका सिद्धांत है जिसका अनुभव पग पगपर जो चाहे जिस विषयमें कर ले। जब अत्यन्त जाड़ेने अपनी उन्नति की तब पश्चिम वायुने अपने शोषक गुणके द्वारा शैत्यको सोखना शुरू किया; बस, फिर तो शनैः २ शिशिरके अनन्तर वसन्तका आविर्भाव हुआ।

वाचकवृन्द! देखी आपने प्रकृतिदेवीकी चतुरता! किस प्रकार एक ऋतु दूसरीके द्वारा अपनी जरूरत रफा करती है! इस प्रकार सृष्टिचक्र बराबर चला करता है। इसी ढंगसे पाश्चात्य

भी अपनी जरूरतोंको रफा करते हैं। उदाहरणके लिये वायुयानको ही लीजिये। उड़नेकी जगह आकाश है और उड़नेवाले जीव चिड़ियां हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वही उड़ सकेगा जिसकी शक्ल चिड़ियासी होगी। बस यही कारण है कि वायुयानका आकार ठीक चिड़ियासा है क्योंकि डैनोंके समान दोनों ओरके पक्ष हैं और बीचला हिस्सा ठीक चिड़ियाके शरीरके मानिन्द है।

जरूरत दो ढंगोंसे रफा की जाती है। एक ढंग है निर्माणका और दूसरा ढंग है विनाशका। ये दोनों ही ढंगोंको अपनी कार्य-सिद्धिका मूलमन्त्र साबित कर चुके। जहांपर निर्माणकी जरूरत होती है वहांपर बगैर निर्माण किये ये नहीं मानते जिसका उदाहरण आप उपार्जनशक्ति और संरक्षणशक्तिमें पावगे। विनाशका भी उदाहरण आपको इनके जीवनमें सर्वत्र देख पड़ेगा क्योंकि जरूरत रफा करनेके लिये ये किसीका भी विनाश शीघ्र कर सकते हैं।

विनाशके उदाहरणका उल्लेख यदि घटनाओंके द्वारा किया जाय तो सिर्फ इसीपर एक बड़ी पुस्तक लिखी जा सकती है, परन्तु सो न कर एक घटना द्वारा उसे दिखानेका प्रयत्न कर आशा करता हूं कि वाचक वर्ग इसे भलीभांति पाश्चात्योंकी जीवन-यात्रामें पावेंगे।

लेखक एक बार हजारीबागमें रहता था। समीप ही एक बड़े अहातेमें बङ्गला था जिसमें एक पाश्चात्यने अपनी स्थिति की। वह अहाता इतना बड़ा था कि उसमें १५, २० बीघा

जमीन थी और नाना प्रकारके फूल फलके वृक्ष सब तरहकी उंचाईके लगे हुए थे। वहांकी बस्ती इतनी दूर दूरपर थी कि यदि एक दूसरेको अपने अहातेसे पुकारे तो मुश्किलसे वह सुन सकता था। इस कारण जंगली जानवरोंका उपद्रव अक्सर हो जाया करता था। कभी कभी रात्रिमें हुंडार, बाघ आदि भी प्रायः वहांपर निकल आया करते थे। सियारोंका तो कहना ही क्या क्योंकि वे ऐसी जगहोंको अपना बसेरा समझते हैं। इसलिये सन्ध्या होतेही 'सियार वहां पहुंच बड़ा कोलाहल किया करते। यद्यपि उस पाश्चात्यके पास कुत्ते थे पर वे उनपर हमला करनेमें एकदम असमर्थ थे। उस कोलाहलसे उसे बड़ी चिढ़ थी, अतः बन्दूक लेकर कितनोंको उसने गोलीका निशाना बनाया। जो पक्षी मुर्दों के खानेवाले, गरुड़, गिद्ध, कौए आदि थे और उस अहातेके वृक्षोंपर बैठकर उनकी पत्तियोंको बीठके द्वारा मलिन करते थे, उन्हें भी निशाना बनाकर मार डाला। अब तो छोटी छोटी चिड़ियां जो उन वृक्षोंपर सुरीली तानें भरती थीं, रह गयीं और उन वृक्षोंके नीचे उस पाश्चात्यकी बालिका, बाला युवती, कन्याओंके पलङ्ग सोनेके लिये लगने लगे। देखकर ऐसा मालूम होता था कि स्वर्गकी अप्सराएं नन्दनवनमें विहार करनेके लिये लतागहनोंमें अपने साधन एकत्रित कर चुकी हों। शृगालोंके निराकरण और बड़े पक्षियोंके नष्ट होनेसे वहांके आनन्दको दूर करनेवाली सामग्री नष्ट हो गयी और वह अहाता एक सुखकी सामग्री बन गया।

इस प्रकार अपनी जरूरतको रफा करना पाश्चात्य रहन-सहनमें एक मुख्य बात है जिसके द्वारा यह जाति आज दिन कौन सी उन्नति नहीं कर चुकी! स्थलपर इसने तरह तरहकी रेल-गाड़ियां चलायीं, जलमें इसने जहाजोंको चलाया और आकाश-मार्गमें वायुयानोंकी ऐसी भरमार की कि आज दिन इसका मस्तक सभ्यतामें बहुत उन्नत है।

भोजन।

पाश्चात्योंका भोजन प्रायः मांसका ही होता है। ये सब प्रकारके मांस खाते हैं अर्थात् सभी पक्षियों और सभी पशु-ओंके मांस खाते हैं; जलजन्तुओंमें मछली इन्हें विशेष प्रिय है। जिस समय इन्हें भोजनकी कमी होती है ये कुत्ते, बिल्ली, घोड़ों तकको खा जाते हैं। ये अन्न भोजन भी करते हैं पर बहुत कम। फल आदिका राह चलते खा लेना भी इन्हें रुचिकर है, और दूध मक्खन भी ये नियमपूर्वक खाते हैं पर अधिकता केवल मांस भोजन ही की रहती है।

निर्दयता।

इनके जीवनमें मांसका ही भोजन मुख्य है और मांस बगैर हत्याके मिल नहीं सकता, इसलिये इनमें निर्दयता भी अत्य-धिक रहती है। हा! पक्षियोंपर दया नहीं! हा! तृणभोजी पशुओंपर भी दयाका लेश नहीं!! हा! अन्य जीव जिनके द्वारा जरा सी भी हानि होती है, इनकी क्रूरतासे बच नहीं सकते

अपने शरीरको अन्य प्राणीके मांस द्वारा पुष्ट करनेके लिये जो उसकी हत्या की जाती है, क्या वह किसी प्रकार भी संगत हो सकती है? इससे बढ़कर स्वार्थपरताका उदाहरण और दूसरा क्या होगा कि एककी क्षणिक तृप्ति हुई और दूसरा अपनी जानसे हाथ धो बैठा।

पान ।

पानकी वस्तु इनके समाजमें मुख्यतया मद्य है जिसका पहले उल्लेख हो चुका है; पर ये साधारणतः सोडेका पानी, निंबूका बनाया Lemonade, बरफ और मीठा पानी, चाहे वह कूपका हो अथवा नदीका, पीते हैं! ये सिर्फ पानी सख्त जरूरत पड़ने-पर पीते हैं सो भी फिल्टर द्वारा साफ किया हुआ।

तंदुरुस्तीका खयाल ।

इनके जीवनमें तंदुरुस्तीका खयाल एक मुख्य बात है और विशेष ध्यान देने योग्य है। सफाई, उत्तम खान पान, एवं संयत आहार विहारके द्वारा मनुष्य जाति सदासे तंदुरुस्त रहती आई है और वह इसीके द्वारा रहेगी भी; पर जो इन साधनोंका अव-लम्बन न कर स्वास्थ्यके निमित्त और और अननुभूत साधनोंका अवलम्बन करते हैं वे स्वस्थ तो क्या होंगे, हां, रोगोंके शिकार बनकर एक बुरा उदाहरण स्वास्थ्यके मैदानमें रखते हैं। वाचक-वृन्द! आज दिन यदि शरीरसे स्वस्थ व्यक्ति अधिकांशमें देखने-की, इच्छा हो तो पाश्चात्योंमें देखिये; पर उनमें भयङ्कर रोगोंका

अभाव नहीं जिनका नाम भी मुश्किलसे भारतमें कभी सुना गया हो। इसका कारण मेरे विचारमें ईश्वर-प्रदत्त ज्ञानके द्वारा प्राप्त यथार्थ रुचिकर शाक, अन्न आदि उद्भिज्ज पदार्थोंको न खाकर एक मात्र मांस आदि तामस पदार्थोंका भोजन ही है। खैर, इतना होते हुए भी दूध मक्खनका भोजन, समयपर आहार विहार और रहन-सहनमें बाहरी सफाई देखकर, इन्हें तंदुरुस्तीका खयाल है और वह अधिक है यह कहना पड़ता है।

व्यायामके अभावमें तंदुरुस्ती नहीं रह सकती क्योंकि बगैर अङ्गचालन किये भली भांति रुधिरका संचार नहीं होता और बिना रुधिर-संचारके स्वास्थ्यका लाभ असम्भव है। यदि तंदुरुस्तीका खयाल पाश्चात्य जगत्में न होता तो आजदिन व्यायामकी सामग्रियां और विभिन्नतायें उक्त जगत्में दिखाई नहीं देतीं; क्योंकि ऐयाशीकी मात्रा उक्त जीवनमें कहीं अधिक है। फिर भी वे तंदुरुस्त रहते हैं।

स्वार्थपरता।

पाश्चात्योंके जीवनमें स्वार्थपरताकी मात्रा सभी बातोंमें अधिक है। चाहे जिस तरहसे हो वे तो अपने स्वार्थकी सिद्धि अवश्यमेव सम्पन्न करते हैं। जिस समय इनपर स्वार्थपरताका भूत सवार होता है उस समय ये धर्मकी ओरसे अपनी आंखें एक दम बन्द कर लेते हैं और सत्यका स्थान असत्य ग्रहण करता है, प्रेम द्वेषमें और विनय औद्धत्यमें बदल जाता है, दयाको क्रूरता दबा लेती है, दुष्टता सौजन्यको मार भगाती है। जहां

धर्म नहीं वहां पापकी मात्राका क्या कहना! जहां सत्यका पता नहीं वहां तो सदा असत्यका अटल राज्य रहा करता है! प्रेमके अभावमें द्वेष बड़ा ही बलशाली बन जाता है। औद्धत्यके प्रबल होतेही नम्रता तिरस्कृत हो जाती है! उसके तिरस्कृत होते ही क्रूरता दयाको आने नहीं देती, न दुष्टता सौजन्यकोही अपने पास फटकने देती है। अखण्ड ज्ञान-शक्तिके प्राप्त करनेका फल, हा! स्वार्थपरताके सम्मुख नष्टप्राय है। जो गुण सतोगुणी प्रवृत्तिकी ओर ले जाकर मानव-जातिको उन्नत करते, जो गुण राजसी और तामसी प्रवृत्तिसे उसे दूर भगाते, जो गुण उसे कभी एक आदर्श नररत्न बनाते हा! वे गुण तो स्वार्थपरताके कारण लुप्त हो गये। हां, राजस, तामस उन्नति होगी पर सात्विक उन्नतिसे भेंट कहां?

जातीय गौरवको अपना गौरव समझना।

पाश्चात्य लोग जातीय गौरवको अपना वैयक्तिक गौरव समझते हैं। यदि उनकी जातिमें एक भी आविष्कार किसी भी व्यक्तिने किया तो वे अपनेको इससे बड़ाही गौरवान्वित समझते हैं। दूसरी जातिके किये हुए किसी भी आविष्कारको थोड़ा रद्द-बदल कर उसपर अपनी मुहर-छाप लगा देते हैं, और उसको भिन्न नामसे पुकारकर अपनी जातिको गौरवशाली बनाते हैं। इन बातोंमें सत्यका कितना गला घोंटा जाता है तथा दूसरेका सर्वस्व कितना हरण किया जाता है इसके बतानेकी आवश्यकता नहीं। आजके ज़मानेमें पक्षपातने ऐसी जड़ पकड़ ली है कि

उसे निर्मूल करना पाश्चात्य जगत्‌में तो असम्भव है। तदनुसार ही दूसरेकी रचना अपनी मानी जाती है, दूसरेका विधान अपना समझा जाता है, दूसरेके आविष्कारका डिण्डिम अपना कहकर पीटा जाता है। ये सब ढ़ंग उक्त जगत्‌में जातीय गौरवके बढ़ानेके लिये प्रचलित हैं। ये इसी जातीय गौरवसे अपना वैयक्तिक गौरव समझते हैं।

देशोन्नति

जिस देशमें कला-कौशलका नाम नहीं वहां व्यापारका स्वप्न भी कोई नहीं देखता। देखे भी कैसे? कुछ चीजें भी तो हों। चीजोंके अभावमें व्यापार किस तरह चल सकता है? कला-कौशलके आविष्कारके बिना, उस नूतन आविष्कारको प्रत्येक व्यक्तिके सीखे बिना देशोन्नतिका सूत्रपात किसी भी प्रकारसे नहीं हो सकता। इसलिये आज दिन पाश्चात्य जगत्‌में सभी कोई न कोई कलाकौशल सीखकर नयी नयी चीजें तैयार करते हैं जिनके द्वारा वे अन्यान्य देशोंसे धन लाकर अपने देशको भली भांति उन्नत करते हैं। फिर तो कलाकौशलसे व्यापार और व्यापारसे धनागम एवं उससे देश उन्नत अवस्थामें पहुंच जाता है। येही तीनों बातें आपसमें शृङ्खलाबद्ध होती हुई उस जातिकी, उस देशकी कीर्त्तिपताका उड़ानेमें आगे बढ़ती हैं। शनैः शनैः आंशिक उन्नतिसे सर्वाङ्गीण उन्नति हो जाती है और बढ़ते बढ़ते वह देश ऐसा प्रभावशाली हो जाता है कि सारे संसारमें उसकी धाक बंध जाती है।

निर्लज्जता।

निर्लज्जताकी इस जगत्‌में पराकाष्ठा है। यद्यपि पाश्चात्य उसे अपने देशकी चाल, अपने देशका रिवाज कहकर खण्डन करनेके लिये अग्रसर होते हैं तथापि वह खण्डन निःसार और बिलकुल फीका जान पड़ता है।

इससे बढ़कर दूसरी निर्लज्जता क्या होगी कि किसीकी स्त्री और किसीका पुरुष दोनों गलबहियां डालकर नाचमें रंगरलियां मनाते और उसके द्वारा अपनी चरित्रशून्यताका परिचय देते हैं। यदि स्त्री-जातिमें दाम्पत्य नहीं, यदि उसमें पातिव्रत्य नहीं तो फिर वह स्त्री-जाति कालिमासे बरी नहीं। पशु-जाति और उस स्त्री-जातिमें फर्क ही क्या रहा? जिस प्रकार पशु अपनी कामाग्निका निर्वापण करते हैं ठीक वही बात पाश्चात्योंके संबंधमें भी कही जा सकती है। यों तो पशु एक प्रकारसे मनुष्यके समान बुद्धिशाली न होकर उतने निन्दनीय नहीं, पर मनुष्यने अपनी पशुताका परिचय देकर तो बुद्धिशालित्वका सर्वनाश ही कर डाला। किसी कविने कहा है—

न स्त्रीणामप्रियः कश्चित् प्रियो वापि न विद्यते।
गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम्॥

स्त्रियोंको न कोई प्रिय है न अप्रिय; जिस प्रकार गौएं जंगलमें नये नये तृणकी कामना करती हैं वैसे ही ये नये नये पुरुषकी। स्त्रियोंमें लज्जा ही मुख्य अलंकार है। जब-

तक स्त्रियां उसे धारण करती हैं तबतक उनकी शोभा है, अन्यथा वे हतचरित्र होकर अपने दोनों कुलोंको कलङ्कित करती हैं।

उद्यमशीलता।

जो निरुद्यम होकर आलस्यका शिकार बन जाता है उसके किये कुछ भी नहीं हो सकता। न वह पेटभर भोजन ही पा सकता है न अंगभर वस्त्र ही; न उसका समाजमें आदर ही होता है न सम्मान ही। सब लोग उसकी ओर तिरस्कार भरी दृष्टिसे देखते हैं। उसके ऊपर सन्देह करना प्रत्येक व्यक्तिके लिये एक स्वाभाविक बातसी हो जाती है; क्योंकि जब कोई व्यक्ति स्वयं अपने लिये किसी प्रकारका उद्यम नहीं करता तो वह दुःखसागरकी चिन्तातरंगोंमें पड़कर किंकर्तव्यताकी वायुके झकोरोंसे अत्यन्त पीड़ित हो शरणार्थ जहां कहीं भी जाता है दूसरोंकी सहानुभूतितक नहीं पाता। ऐसी अवस्थामें वह जीता मुर्दा है। उसकी सारी मानवी शक्तियां अस्तप्राय हैं, क्योंकि वह उनका उपयोग नहीं करता।

ऐसी मुर्दा जिन्दगी जिसमें बितानी न पड़े इसलिये पाश्चात्य जगत् सदैव उद्यमशीलताका अवलम्बन किया करता है जिसका फलस्वरूप आज दिन उक्त संसार संसारमें वैज्ञानिक उन्नति करता हुआ उसे अपने अधीन करनेपर तुला हुआ है। यह उद्यमशीलताका ही फल है कि आज पाश्चात्योंका विज्ञान, उनका कला-कौशल, उनका व्यापार, नहीं! नहीं!! उनका आधिपत्य संसारमें नाम मारे हुए है। वे किसी भी समय निरर्थक अपना अमूल्य

जीवन नष्ट नहीं करते। वे सदैव किसी उत्तम उद्देश्यको लेकर कार्य करते रहते हैं। वे किसी भी कार्य्यके लिये किसी अन्य देश व जातिका मुंह नहीं देखा करते बल्कि फौरन अपनी जरूरतके मुताबिक अपने कार्य सम्पन्न कर लेते हैं। तभी तो आज सारा संसार इनके मुंहकी ओर आश्चर्यसे देखता हुआ बगैर प्रशंसा किये नहीं रहता। यह इनकी उद्यमशीलताका ही फल है कि आज संसारमें इनकी सभ्यताका कहीं अधिक समादर है; इनका धर्म प्रचार पाकर बेतरह फैल रहा है; सांसारिक मनुष्योंके जीवनका प्रत्येक विभाग इनके रंगमें ऐसा रंग गया है कि उन्हें अपने अस्तित्व, अपनी सभ्यतातकका ख्याल नहीं। इसीका नाम उद्यमशीलता है! यह बड़ा ही उत्तम गुण है जिसके कारर्ण पाश्चात्योंकी इतनी अभिवृद्धि हुई है।

उत्साहशीलता।

जिस समय किसी भी व्यक्तिका उद्यम फलीभूत नहीं होता उस समय वह व्यक्ति हताश होकर बैठ रहता है; फिर उद्यम करनेकी ओर उसकी प्रवृत्तितक नहीं होती। हो भी कैसे? जिसके लिये वह अनवरत परिश्रम किया करता था, जिसके लिये वह अपनी बड़ी बड़ी आशायें रखता था और उन्हें फलीभूत देखनेमें अभिलाषा रखता था, आज यदि उसे असफल देखता है तो नैराश्य क्यों न उसे धर दबावे?

नैराश्यके प्रकट होते ही मनुष्यको हतोत्साह होना पड़ता है।

उसे खाना पीना अच्छा नहीं लगता; उसे किसी भी वस्तुसे प्रेम नहीं रहता; उसको अपना जीवन बोझसा जान पड़ता है! उसके कर्तव्यकी इतिश्री हो जाती है, वह कहीं भी आनन्द नहीं पाता, यद्यपि वह उसकी खोजमें सदा लालायित रहता है, उसकी तलाशमें धूपमें दौड़ा फिरता है, न दिनको दिन न रातको रात ही समझता है।

प्रकृतिका नाम शांतिदायिनी है! चाहे जैसा पीड़ित मनुष्य क्यों न हो, चाहे जैसा विफल-मनोरथ व्यक्ति क्यों न हो, चाहे जैसा हतोत्साह जीव क्यों न हो, प्रकृतिदेवीके अखण्ड राज्यमें जाते ही पीड़ितकी पीड़ा, विफल-मनोरथ व्यक्तिका नैराश्य, उत्साहहीन प्राणीका अनुत्साह—ये सब एकदम शांतिदायिनी प्रकृतिके राज्यमें उसके कर्मचारियों द्वारा बन्दी कर लिये जाते हैं। वहांका मन्द, सुगन्ध, शीतल पवन इन्हें अपनी जंजीरमें जकड़ लेता है। सुहावनी चिड़ियोंकी मन हरनेवाली सुरीली तानें उन्हें निश्चेष्ट बना देती हैं। फिर किसकी मजाल कि शांति-दायिनी प्रकृतिके शांति-प्रदानमें कुछ भी बाधा पहुंचा सके!

बस, जिस समय नैराश्य धर दबावे उसी समय प्रकृतिदेवीकी शरणमें जाकर यदि उसकी उत्साहशीलताका पाठ पढ़ लिया जाय तो उस मनुष्यमें पुनः उत्साहका संचार हो जायगा, क्योंकि जितने प्रकारके पाठ हैं सभी प्रकृतिदेवीके द्वारा पढ़ाये जाते हैं।

यथासमय फलकर वृक्षोंका फलना यदि फिर उसी समय-तकके लिये बंद हो जाय तो क्या प्रकृतिदेवी निराश होकर सूख

जायगी अथवा अपनी उत्साहशीलताका परिचय देगी ? मैं समझता हूं कि सभी एक स्वरसे इसे स्वीकार करेंगे कि अपनी वार्षिक गति फलोत्पादनमें दिखलाकर वृक्ष-संसार अपने नैराश्य-विनाश और उत्साहशीलताका महान् परिचय देता है जिसका पाठ पाश्चात्य जगत् अपने जीवनके प्रत्येक कार्यसे लोगोंको पढ़ा रहा है।

जिसे डूबतेका सहारा कहना किसी प्रकार अत्युक्ति नहीं कह सकते, जिसे मुर्दा दिलका उत्तेजक कहनेमें विद्वान् जरा नहीं हिचकते, जो नैराश्यरूपी अन्धेपनमें सहारा देनेवाली लाठी है उसी उत्साहशीलताका अवलम्बन करते हुए पाश्चात्य आगे बढ़ते चले जाते हैं। ये इसीके प्रतापसे अपनी सारी मुश्किलें आसान करते हैं। ये इसीके सहारे अपना समुन्नत जीवन, अपनी समुन्नत सभ्यता, अपना समुन्नत व्यापार समधिक समृद्धिशाली बनाते हैं।

एक बार असफल होनेपर ये दूने उत्साहसे उस काममें लग जाते हैं; दूसरी बार यदि दैवयोगसे सफल न हुए तो पुनः पुनः अदम्य उत्साहके साथ तबतक उस काममें लगे रहते हैं जबतक पूर्ण रीतिसे उसे न कर डालें। ये लाचारियोंसे किसी प्रकार लाचार नहीं होते, ये बाधाओंको अपने कार्यमें बाधक नहीं समझते। इसीका नाम उत्साहशीलता है कि स्वभावमें उत्साह भरा हुआ है। तभी तो विफलता दूर भागी रहती है; क्योंकि उत्साही अन्तमें अवश्य फलीभूत होता है।

परिश्रम ।

संसारमें कोई भी ऐसा काम नहीं जो बिना परिश्रमके सिद्ध हो सकता हो। यही कारण है कि सभीको किसी न किसी प्रकारका परिश्रम अवश्यमेव करना ही पड़ता है चाहे वह मानसिक, आर्थिक अथवा शारीरिक ही क्यों न हो। आज दिन पाश्चात्य सभ्यतामें जितने उपार्ज्जन अथवा संरक्षण शक्तिके उपकरण दृष्टिगोचर हो रहे हैं उनकी ओर विचारात्मक बुद्धिसे अवलोकन करनेपर यह मालूम होता है कि मानसिक एवं शारीरिक परिश्रमके ही वे फलस्वरूप हैं; और जबकि उन उपकरणों द्वारा अमित द्रव्य उपार्ज्जन किया जाता है तो ऐसी अवस्थामें दोनों प्रकारका परिश्रम आर्थिक हुआ। इसलिये निःसन्देह यह कहना पड़ता है कि उक्त सभ्यता परिश्रमहीकी बदौलत फैली और दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति कर रही है।

ये बड़ी बड़ी रेलगाड़ियां जो एक स्थानसे दूसरे स्थानपर अमित व्यक्ति व वस्तुको ढो ले जाती हैं, बड़े २ जहाज जिनके द्वारा वही काम जलपर होता है, पाश्चात्योंके तीनों प्रकारके परिश्रमके परिचायक हैं। आकाशमार्गमें जो हवाई नावें चला करती हैं यह भी उनके अनवरत मानसिक परिश्रमका फल है। परिश्रम करके ही ये बड़े २ पहाड़ोंको काटकर गिरा देते हैं, बड़ी बड़ी सामुद्रिक नदियोंके बीच पुलोंको बांध डालते हैं, जमीन काटकर नहर निकाल देते हैं जिसके द्वारा सिंचाईमें बड़ी ही सहायता प्राप्त होती है और पैसे भी मिलते हैं। परिश्रमहीके प्रतापसे

आज संसारभरमें पाश्चात्योंका सिक्का जमा हुआ है। इसीकी महिमासे ये आज असाध्य और असम्भवको साध्य और संभव दिखा रहे हैं। सच पूछिये तो इसी गुणसे ये इतने सम्पन्न व समृद्धिशाली हो सके हैं।

धैर्य्य

धैर्य्यकी महिमाका ज्ञान जिसे है वह आपतियोंसे किसी भी समय नहीं घबड़ाता, उसके हृदयका साहस कभी नहीं टूटता, उसकी परिश्रमशीलताकी आदत कभी भी दूर नहीं हटती, उसके चेहरेपर नैराश्यकी झलक दिखायी तक नहीं देती, उसके शरीर-पर चिन्ताकी झूर्रियोंका नामोनिशानतक मालूम नहीं पड़ता। बस यही कारण है कि धैर्य्यशाली होनेकी आज्ञा प्रायः सभी ऋषि-मुनियोंने दी है! खास धर्मके लक्षणोंमें जिनकी संख्या दस है, इसे पहला स्थान मिला है। इसीलिये इसकी गणना विलक्षण गुणोंमें है।

यह गुणोंका राजा पाश्चात्योंमें भली भाँति पाया जाता है। यह इसीकी महिमा है कि वे एक बार असफल होनेपर दुबारा दूने उत्साहके साथ उसी काममें लग जाते हैं और अन्तमें सफ-लता हाथबांधे उनके सामने आ खड़ी होती है।

किसी भी काम करनेके समय विलम्बका होना मनुष्यको बिना उबाये नहीं रहता। वह ऊब ऐसी होती है जो पुनः उसे उस कार्य्यमें प्रवृत्त नहीं होने देती। उस ऊबको दूर हटाकर कर्तामें नयी उमङ्ग भर देना जिसमें वह अपने अध्यवसायमें लगे, यह

इसी धैर्य गुणका काम है। सांसारिक सफलताकी इच्छासे जिस व्यक्तिमें यह गुण उत्पन्न नहीं हुआ उसकी महत्वाकांक्षायें निर्मूल हैं, उसे सफलताका स्वप्न कदापि देखना तक न चाहिये। इस गुणकी बदौलत आज पाश्चात्य जगत् अपनी समुन्नत गरिमासे विभूषित हो अभिमानके साथ विश्वकी उस मण्डलीमें एक अच्छा स्थान, नहीं नहीं, सर्वोच्च स्थान पाता है जिसने अपनी उन्नति प्राप्त की है।

क्षमा

क्षमासे बढ़कर दूसरा सम्मोहन मन्त्र नहीं। क्षमाशीलका सर्वत्र आदर होता है। किसीके अपराधकी क्षमा उसे उसके करनेसे मना करती है और वह व्यक्ति उस कामके करनेसे घृणा करने लगता है।

पाश्चात्योंमें आंशिक क्षमा है सो भी अपने दलके लिये न कि अन्य देशवासियोंके लिये। पाठकवृन्द! इसका उदाहरण जबतक शत्रुता न रखा जाय तबतक उक्त जगत्में यह गुण अपने लिये पक्षपातके रूपमें कहांतक है और दूसरोंके लिये नहीं है तो कहांतक नहीं है इसका पता कैसे लग सकता है? पहली बातके समर्थनमें अमेरिकाका उदाहरण बिलकुल सार्थक होगा।

इस समय अमेरिकाकी उन्नति देखकर उसके इस सौभाग्यपर आनन्द प्रकाश करनेके बदले पाश्चात्य डाह करते हैं। पर उसे इसकी जरा भी परवा नहीं, क्योंकि उसने भी पहले वर्षोंकी उपा-

उर्जन व संरक्षणशक्तिके साधनोंका निर्माण कर भली भांति संचय किया है। आजदिन संसारमें वह किसीसे दबता हुआ दिखायी नहीं देता, क्योंकि सब प्रकारके उपकरणोंसे वह सन्नद्ध है। वहां चोरी, जारी, डकैती अथवा अन्य किसी भी घोर दुष्कर्मके लिये किसी व्यक्तिको, चाहे वह बच्चा हो अथवा जवान या बूढ़ा, बेतकी मार नहीं पड़ती न वह समाजसे बहिष्कृत किया जाता है, फांसी, देश निकाला, कैदकी बातका तो प्रश्न ही नहीं है। ऐसी अवस्थामें उस अपराधीको नियत की हुई सज्जन-मण्डलीमें छोड़ देते हैं और उसे शारीरिक बीभत्स दण्डोंसे बरी कर उसके सम्मान व मर्य्यादाकी रक्षा करते हुए उसे सुधार लेते हैं। देखी आपने पक्षपातके रूपमें क्षमा ? इस क्षमाका प्रभाव निर्घृण आच-रणवाले व्यक्तिपर ऐसा पड़ता है कि वह अपने अपराधोंके लिये पश्चात्ताप करने लगता है और पुनः वैसे कर्म नहीं करता। ऐसी क्षमाके द्वारा देशका देश, चाहे वह निर्घृण कार्मोंमें ही रत क्यों न हो, एक दम सुधार डाला जा सकता है। सज्जन-मण्डलीका उपदेश परम अमूल्य रत्न है। उसकी अलौकिक ज्ञानरूपी कांतिसे भ्रमोत्पादक हृदयवर्त्ती अज्ञानान्धकार लुप्त हो जाता है और फिर तो मानवी गुणोंका अधिकारी होना उसके लिये स्वतःसिद्ध है; क्योंकि वह पशु तो है ही नहीं।

दूसरा उदाहरण दुर्दशाग्रस्त भारतसे ही दिया जाता है जहां न सज्जन-मण्डली नियत है न उपदेशक। भारतवासियोंके अपराधतककी गणना साक्षीके कथनके ऊपर निर्भर करती है।

यदि चार आदमियोंकी एक राय हुई और उन्होंने मिथ्या ही कह डाला तो विचारालयमें वह दण्डित होगा जिसने नामके लिये भी कुकर्म्म नहीं किया। दण्ड ऐसे बीभत्स हैं जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, अर्थात् जिनके द्वारा उसके सम्मानका नाश, उसकी मर्य्यादाकी अधोगति इतनी होती है कि वह जन्म भरके लिये बड़ी ही छोटी निगाहसे देखा जाता है। देखो आपने क्षमाहीनता ?

इस प्रकार मैं यह कह सकता हूं कि पाश्चात्य जगत् स्वार्थान्ध होकर अपने प्रति हद्द दरजेकी क्षमा दिखलाता है और दूसरेके प्रति हद्द दर्जेकी क्रूरता और कुटिलता। इसे न्याय कहना विचारवान् जगत्को धोखा देना है। इसीको न्यायका गला घोंटना कहते हैं। इसीका नाम अविवेक है, यही पक्षपात हैं, यही नीच स्वार्थपरता है और यह किसी भी समुन्नत जाति, समुन्नत देशके विनाशका कारण है।

क्या ही अच्छा हो कि पक्षपात छोड़कर पाश्चात्य जगत् क्षमा प्रदान करनेमें अमेरिकाका अनुकरण करे, क्योंकि अपराधी व्यक्ति भी तो समाजका एक अंग है। यदि वह सज्जनमण्डलीके सदुपदेश द्वारा अपने अवगुणोंको दूर करे, अपने किये दुष्कर्मोंपर पश्चात्ताप करे और इस प्रकार अपराधी होता हुआ भी क्षमापात्र बन अपनी मनोवृत्तिको सुधार ले तो वह व्यक्ति एक उत्तम नागरिक हो सकता है, वह सुधारकर ऊंचेसे यदि ऊंचे पदका अधिकारी बना दिया जाय तो उसके कार्य्योंको चला

सकता है। पर यहां तो बात ही और है! सौ क्लास बदमाश-के सुधारनेका कोई उपायतक नहीं। एकमात्र उपाय जेल समझा गया है, जहां सुधारनेके लिये एक भी तरीका काममें नहीं लाया जाता, बल्कि बदमाशोंकी सुहबतमें जीवन नष्ट हो जाता है।

दम।

बाह्येन्द्रियोंको वशमें रखना ही दम कहा जाता है। इस गुणके अङ्गीकृत होनेसे मनुष्य विषयी नहीं होता, राजसी भोगकी ओर अत्यन्त प्रवृत्ति नहीं होती, शरीरमें उत्साह और बलकी पूर्णता रहती है और दमका अवलम्बन करनेवाला व्यक्ति अकस्मात् आये हुए कष्टोंके सहन करनेमें समर्थ होता है।

वाचकवृन्द! यह लिखना असङ्गत नहीं होगा कि पाश्चात्योंमें उक्त गुणका एकदम अभावसा है। जिस समय नेत्रोंके आनन्द देनेवाले उपकरणोंकी ओर दृष्टि जाती है, जब कानोंके लिये रुचिकर पदार्थोंकी ओर चित्त एकाएक चला जाता है, जिस वक्त त्वगिन्द्रियके लिये सुखकर साधनोंका निरीक्षण हो जाता है, जिस बेला घ्राणेन्द्रियकी तृप्ति करनेवाली सुगन्ध प्राप्त होती है, उस समय अनायास यह कहना पड़ता है कि विलासिताके जितने उपकरण पाश्चात्योंने तैयार किये हैं वे दमकी ओर प्रवृत्तिके अणुमात्र भी परिचायक नहीं। वे तो एक दम मनुष्यको विलासी बना डालते हैं, जिससे वह व्यक्ति एकदम निर्बल होकर नाम-मात्रका मनुष्य बना रहता है; उसके विचार सर्वदा परतन्त्रताके

रहते हैं, वह स्वतन्त्रताका द्रोही बनकर खशामद करनेमें ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझने लगता है।

तभी तो आज दिन पाश्चात्य जगत् इतना विलासी हो गया है कि मल्लयुद्ध अथवा हाथों हाथ संगीनकी लड़ाईसे एक दम भागता है; उसे स्वप्नमें भी वीरतोपयुक्त कार्य्य अच्छे नहीं लगते। बस यही कारण है कि आज विज्ञान द्वारा तरह तरहकी बन्दूकें, भांति भांतिकी तोपें तैयार की गयी हैं जिनके अवलम्बनसे ही प्रतिद्वंद्वी उक्त जगत् द्वारा हराये जाते हैं।

मल्लयुद्ध करना यथार्थमें सच्ची वीरता है। जिस प्रकार रैंगलरकी परीक्षाओंमें विद्यार्थी लोग अपने प्रश्नपत्रोंके साथ भिड़े रहते हैं उसी भांति एक मल्ल अपने प्रतिद्वंद्वी दूसरे मल्लसे भिड़ता है और दाव-पेंच मारकर उसे चित करनेकी चेष्टा करता है। इससे यह अन्दाजा होता है कि दोनोंके शरीरमें कितना बल है। पाश्चात्योंमें मल्लयुद्धकी प्रथातक नहीं। वे अपने हाथोंमें मुट्ठीके भीतर डम-बैलके समान लोहेका चोट पहुंचानेवाला उपकरण रखकर घूंसेका युद्ध करते हैं; यही इनके यहां मल्लयुद्ध कहा जाता है। कुश्ती ये नामके लिये भी नहीं जानते, दाव पेंचका जानना तो सवालके बाहर है।

पाश्चात्योंमें सैंडोका बड़ा नाम है। पर जिस वक्त भारत-वर्षका गुलाम पहलवान इङ्गलैंड गया और पाश्चात्योंपर ताल ठोंका तो एक भी माईका लाल उससे लड़नेपर सहमत न हुआ। सन्मुख आने तककी कृपा नहीं की।

इस उदाहरणसे स्पष्ट है कि दमगुणके अभावके कारण हो ये दूरसे ही निशाना लगानेके उपकरण—तोप, बन्दूक इत्यादि तैयार कर अपनी संरक्षणशक्तिका परिचय देते हैं। विलासितामें दिनरात पड़कर शारीरिक बल एक दम नष्टप्राय हो जाता है और निर्बल मनुष्य बगैर तोप या बन्दूक जैसे साधनोंके किसी प्रकार अपने प्रतिद्वंद्वीको हरा नहीं सकता। यही कारण है कि वे विलासितामें पड़कर भी अपने शत्रुओंका दमन बराबर उक्त साधनोंही द्वारा किया करते हैं पर उनसे मल्ल-युद्ध नहीं करते। इसलिये जिसे शारीरिक बल बढ़ाना हो वह दमगुणको ग्रहण करे।

चोरीका अभाव।

जिसने जिसकी रचना की है वह वस्तु उसकी खास है। ऐसी अवस्थामें उसे अपनी कहकर बताना दूसरोंके लिये सरासर चोरी है। यह बड़ा भारी दुर्गुण है। इसे पास न फटकने देना चाहिये। चोरीकी आदत बड़ी ही बुरी होती है।

धनकी चोरी होती है, वस्तुकी चोरी होती है, भावकी चोरी होती है और मानसिक संसारमें सबसे बढ़कर सन्दर्भ अथवा पद्य-पद्यांशकी चोरी होती है। धनकी चोरी और वस्तुकी चोरी बहुतही निकृष्ट समझी जाती है। इन चोरियोंके लिये मनुष्य राजासे दण्डित होता है, कारागारमें यातनायें पाता है और समाजमें बड़ी ही छोटी, तिरस्कारसे भरी निगाहसे देखा जाता है। जिस समय वह चोर किसी भी स्थानपर पहुंचता है

उस समय यदि एक भी व्यक्ति उसके कर्म्मोंसे परिचित है तो वह इशारेसे अधिकांश लोगोंको उसका परिचय देता है, फिर तो तीसरेकी एकके बाद दूसरेकी उंगली उसकी ओर उठती है। यह बात उसकी समझमें भी आ जाती है, क्योंकि वह सच्चा अपराधी है,उसने दूसरेकी वस्तु चुराई है,उसने ऐसा करके महापाप किया है। वह व्यक्ति मनही मन दुःखी होता है, पश्चात्ताप करता है, आंखोंमें आये हुए आंसुओंको वह अपने भाव व्यक्त न करनेके लिये रोक रखता है और डबडबायी हुई आंखोंसे अन्तःकरणमें वर्त्तमान परमात्माकी प्रार्थनामें अपनेको लगाता है और क्षमाप्रार्थना करता है, क्योंकि तिरस्कार सबको बुरा लगता है। सम्मान सभी चाहते हैं, सम्मानकी रक्षा भी होनी चाहिये और साथ ही साथ अमृततुल्य गुणकारी सदुपदेष्टाओंके उपदेश भी। ऐसा होनेपर वह चोर व्यक्ति सुधरकर सन्मार्ग-पर आ जाता है।

भावकी चोरी तो मानसिक संसारमें बहुत बढ़ चढ़कर होती है। पर वह चोरी न होकर निजी अनुभवके नामसे अधिकतर प्रख्यात है। संसारमें आते ही कोई शिक्षित नहीं होता। सभी प्रकारकी शिक्षायें यहां उसे मिलती हैं। सब तरहके अनुभव वह यहां ही प्राप्त करता है और उन अनुभवोंका खयाल जो मस्तिष्कमें बंध जाता है वही भावका रूप धारण करता है जिसे आत्मीय भावकी ख्याति मिलती है।

पद्य-पद्यांश और सन्दर्भकी चोरी चोरी नहीं कही जा सकती,

वह तो डाकेजनी है। शिक्षित संसारमें ऐसा काम बड़ी ही घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता है। इसका कारण यह है कि ऐसा काम कोई पण्डितमानी मूर्ख ही करता है। जिसमें योग्यता है वह दूसरेके भावोंको लेकर भी उनके व्यक्त करनेमें अपनी ऐसी योग्यताका परिचय देता है, ऐसा अनूठापन दिखलाता है कि लोग लोटपोट हो जाते हैं और उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करते हैं।

पाश्चात्य संसारमें इस गुणकी कितनी कमी है इसका विचार मैं विचारशील पाठकोंसे ही कराना चाहता हूं। मैं सिर्फ उपकरणोंको उनके सम्मुख प्रस्तुत करता हूं जिनके द्वारा उन्हें विचार करनेमें सुविधा होगी।

छापनेके साधनोंका जन्म चीन देशमें हुआ, पर उनमें जरासा परिवर्तन करके उस कलाको अपनी सम्पत्ति बताना यह पाश्चात्योंका ही काम था। इसी भांति जिस समय मैं ६।७ वर्षका बालक था और बाल-चापल्यके कारण दो मिट्टीके पुरवोंमें छेद कर उन्हें सूत्रसे सम्बद्ध कर दूसरे बालकसे कौतूहलके कारण कानमें एक पुरवेको लगानेके लिये कहता था और दूसरेमें मुंह लगाकर बातें करता था, क्या यह टेलीफोनका आविष्कार अथवा गवेषण नहीं कहा जा सकता; पर दूसरेके गवेषणको प्राश्चात्य-संसार क्यों मानने लगा? उसे तो दूसरेकी कीर्त्ति पर झपट्टा मारना है, दूसरेकी की हुई चीजको अपनी बताना है।

यदि वायुयानकी बात चलायी जाय, जिसपर आज दिन

पाश्चात्यसंसार घोर गर्व करता है, तो यह कहना अनुचित न होगा कि उसके निर्माणका ढङ्ग वेदोंका अनुवाद कराकर जर्मनीमें निकाला गया। सिवाय वेदोंके दूसरी जगह इसके निर्माणका विधान नहीं है। रामायण इस बातकी पुष्टिमें वर्तमान है कि राजा रामचन्द्रजी पुष्पक विमानपर अपनी सेनाके साथ अयोध्यामें लौट आये थे।

जैसी जैसी मायाका वर्णन रामायणमें मिलता है; क्या उनसे बढ़कर आजदिन पाश्चात्य संसार एक भी आविष्कार कर सका है? तब उन्हींके आधारपर यदि वह भिन्न भिन्न चीजें तैयार करता है और उन्हें अपने आविष्कार बतलाता है तो इसे क्या कहा जाय, इसका विचार करना कठिन नहीं है।

नियमकी पाबन्दी।

हरएक काम करनेके लिये पहले उसके सम्बन्धमें नियम बनानेकी सख्त जरूरत है। बिना नियमका कार्य्य अच्छे ढङ्ग-पर नहीं चलता, न पूरा ही उतरता है। यही कारण है कि पहले उसके सम्बन्धमें नियमका निर्माण कर लिया जाता है और तब कार्य प्रारम्भ किया जाता है।

नियमकी पाबन्दीकी शिक्षा कुछ नयी नहीं है। प्रकृतिदेवीने इसकी शिक्षा अनादि कालसे संसारको दे रक्खी है। इसके सभी कार्य्य नियमानुसार हुआ करते हैं, क्योंकि नियमके बिना कार्य्यमें सजीवता नहीं आती। यथासमय भोजनकी इच्छा, समयपर शौचक्रिया, निद्रा एवं सृष्टिवृद्धिकी चेष्टा आदि बातें

यह बता रही हैं कि किसी भी कार्य्यको नियमके साथ करो। तदनुसार पाश्चात्योंमें नियमकी पाबन्दी की जाती है और उसका फल भी उन्हें भलीभांति मिलता है ; तभी तो आज वे अपना मस्तक ऊंचा किये भूखण्डको सिखा रहे हैं कि किसी भी कार्य्यकी सिद्धिके लिये पहले नियमोंको बना लो तब अध्यवसाय फलीभूत होगा, अन्यथा नहीं।

यथार्थमें इनकी सभ्यताके परिचायक जितने कार्य्य हैं उनमें बगैर नियमके एक भी नहीं है। उपार्ज्जनशक्तिके उपकरणोंसे लेकर संरक्षणशक्तिके उपकरणोंतक नियमकी पाबन्दी, वाचक वृन्द! आप भलीभांति पावेंगे। नियमानुकूल सैनिकोंकी व्यूहरचना, नियमानुकूल उनका एक साथ सब काम करना जैसे जैसे सेनापति अपनी आज्ञा दे, इस बातकी पुष्टिमें उनके आदर्श कार्य्य हैं।

स्त्रीजातिका समादर।

संसारके जितने समुन्नत देश हैं वे स्त्री-जातिका समादर करके ही समृद्धिशाली हुए हैं। स्त्री-जातिही उत्तमोत्तम नररत्नोंको उत्पन्न कर अपने देशकोगौरवान्वित करती है। यह स्त्री-जातिकाही काम है कि बच्चोंको उत्पन्न कर उन्हें सब प्रकारकी शिक्षाके योग्य बना देती है, उनके मस्तिष्कको इस योग्य बना देती है कि उनके सामाजिक, नैतिक एवं आर्थिक भाव भली भांति उन्नत हों। सच है विना माताके उपदेशके बच्चा कुछ भी नहीं कर सकता।

जो स्त्री-जाति सृष्टिके निर्माणमें तीन हिस्से हाथ बटाती है, जिस स्त्री-जातिने शिशुओंकी भली भांति रक्षा कर शिक्षा दे उन्हें सच्चा नागरिक होनेके योग्य तैयार कर दिया है, जिस स्त्री-जातिने अपनी सच्ची सेवा द्वारा पुरुष-जातिको आदर्श बना दिया है, जिस स्त्री-जातिसे पुरुष-जाति सारे सुख पाती है उस स्त्री-जातिका समादर, उसकी प्रतिष्ठा करना पुरुष-जातिका धर्म्म है। तदनुसार यदि पाश्चात्य-संसार स्त्री-जातिका समादर कर अपनी उन्नति कर रहा है तो यह कार्य्य उसका बड़े महत्वका है और उस संसारकी दिनों दिन उन्नति अवश्यम्भावी है।

स्त्री-जातिको देखकर पुरुष-जातिको उचित है कि अपने देशकी समुन्नतिके लिये उसका यथोचित समादर करे; अर्थात् उसके ऊपर एक समादरभरी दृष्टि डालना प्रत्येक पुरुषका कर्त्तव्य है। समादर दिखानेके कार्य्य यही हैं कि उसके सन्मुख किसी प्रकार औद्धत्य प्रकट न करे; एक प्रतिष्ठापूर्ण और गम्भीर अवलोकन द्वारा उसका सम्मान करे; यदि उसे पथ विस्मृत हो गया हो अथवा भार-वहनसे वह पीड़ित हो तो उसे पथ बताने और भार वहन करनेमें सहारा दे दे ; सदा माता कहकर उसका सम्बोधन करे, क्योंकि वह यथार्थमें जननी है। प्राण-संकटके उपस्थित होनेपर पहले उसकी रक्षाका उपाय करे। इसका नाम पूजा है—और सच्ची पूजा है।

प्यारे वाचकवृन्द ! देखिये, भारतवर्षके प्राचीन न्याय-कर्त्ता (Lawgiver) मनु महाराज इस पूजाके विषयमें क्या इशारा देते हैं—

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

जहां स्त्रियोंकी पूजा होती है वहां देवता आनन्द करते हैं और जहां इनकी पूजा नहीं होती वहांके सभी कार्य निष्फल जाते हैं।

मनुके इस वचनानुसार ही पाश्चात्य जगत् स्त्रियोंका समादर करता है। वह स्त्रियोंपर कदापि अत्याचार नहीं करता। वह उन्हें प्रेमभरी दृष्टिसे देखता है और तभी आज वह इतना समृद्धिशाली भी हो रहा है।

विना स्त्री-जातिके पुरुषजाति संसार चला नहीं सकती। यही प्रकृतिदेवीका नियम है अन्यथा उसकी सृष्टि होनेकीहो क्या आवश्यकता थी?

पाश्चात्य जगत् स्त्री-जातिके समादर करनेमें जरा भी कोर-कसर नहीं करता। वह अपने जगत्की ललनाओंको देखतेही समादरसे भरी दृष्टि डालता है, अपने टोप उतारता है, अपनी दाहिनी ओर गाड़ियोंपर स्थान देता है, पग पगमें उनकी प्रसन्नता चाहता है, देखकर ही प्रतिष्ठासूचक अभिवादन करता है। इसीका फलस्वरूप आज दिनोंदिन उनकी बढ़ती हो रही है; क्योंकि दो आधे मिलकर ही एक समूचा होता है। स्त्री-पुरुष दोनों ही किसी भी राष्ट्रके सच्चे नागरिक हैं; वे नागरिकताके कार्य्योंमें पूर्ण रीतिसे हाथ बंटाते हैं। यदि इन दोनों जातियोंमें पूर्ण रीतिसे पारस्परिक समादरके व्यवहार द्वारा आपसमें प्रेमकी

अभिवृद्धि न हुई, तो उन्नति तो क्या, उसका स्वप्न भी निरर्थक है। इसको विशद करनेके लिये यदि एक उदाहरण दिया जाय तो उचित होगा।

वाचकवृन्द! दस वर्षसे अधिक समय व्यतीत न हुआ होगा एक जहाज़ जिसका नाम ट्यूटौनिक था, समुद्रमें बड़े वेगसे जा रहा था। उसपर ५००, ७०० पाश्चात्योंका दल था। इस दलमें स्त्री, पुरुष, बच्चे—सभी थे और वे आनन्दके साथ रंगरलियां मनाते जा रहे थे। यथार्थमें यह यात्रा उनके लिये सुखकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण थी। वे बालबच्चोंकी लीला—शिशुलीलाका आनन्द लेते हुए यात्रा कर रहे थे।

मनुष्यके हाथमें उद्यम करना ही मात्र है, कुछ फलप्राप्तिका अधिकार तो है ही नहीं। हां, यह दूसरी बात है कि उद्यम ही फलके रूपमें पलट जाता है, यदि वह भली भांति यथोचित ढंग-से किया जाय। पर चूक भी संसारमें मनुष्योंसेही होती है, चाहे जितनी सावधानीसे काम लिया जाय। हां, एक बार बार चूकता है, क्योंकि उसे उसका अनुभव नहीं, उस कार्य्यके करने-का तरीका उसे भले प्रकार मालूम नहीं; पर जिसने अनुभव प्राप्त किया है, जिसने अच्छी लगनके साथ किसी भी काममें सिद्ध-हस्तता दिखलायी है वह सफलताका सच्चा अधिकारी है।

जब किसी कार्य्यका कारण नहीं दिखलायी देता और वह कार्य्य एक भयानक घटनाके रूपमें हो जाता है उस समय और तो और, बड़े बड़े दार्शनिक भी यह कहनेमें नहीं चूकते कि दैव-

संयोग है। पाश्चात्य संसार इसे Chance कहकर ही अपने हृदयको सन्तोष देता है। पौरस्त्य लोग भाग्य कहकर अपनी मुरझाई हुई आशालताको पुनः उत्साहसेक प्रदान करते हैं।

जिस समय रात्रिकी बेला थी और रंगरलियां मनाकर वे पाश्चात्य धीमी धीमी हवाके चलनेसे आनन्दनिद्राकी गोदमें जा पड़े थे, अनायास उसी समय एक चट्टान—बर्फकी चट्टान—समुद्रमें बहती हुई आ निकली और उसीसे जहाज टकरा गया। टकराते ही हाथभरकी दरार उसके पेंदेमें हो गयी। पानी आने लगा। आपत्ति समयमें सहायता प्रदान करनेवाली छोटी छोटी नावें भी जहाजके साथ रहती हैं; वे खोली गयीं। लड़के, लड़कियां और महिलायें उनपर उतारी गयीं। हा! जिस समय महिलाएं अपने पतियोंसे वियुक्त हुईं, जिस समय उनके पति आंसुओंसे भरी निगाहके साथ नीचा मुंह कर उन प्राणवल्लभाओंसे यह कहकर विदा मांगने लगे कि 'बच्चोंकी रक्षा करना और मेरा सच्चा प्रेम जो तुम्हारे प्रति मेरे हृदयमें वर्त्तमान है याद रखना ताकि समुद्रमें विलीन होनेपर भी मेरी आत्माको सन्तोष हो' उस समयका दृश्य बड़ाही करुणोत्पादक था—बड़ाही रोमाञ्चकारी था।

जुदाई किसी भी परिचितकी क्यों न हो, अपना असर किये बिना नहीं रहती। दो चार आंसू अवश्य गिर ही पड़ते हैं, विवर्णता हो ही जाती है। फिर खासकरके अपने बाल-बच्चे, अपनी प्राणवल्लभा सहधर्मिणी जिस वक्त छूटती है—हमेशाके

लिये छूटती है, उस वक्तकी हालत कैसी नाजुक है इसे सभी सहृदय सोच सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं। पर इस जुदाईके दुःखसे यद्यपि वे पीड़ित थे, अपने चित्तकी शान्तिके लिये पहले उन्होंने बाजे बजाये और फिर आनन्दके गीत गाये। अनन्तर एक व्यक्ति यों वक्तृता देने लगा—

आज हम लोगोंका बड़ा भारी सौभाग्य है कि जननीस्वरूप स्त्री-जातिका अपने प्राणोंकी बलितक देकर—अपने महान् स्वार्थका परित्याग कर जीवनरक्षा की! जो बालक बालिकाएं आज शिशु हैं, एक दिन वे ही हमारे देशके—राष्ट्रके सच्चे नागरिक होंगे। उनकी रक्षा करना—प्राणपणसे भी उन्हें बचाना हमारा कर्त्तव्य है! अपना कर्त्तव्य-सम्पादन कर जो सात्विक आनन्द हम लोगोंको प्राप्त हुआ है वह अनिर्वचनीय है!

फिर क्या था! पानी भर ही रहा था, वह जहाज जलमें—अनन्त जलमें निमग्न हो गया। मरनेके लिये कहना ही क्या है! वे मर गये, पर सज्जनों—विचारशीलोंके हृदयपर स्त्री-जातिके समादरका अपूर्व चित्र खचित कर गये। धन्य पाश्चात्य जगत् जिसने उन्नतिमें मुख्य सहायक इस गुणको गहा है!

बालक बालिकाओंकी शिक्षाका प्रयत्न।

जो देश बालक बालिकाओंको शिक्षाका प्रयत्न नहीं करता उसकी अधोगति ध्रुवनिश्चित है; क्योंकि उनकी शिक्षाके अभावमें उस देशके लिये सच्चे नागरिकका प्राप्त करना बड़ा

दुःसाध्य हो जाता है। फिर तो सच्चे नागरिक ही जहां नहीं वहांकी उन्नति स्वप्नमात्र नहीं तो और क्या है ? इसी प्रकार आज दिन जितने देश गिरे हुए हैं उनके अधःपतनका कारण यदि देखा जाय और ढूंढ़ निकाला जाय तो यही बात निश्चित होगी कि उन देशोंने अपने भावी नागरिकोंकी जरा भी परवा नहीं की।

जिसमें अधोगति पाकर देशका विनाश न हो इसलिये पाश्चात्य जगत् अपने बालक-बालिकाओंकी शिक्षाके प्रयत्नमें कदापि उदासीन नहीं रहता। वह सदा उन्हें भाषाकी शिक्षा; कला-कौशलकी शिक्षा, अपने देशकी उपार्जन व संरक्षणशक्तिकी अभिवृद्धिकी शिक्षा दिया करता है जिसका फलस्वरूप उस जगत्की अविराम उन्नति हुआ करती है।

भाषाकी शिक्षासे उस देशकी भाषामें जितनी भिन्न भिन्न विषय और विभागकी पुस्तकें हैं उनका भलीभांति पठन कर विद्वानोंके वैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक विचारोंका अच्छी तरह परिज्ञान हो जाता है क्योंकि वे अपनी भाषामें ही उक्त विचारोंका उल्लेख कर भांति भांतिकी पुस्तकें छोड़ गये हैं। कलकौशलकी शिक्षासे अपनी जरूरत रफा हो जाती है और अन्यान्य देशोंसे व्यापारके द्वारा अमित धन आता है। इसीसे उपार्ज्जन शक्तिकी अभिवृद्धि होती है और संरक्षण शक्तिका विकास होता है।

---

(३)

भारतीय जीवन ।

भारतीय जीवन एक बड़ा ही पवित्र जीवन है। इस जीवनमें सात्विकताके भाव कूट २ कर भरे हुए हैं। इस जीवनमें सत्यकी मात्रा बहुत बढ़ी चढ़ी है। इस जीवनमें क्षमाका स्थान बहुत ऊंचा है। दम, अस्तेय, शौर्य, धी, विद्या, क्रोधका अभाव—इन धर्म लक्षणोंने इस जीवनमें समधिक विकास पाया है।

पाश्चात्य जगत् जिसे पक्षपात बड़ा प्रिय है, न्यायका मार्ग अबलम्बन न कर उक्त कथनको मिथ्या एवं पक्षपातपूर्ण बतला सकता है; पर जिस समय उदाहरणके रूपमें सच्ची घटनायें पेश की जाती हैं उस समय विवेकशाली, प्रतिभासम्पन्न, तार्किक योग्यताप्राप्त व्यक्ति-विशेष असलियतका पता लगा लेते हैं।

पवित्र जीवनका अर्थ है जीवनमें सब प्रकारकी पवित्रता! कायिक, मानसिक और वाचिक तथा आर्थिक पवित्रता! भारतीय जीवन इन्हीं पवित्रताओंसे भरा रहनेके कारण पवित्र समझा जाता है। इस बातकी पुष्टिके लिये आपको बहुत दूर नहीं जाना होगा। पर यदि इस समय ऐसा जीवन ढूंढ़ेंगे तो भारतमें मुश्किलसे देखनेमें आयेगा, क्योंकि पाश्चात्य सभ्यताने भारतीय कर्मक्षेत्रमें इतना अधिकार कर लिया है कि जीवनका एक भी अंश उससे बचा नहीं; तब फिर पवित्रता—जीवनकी पवित्रता आये कहांसे और कैसे ?

एक चीनी यात्री भारतवर्षकी समधिक महिमासे प्रभावान्वित हो उसे देखनेके लिये कुछ सामान लेकर निकल पड़ा। जिस वक्तकी यह घटना है उस वक्त रेलगाड़ी नहीं चलती थी, खुश्की रास्ता लोग पैदल चलकर तै करते थे! रास्ता चलनेमें बगैर सवारीके क्या कष्ट होता है इसे यात्री खूब जानते हैं। वह बेचारा पैदल चलता चलता, भांति भांतिके कष्टोंको झेलता, भारतवर्षमें प्रवेश कर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। अपने उद्देश्यकी सिद्धि देखकर सभी प्रसन्न होते हैं, यह प्राकृतिक नियम है। तदनुसार प्रसन्नताका होना स्वाभाविक है। चलते चलते थककर एक कूपके समीप पहुंचा। हाथ पैर धोकर कुल्ले किये और कुछ खाकर पानी पीया। कुछ काल विश्राम लेकर वह वहांसे चला। दैवयोगसे चलते समय उसकी अपनी मुहरोंकी थैली छूट गयी। जब वह दो मीलकी दूरीपर पहुंचा और अपनी थैली संभालनी चाही तो उसे अपने पास न देखकर उसके होश उड़ गये। अगत्या वह बेचारा लौट पड़ा। कुछ दूर आनेपर वह देखता क्या है कि एक गड़ेरियेका लड़का थैली हाथमें लिये उसकी ओर चला आ रहा है। गड़ेरियेने पुकारकर कहा—"क्या यह थैली आपकी है? अगर आपकी है तो बताइये इसमें क्या है?" इन प्रश्नोंके उत्तरमें जब उसे चीनी यात्रीके विश्वसनीय वचन मिले तो उसने फौरन वह थैली ज्योंकी त्यों उसके हाथपर रख दी। यात्री प्रसन्न हो मेहनतानेके कुछ रुपये उसे देने लगा; पर उसने यह कहकर इनकार किया कि मैंने अपना काम किया जो

आपकी थैली आपको दी। आपने बड़ी कृपा की कि मुझे इसकी रखवालीसे बचाया! यह वचन सुनकर वह यात्री भारतको धन्य धन्य कहता आगे बढ़ा।

वाचकवृन्द! क्या इससे भी बढ़कर कोई जीवनकी पवित्रताका उदाहरण होगा? कभी नहीं! जबतक समाज पवित्र जीवन व्यतीत नहीं करता तबतक उस समाजके लोग खासकर बालक—कदापि पवित्र जीवनकी सारगर्भित बातें नहीं जान सकते। शरीरकी पवित्रताके विना मानसिक पवित्रता कहां? उसके अभावमें वाचिक और आर्थिक पवित्रता फटकतक नहीं सकती। एक गड़ेरियेके बालकने जैसी पवित्रताका परिचय दिया, उसने दूसरेके धनको मिट्टी समझ पैरसे ठुकरा दिया, लालचने उसके मनपर लेशमात्र भी अधिकार नहीं किया, उसने सत्यका अवलम्बन भलीभांति किया, उसने दूसरेकी वस्तु चुरायी नहीं, न उसे अपनी निजकी समझी, तो इससे बढ़कर जीवनकी पवित्रता और क्या होगी? उसी यात्रीने भारतीयोंके चरित्रका जिन शब्दोंमें उल्लेख किया है वे ये हैं—'भारतीय लोग सीधे, सच्चे, शांतिप्रिय, क्षमाशील व्यक्ति हैं। ये नशेकी चीज़ोंका व्यवहार न कर व्यभिचारसे एकदम विमुख रहते हैं। द्यूत इनका मनोविनोद नहीं, हिंसाका इनके कार्यक्षेत्रमें स्थान नहीं। वैवाहिक सम्बन्ध इनका बड़ा ही शुद्ध है। ये ईश्वरसे-धर्मसे कभी भी विमुख नहीं होते। ये स्त्रियोंको गृहलक्ष्मी समझते हैं, सादगीके नमूने हैं, और बड़े परिश्रमी होते हैं। इनका जीवन सब प्रकारसे अनुकरणीय है।'

वाचकवृन्द! इस घटना द्वारा आपको भारतीय जीवनकी पवित्रताका पूर्ण परिचय मिल गया होगा। सात्विकताके भाव इस जीवनमें यहांतक भरे हैं कि संसारमें और किसीके जीवनमें नहीं देखे जाते। यदि आप इसे अत्युक्ति अथवा आत्मश्लाघा समझते हों तो ज़रा भारतीय ऋषि-जीवनकी ओर ध्यान दीजिये।

ऋषिजीवन व्यतीत करनेवाले लोग संसारमें सिवा भारतके अन्यत्र दिखायी नहीं देते; इसका कारण यहांका जल है, वायु है, मनोहर दृश्य है, शान्तिमय वनोद्देश है, प्रभावशाली पूर्वजोंका इतिहास है, उनके अलौकिक चरित्र हैं, उनके वे गुण हैं जिन्हें धर्म-लक्षणके नामसे पुकारा जाता है, और सर्वोपरि उनका सात्विक भोजन है जिसके प्रतापसे वे अपना जीवन लोकोत्तर बना डालते हैं।

ऋषियोंका जीवन सादगीसे भरा हुआ है। उनके रहन-सहनमें सादगी, उनके कार्योंमें सादगी, उनके आश्रममें सादगी! जहां देखें वहीं सादगी! आडम्बर फटकने नहीं पाता, राजस वा तामस भाव उनके हृदयमें उत्पन्नतक नहीं होते, क्षमाका शस्त्र हाथमें लिये, अक्रोधकी ढाल लगाये वे दिनरात निःशङ्क रहते, विश्वम्भरको अपना रक्षक जानकर वे सदा निर्भय रहा करते हैं।

ऋषियोंका आश्रम ऐसे स्थानपर रहा करता है जहांपर नदियां स्वच्छ धारा बहाती हुई अपनी सिकताओंसे उस प्रदेशको पूत कर अपने कृत्य द्वारा परोपकारके उत्तम व उन्नत उपदेश दिया करती हैं! उनके जलके कारण चारों ओर तरी छा जाती

है और इसीलिये वहांपर तराईका दृश्य बड़ा मनोहर जान पड़ता है। वहांकी प्रकृतिकी हरियाली अनिर्वचनीय है! मृगोंका झुण्ड निर्बाधरूपसे आश्रमके चारों ओर विचरा करता है और आश्रमवासियोंसे ऐसा हिलमिल जाता है कि वह निःशङ्क घूमा करता है। गौएं और महिषियोंके झुण्ड भी बहुत रहा करते हैं, क्योंकि चरी वहां बहुतायतसे प्राप्त होती है। यह न समझना चाहिये कि ऋषि लोग बगैर स्त्रियोंके रहा करते हैं। वे ब्राह्म-विवाह करके अपनी अर्द्धाङ्गिनियोंके साथ पक्के गृही बनकर गृहस्थाश्रमका सुख भोगते हैं। उनके बाल बच्चे भी होते हैं। वे इन्द्रिय-सुखके लिये विवाह नहीं करते, बल्कि सुसन्तान उत्पन्न करनेके लिये। उनके आश्रममें किसी वस्तुकी कमी नहीं रहती। गोवंशोंके कारण वहां दूध, घीकी नहर बहा करती है। अन्न आदिकी जरा भी कमी वहां फटकने नहीं पाती। ऋषियों, ऋषिपत्नियों, ऋषि-बालकोंकी सेवामें आश्रमके वृक्ष प्रति संध्या फलाहार उपस्थित करते हैं। अतिथिसेवा वहां भलीभांति हुआ करती है! याचक वहांसे विमुख नहीं फिरते!

यद्यपि ऋषिलोग गार्हस्थ्य जीवनमें रहा करते हैं तथापि उनका लक्ष्य एकमात्र निर्वाण रहा करता है। निर्वाण कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका लाभ कोई स्वल्प मूल्यसे कर ले। जबतक सांसारिक वासनायें बनी रहती हैं तबतक निर्वाणकी प्राप्ति नहीं होती; हां शनैः शनैः उसके समीप वह मुमुक्षु व्यक्ति पहुंच जाता है। इस प्रकार अनेक जन्मोंकी कैवल्य विषयक

इच्छा द्वारा उसकी प्राप्तिके निमित्त उपाय करता हुआ, जब उसकी वासनायें नष्टप्राय हो जाती हैं, वह उसे पा जाता है। तभीसे वह आवागमनके दुःखोंसे छूटकर परब्रह्ममें लीन हो जाता है। जिस प्रकार दीपके निर्वाण प्राप्त करनेपर तेज तेजमें विलीन हो जाता है उसी प्रकार वह जीव ब्रह्मकी अवस्थामें पहुंचकर उसीमें विलीन हो जाता है। इसीका नाम मुक्ति है, यही कैवल्य है, यही निर्वाण है, यही सांसारिक बन्धनोंसे छूटना है, यही अपने जीवनका सुधार है, यही खोये हुए अपने अमूल्य तथा अपूर्व कांतिमान् रत्नका पा जाना है।

जबतक किसी बातसे, किसी घटनासे दुःख—अतिशय दुःख होनेकी सम्भावना न हो तबतक उस दुःखके दूर करनेका कोई भी उपाय नहीं किया जाता। पर जब उसके दुःखको अनिवार्य जान लेते हैं और उसके द्वारा होनेवाली हानियां दिखायी पड़ती हैं तब उपाय भी ढूंढ़ निकाला जाता है।

संसारमें जितने प्रकारके कष्ट हैं, जितनी सजायें हैं उनकी नाममात्र भी गणना गर्भवासके कष्टसे मिलान नहीं की जा सकती। आजकल राष्ट्रीय भावापन्न व्यक्ति राजविद्रोही समझे जाते हैं और उन्हें जो कालकोठरीकी सजा दी जाती है वह हद्दसे बेशी कड़ी है, क्योंकि आठ दिनोंमें ही उस सजाका भोगनेवाला व्यक्ति पीला पड़ जाता है। इसका कारण यह है कि चार हाथ लम्बी चौड़ी जमीनमें वह रहता है और उसीके अन्दर पाखाना व पेशाबकी व्यवस्था है; कड़ी कैदकी हालतमें उसके अन्दर चक्की

भी पीसनेके लिये गड़ी रहती है। ओढ़नेके लिये कंबल रहता है। इस कष्टको झेलते हुए मलमूत्रकी गन्धसे नाकोंदम आ जाता है, फिर वह पीला क्यों न पड़े? पर गर्भवासकी काल-कोठरी ऐसी विचित्र है कि उसमें न वह जीव पैर फैला सकता है न हाथ। हां, किसी प्रकार वह घूम सकता है, पर उसी जकड़ बंदीकी हालतमें। नाभिसे एक मांसका नाल लगा रहता है जिसके द्वारा उसके पेटमें आहार पहुंचता है। बस, यही उसका अवलम्ब है, यही सहारा है जिससे वह जीता है! पाखाना, पेशाब बंद! बोलना चालनातक बंद! निःश्वास प्रश्वासतक बंद! चमड़ेकी पतली सी झिल्ली चारों ओर बंधनसी लपटी रहती है। इतना ही नहीं, उदरके भीतरवाले कृमि उस जीवको कोमल पाकर उसी भांति काटा करते हैं जैसे पलंगपर सोनेवालेको उसमें बहुतायतसे वर्तमान खटमल। उस वक्त उस जीवको अपने सब जन्मोंके कर्म याद आते हैं, वासनायें स्मृतिपट्टपर अङ्कित हो जाती हैं।

जब प्राणी कष्ट—असह्य कष्ट—में पड़ जाता है उस वक्त अपनेको उस कष्टसे दूर करनेके लिये अपनी शक्तिभर चेष्टा करता है, उद्यम करता है; पर जब सभी चेष्टायें, सारे उद्यम विफल हो जाते हैं; सारा घड़ा हुआ मनसूबा मिट्टीमें मिल जाता है, उस समय सिवा परमात्माके और दूसरा कोई रक्षक जान नहीं पड़ता। उस समय वह दुखित जीव कष्ट दूर करनेके लिये परमात्माकी स्तुति करता है, विनय करता है, प्रार्थना करता है

और सांसारिक मायामें न फंसकर वासनाओंके परित्यागका बीड़ा उठाता है। उस समय परमात्मा दया दृष्टि कर उस जीव-को वहांसे शीघ्र मुक्त कर देते हैं और प्रसूति मारुत द्वारा वह बेचारा सिर नीचे और पैर ऊपर ऐसी अवस्थामें ही बाहर फेंक दिया जाता है। ये बातें गर्भके अन्दरकी कैसे मालूम हुईं—इस प्रश्नके उत्तरमें मैं यही कह सकता हूं कि योगसिद्धियोंके द्वारा।

यद्यपि उस जीवको अपने कष्टका ज्ञान रहा करता है, जन्म-जन्मान्तरके कर्मोंका स्मरण भी रहा करता है तथापि सांसारिक माया जिसका मनोहर दृश्य यथार्थमें मनका हरण करनेवाला है उस जीवको उस ब्रह्मसे हटाकर अपनी ओर लगा लेती है और फिर भी वासनाओंके कारण उस जीवको गर्भवासकी कैद भोगनी पड़ती है और जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इसी आवागमन-को निर्मूल करनेके लिये निर्वाणकी चेष्टामें ऋषि लोग लगे रहते हैं और अन्तमें अपने लक्ष्यको पा जाते हैं। इसी बातको योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रने गीतामें कहा है—

"अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।"

यह न समझना चाहिये कि ऋषि लोग सृष्टिके विस्तारमें हाथ नहीं बटाते। नहीं, यह तो जीवमात्रका धर्म है कि वह ब्रह्मकी सृष्टिकी सर्वदा समधिक उन्नति किया करे जिससे सृष्ट्युन्नति सम्बन्धी उसका कर्त्तव्य पूर्ण होता रहे और तदनुसार वह बेचारा कर्त्तव्यच्युत न समझा जाय। इसी सिद्धान्तके अनुसार ऋषिलोग भी अपनी सहधर्मिणीके साहाय्यसे केवल

ऋतुकालमें एक वार सन्तानोत्पत्तिके लिये उनका सहवास करते हैं और पांचवीं रात्रिसे सोलहवीं रात्रितक सम रात्रिमें गमन कर कन्या और विषममें गमन कर पुत्रकी उत्पत्ति करते हैं जिससे सृष्टिवृद्धिमें बड़ा भारी योगदान हो जाता है।

सन्तानोत्पत्ति करके वे अपनी सन्तानको अपने समान विद्वान् बनाते, धार्मिक बनाते, योगी बनाते और ऐसा आदर्श उसके सामने रखते हैं जिसमें उसके चरित लोकोत्तर, उसकी प्रतिभा उज्ज्वल, उसके विचार पवित्र और उसके आचार सात्त्विक भावोंसे भरे होते हैं। जिस भारतमें ऐसी आदर्श ऋषिसन्तानें थीं उस भारतका समाज परम पवित्र हुआ तो आश्चर्य ही क्या ? फिर तो सात्त्विक वायुमण्डलमें रहनेवालेके भाव भी सात्त्विक ही होते हैं और सभी कार्य्योंमें सत्त्वाधिक्य दृष्टिगोचर होहीगा। कैवल्यके लिये अनवरत परिश्रम करनेवाले ऋषियोंका प्रभाव यदि आदर्श जनतामें व्यापी हुआ और तदनुसार जनताके चरित अनुकरणीय हुए तो इसमें विस्मय कैसा ? यह उन्हीं महात्माओंका आदर्श था कि एक गड़ेरियेके बालकने इतनी सत्यता दिखायी और धनका प्रलोभन उसे दबा न सका।

यह भारतीय जीवनकी एक तुच्छ बानगी दिखलायी गयी है। यह इसलिये कि ऐतिहासिक घटनाको पाश्चात्य संसार प्रामाणिक मानता है। जिस भारतकी गोदमें ऋषिगण खेल चुके और आज भी खेल रहे हैं, जहां जन्म ग्रहण कर वे नाना शास्त्रोंकी रचना कर गये हैं, और उनके द्वारा सभी प्रकारके मानवोपयोगी

कार्य बतला गये हैं, उस भारतकी आज पाश्चात्य सभ्यताके कारण ही यह दशा है; नहीं तो अपने ऋषिजीवनका यदि आज भी भारत अनुकरण करे तो उसे वही सम्पत्ति, वही योगसिद्धियां अवश्य प्राप्त हों!

योगसिद्धियां कोई खरीदकर बाजारसे नहीं सकता ला, न पढ़नेसे ही इनकी प्राप्ति होती है। ये सिद्धियां उन्हींको मिलती हैं जो सांसारिक वस्तुओंमें रागद्वेष न करके एकमात्र परमात्मासे प्रेम करते हैं ताकि उनमें लीन हो जायं, और तद्नुसार अपनी चित्तवृत्तिका निरोध करके सांसारिक सारी वासनायें, सब माया-जाल दूर हटाते हैं। फिर तो उनका शरीर दुर्बल, पर बलशाली, उनका मुख कांतिमान, उनकी दृष्टि स्निग्ध, उनका हास्य शांति-मय और उनका सङ्ग कल्याणकारी हो जाता है। वे अपने उपदेश एवं अवलोकनसे लोगोंके समक्ष एक समुन्नत आदर्श उपस्थित करते हैं जिसका फल अमृततुल्य होता है।

ईश्वर-प्रेमसे बढ़कर संसारमें कोई प्रेम नहीं; प्रेमसे प्रेमकी उत्पत्ति होती है और घृणासे घृणाकी। जड़के साथ प्रेम करनेसे कोई लाभ नहीं; उलटे हानिकी सम्भावना है। चेतनमें भी जो विवेकशील नहीं उसके साथ प्रेम करनेका फल कुछ नहीं। प्रेमका फल यदि मिलता है तो विवेकीके साथ प्रेम करनेसे। सो भी फल विवेकी अपनी शक्तिके बाहर नहीं दे सकता। यही कारण है कि ईश्वर-प्रेम ज्ञानी लोगोंको बड़ा प्रिय है। यह ईश्वर-प्रेमकी ही महिमा है कि योगकी आठ सिद्धियां प्रेमीको

प्राप्त होती हैं जो अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्वके नामसे विख्यात हैं। ईश्वरप्रेमीकी गति कहीं भी कुण्ठित नहीं होती। वह अग्निमें जलता नहीं, जलमें डूबता नहीं, जमीनमें गाड़े जानेपर मरता नहीं। वह ईश्वरके समान सर्वव्यापी हो सकता है; उसमें और ईश्वरमें फर्क नहीं रह जाता। वाचकवृन्द! यदि आपको विश्वास न हो तो ऐसी घटना उपस्थित करता हूं जो १९०७ और १९०८ ई० में हुई थी।

योगविद्या सिवा भारतवर्षके दुनियामें और कहीं नहीं है और यही एक विद्या है जो पाश्चात्य वैज्ञानिकोंको सर्वदा चकित किये रहती है। यद्यपि पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने भौतिक बलका विस्तार बड़ी बड़ी तोप, बन्दूक, हवाई जहाज इत्यादिके द्वारा बहुत किया पर क्या उन्होंने योगका तत्त्व पाया? कभी नहीं। यह आत्मिक बल है। इसके सामने भौतिक कलाकी कुछ नहीं चलती। जिसमें आत्मिक बल है उसके ऊपर एक भी हरवा उठ नहीं सकता। उसका व्यक्तित्व ऐसा प्रभावशाली होता है जिसे देखकर ही बुरी भावनायें दूर भाग जाती हैं, सत् भावनाओंका उसके हृदयमें उदय हो जाता है।

योगी पहले भारतमें घर घर दीख पड़ते थे; पर आजकल भी ढूंढ़नेसे मिल जाते हैं। उक्त सन्‌में एक योगीने अपनी साप्ताहिक समाधि हरिद्वारमें दिखलायी थी। इस प्रदर्शनका उल्लेख स्वयं एक अंग्रेजने अपने अखबारमें किया था जिसे पढ़कर सम्पादक 'सरस्वती' ने आश्चर्यके साथ उसका विवरण अपनी पत्रिकामें प्रकाशित किया था। घटना यों है —

एक अमेरिकन अंग्रेज किसी भारतीय मित्रके साथ हरद्वार गया था। वहां यह सुननेमें आया कि आज एक योगीकी साप्ताहिक समाधि होगी। फिर तो कुतूहलाविष्ट हो वे दोनों वहींपर निर्दिष्ट स्थानमें प्राप्त हुए। निश्चित समयपर पहाड़परसे शङ्ख, घण्टेकी ध्वनि सुनायी पड़ी, आती हुई योगियोंकी एक बड़ी मण्डली दिखाई पड़ी। जब वे नीचे आये और निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचे तो उनके बीचमें वह महात्मा दिखायी पड़े जिनकी समाधिके देखनेके लिये इतनी भीड़ थी। सब बैठ गये पर बोचमें वह महात्मा खड़े थे। उनका शरीर हड्डियों और नसोंका प्रदर्शन मात्र था। यद्यपि शरीर इतना दुर्बल था पर मुखारविन्द कान्तिसे चमक रहा था। अवस्था वृद्ध थी, सारे बाल पाटके समान पके हुए थे, भौंहें और पपनियां झरी हुई सी जान पड़ती थीं। इतना होनेपर भी जरा उनका शारीरिक बल तो देखिये! एक बार महात्माने अपनी शान्तिमयी, स्नेहपूर्ण दृष्टि स्मित करते हुए लोगोंपर डाली जिससे दर्शकोंको जान पड़ा मानो महात्मा सबोंका चित्त चुराते हों। हाथके त्रिशूलको उठाकर एक ही वारमें दबाकर गाड़ दिया, ओंकारका गान प्रारम्भ हुआ, गड़हा संदूक रखनेके लायक एकपोरिस पहलेहीसे खोदा जा चुका था; अब उस त्रिशूलके सहारे ही खड़े खड़े महात्मा समाधिस्थ हो गये। ५-७ योगी लोग उठे और उन्हे एक वस्त्रसे लपेटा। नाक, कानके रन्ध्र रूईसे बंद कर कुछ औषध ऊपरसे लगा दी; सन्दूकमें रखकर उसे बन्द किया और गड़हेमें नीचे उतार दिया। फौरन मिट्टीसे वह

गड़हा भर दिया गया, एक छोटासा चबूतरा उसपर बना दिया गया। पर जब त्रिशूल उखाड़नेके लिये १० आदमी लगे तब वह बड़ी मुश्किलसे उखाड़ा जा सका। वाचकवृन्द! देखा आपने महात्माका शारीरिक बल! त्रिशूल चबूतरेपर गाड़ा गया। सब लोग लौटकर चले गये। अमेरिकन अपने भारतीय मित्रके साथ आश्चर्यान्वित हो सारी घटना देखता रहा और दिनमें दो वार, रात्रिमें एक वार आकर उस जगहको देख जाता था, पर कोई चिह्न चबूतरेके खोदे जानेका नहीं मिलता था। सातवें दिन समय-पर वही योगियोंकी मण्डली आई और ओंकारका गान प्रारम्भ हुआ, त्रिशूल उखाड़कर चबूतरा खोदा गया, गड़हा खाली किया गया, सन्दूक निकालकर महात्माको निकाला गया; वस्त्रसे अलग कर नाक, कानके रन्ध्र खोले गये और जरासी वायु लगनेसे महा-त्माजी उसी प्रकार उठ बैठे जैसे कोई सोया हुआ पुरुष निद्रा भंग होनेपर जाग जाता है। एक स्नेहमयी दृष्टि दर्शकोंपर डाली और मण्डलीके साथ महात्मा पर्वतपर चले गये।

प्यारे वाचकवृन्द! ऐसा दृश्य यदि कोई भी पाश्चात्य व्यक्ति दिखलाता तो अखबारों और छोटी पुस्तिकाओंके प्रकाशन द्वारा पाश्चात्य जगत् डंकेकी चोट इसे कहीं बढ़ाकर कहता और अपनेको मनुष्य न कहकर शायद फिरिश्ता कहता। पर सभ्यतामें ऊंचा नाम अभी उक्त जगत्‌ने नहीं मारा है, इसीलिए बेचारा मसोसकर रह जाता है।

हालमें ही इङ्गलैंडकी जिओग्रैफिकल सोसाइटीने भारतकी

गौरीशङ्कर चोटीकी लंबाई-चौड़ाई नापनेके लिये चेष्टा की। हवाई जहाज द्वारा लोग उसके ऊपर गये और चढ़े पर शीतसे उनके कान फटने लगे, किसीकी नाक फटने लगी, अधिकांश लौट आये, कुछ ऊपर चढ़े जिन्होंने एक विचित्र दृश्य देखा।

गौरीशङ्कर चोटी कुछ मामूली चोटी नहीं है जहां सब कोई जा सके। यह वही स्थान है जहांपर पार्वतीने शङ्करजीके प्राप्त्यर्थ घोर तपस्या की थी और वह सफल हुई थी। यह स्थान सिद्ध, मुनि, गन्धर्व, योगियोंसे व्याप्त है। वे यहां तपस्या बराबर किया करते हैं।

जब ये पाश्चात्य उस चोटीपर पहुंचे तो क्या देखते हैं कि कन्दराओंमें महात्मा लोग तप कर रहे हैं और कुछ सुगन्धित वस्तु उनके सामने जल रही है। संयोग अच्छा था कि अपनी बन्दूकका घोर अभिमान रखनेवाले ये पाश्चात्य उनकी कन्दराओंमें न जाकर लौट आये। इसमें सन्देह नहीं कि इन्हें उनके तपश्चरणसे विकट भय हुआ। तभी तो वे उनसे बातचीततक न कर सके। इस घटनाको मनगढ़न्त नहीं कह सकते क्योंकि यह रिपोर्ट पाश्चात्योंकी ही दी हुई है।

य [illegible] ह बात है कि जहां पाश्चात्य पैदल न जाकर हवाई नावोंके जरिये जाते हैं और मुश्किलसे पहुंच पाते हैं, वहां उनके कथनानुसार दीन-हीन, असभ्य, भारतीय घोर शीतकी पर्वाह न कर सानन्द तपस्या करते हैं। इन तपस्वियोंका भय

पाश्चात्योंको इतना था कि ये उनसे बोलनेतकके लिये समर्थ न हुए। शायद, छेड़छाड़का फल कुछ अनिष्ट हो यह खयाल उनके चित्तमें हुआ होगा।

आज दिन भारत पाश्चात्य सभ्यतामें लीन होकर अपनी सभ्यता यद्यपि भूल रहा है तथापि उसकी सत्ता वर्त्तमान है, उसके भाव प्रत्येक भारतवासीके मस्तिष्कमें जागरित न हों सो बात नहीं। एक एक घटना इस प्रकारकी हुआ करती है जिससे अपनी सभ्यताका अभिमान, अपनी जातिकी मर्य्यादा, अपने भावोंका, अपने विचारोंका प्रेम बना रहता है। यही कारण है कि संसारमें यद्यपि बहुतसी जातियां लुप्तप्रायसी हो रही हैं, तथापि उनकी सत्ता किसी न किसी रूपमें वर्त्तमान है।

शायद इन घटनाओंके उपस्थित करनेसे पाश्चात्योंके चित्तमें भारतीय जीवनकी बात, कि यह कितनी और कहांतक पवित्रतासे भरा है, आ गयी होगी; विशेष इशारा देनेकी जरूरत क्या है? अन्यथा ऐसी ऐसी घटनाओंकी अवलियां वर्त्तमान हैं जिन्हें देख सुनकर तत्वान्वेषण भलीभांति किया जा सकता है।

भारतीय जीवनमें सत्यकी मात्रा कहीं बढ़ चढ़कर है। सत्यका पालन जितना इस जीवनमें है उतना अन्य किसी भी जीवनमें नहीं। सत्यसे संसार चलता है, सत्यसे धर्म्मकी रक्षा होती है; अर्थ, काम, मोक्षकी प्राप्तिका मुख्य साधन भी सत्य ही है। इसकी महिमा सर्वत्र व्याप्त है और ईश्वरके तुल्य है। सांसारिक जितने कार्य्य हैं वे सत्यके परिचायक हैं।

सत्यकी महिमा इतनी जबर्दस्त है कि भारतमें एक समय सत्ययुगके नामसे विख्यात है। उस युगका आविर्भाव क्यों हुआ इस प्रश्नके उत्तरमें वाचकवृन्द! मैं यही कह देना उचित समझता हूं कि उस समय जीवनमें, समाजमें, प्रत्येक कार्य्यमें चाहे वह कायिक हो, मानसिक हो, वाचिक हो किंवा आर्थिक हो—सत्यहीका अटल राज्य था।

यथार्थमें बात भी ऐसी ही है। तभी तो धर्मका प्रधान अङ्ग सत्य ही है और सभी मतवाले—चाहे इसका व्यवहार करें वा न करें—आदरकी दृष्टिसे इस धर्म-लक्षणको देखते हैं।

राजा हरिश्चन्द्र इस गुणके बड़े ही कट्टर पक्षपाती हो गये हैं। उनकी कथा यों है—वह अयोध्याके बड़े प्रतापी राजा थे। उनकी स्त्रीका नाम शैव्या था और पुत्रका रोहिताश्व। यह राजा सत्यके इतने बड़े प्रेमी थे कि जो कुछ स्वप्नमें करते थे उसे भी सत्य समझ जागकर कर डालते थे। उनके सत्यकी ख्याति इतनी बढ़ी कि देवताओंके राजा इन्द्रतकने डाह करना आरम्भ किया। यह डाह उस समय निःसीम बढ़ा जब अनायास नारदजीने स्वर्गमें पहुंचकर राजा हरिश्चन्द्रके सत्यकी हद दर्जेकी प्रशंसा की। इन्द्र महाराज उनके सत्यकी प्रशंसा सुन सुनकर जलने लगे। वे मौका ढूंढ़ने लगे कि राजा हरिश्चन्द्रको किस प्रकार सत्यभ्रष्ट किया जाय। अनायास विश्वामित्रजी आ पहुंचे और उनके द्वारा अपनी नीच मनोवृत्तिका सिद्ध होना उनने निश्चित समझ इन्द्र महाराजने ज्योंही वह बात चलायी, त्योंही विश्वामित्रने प्रण किया और वहांसे प्रस्थान किया।

राजाने स्वप्न देखा कि एक बड़े क्रोधी ब्राह्मणको मैंने सारा राज्य-पाट दान कर दिया है। रानीने भी राजाको श्मशानमें विभूति लगाये घूमते हुए स्वप्नमें देखा। रोहिताश्वको काल-सर्पने डसा, और वह मर गया, यह भी रानीने स्वप्नमें देखा। अपनी दीन-हीन और निःसहाय अवस्थाको भी रानीने उसी स्वप्नमें देखा। जब राजासे प्रातःकाल रानीकी भेंट हुई उस समय दोनों दुःस्वप्नोंके कारण मलिनमन थे। स्वप्नकी बात चलते ही रानीने कहा—महाराज! शान्तिके लिये गुरुजीको सूचना दी थी, उनके शिष्यने मङ्गल-पाठ करके कुशोंके अभिमन्त्रित जलसे मार्जन कर आशीर्वाद दिया है। राजाने कहा—मैंने भी स्वप्नमें किसी क्रोधी ब्राह्मणको सारा राज्य-पाट दे डाला है। जबतक वह ब्राह्मण मिलता नहीं तबतक उसीके नामपर मुझे शासन करना चाहिये। तदनुसार राजाने डौंड़ी पिटवा दी और कर्म-चारीकी भांति कार्य्य चलाने लगे। जब द्वारपालने उस ब्राह्मणकी अवाई और क्रोधमें उसे गाली देनेकी बात राजासे कही तो उनने प्रसन्न हो उस ब्राह्मणको बुलाकर अपने सिंहासनपर बैठाया और कहा—मुझे जो आज्ञा की जाय उसे करनेके लिये तैयार हूं, आपके आनेके पहले ही मैंने सारा राज्य किसी अनिर्दिष्ट नाम-गोत्रवाले ब्राह्मणको देकर डौंड़ी पिटवा दी है और मैं कर्मचारीके रूपमें कार्य्य चला रहा हूं। यह सुनकर विश्वामित्रने दक्षिणा मांगी। इतने बड़े दानकी दक्षिणा हजार अशर्फियोंसे क्या कम होगी यह मुनिने कहा।

सारा राज्य-पाट दान किया गया, खजाना भी उससे अलग नहीं रहा, तो अब क्या किया जाय—इस विचारने राजाको चकित किया। उन्होंने काशीमें अपने शरीरका विक्रय कर दक्षिणा देना उचित समझा। तीनों प्राणी बिकनेके लिये काशी चल पड़े। हा! जो शरीर कुछ पहले इतने बड़े राज्यका स्वामी था, अब वह बिकनेको जा रहा है। किसलिये? सत्यके लिये। हा! जो रानी असूर्य्यम्पश्या थी और महलोंमें दासी-दासियोंसे सेवित रहा करती थी आज वह अपने कोमल चरणोंके द्वारा मार्गमें ठोकरें खाती अपने कोमल बालकको लिये बिकनेके अर्थ काशी जा रही हैं! दैव, तू बड़ा ही अन्यायी है! तेरी नीति बड़ी ही वक्र है! क्या ऐसे न्यायी राजाको भी तुझे ऐसे दिन दिखलाने चाहिये थे?

हा! राजा पांव पांव रानी और बच्चेके साथ चलते चलते थक जाते और बैठ बैठकर विधिकी वक्रतापर विचार करते। वे चिन्ताके समुद्रमें डूबने लगते, पर धैर्य बांधकर सत्यके पालन-के लिये सब कष्टोंको झेलते। यद्यपि वे रानीका मुखकमल मुर्झाया हुआ देखते और राहके चलनेसे जो उसे शारीरिक कष्ट होता उसके चिह्न भी प्रत्यक्ष देखते, पैरोंके छाले व सूजन देखते, पर वीरताके साथ उसे धैर्य्य प्रदान करते, सत्यकी पूर्तिके लिये सारे कष्टोंको सहन करनेके लिये उत्साहपूर्ण शब्दोंके उपदेश देते। इस प्रकार वे तीनों प्राणी विश्वनाथपुरीके अतिथि हुए।

यद्यपि मुनिको दक्षिणा देनेकी चिन्ता राजा-रानीको विकल कर रही थी तथापि विश्वनाथपुरीकी महिमा देखकर उन्होंने गङ्गास्नान किया और अपने विक्रयका विचार स्थिर किया। इतनेहीमें विश्वामित्रजीने पदार्पण कर अपनी दक्षिणाका तकाजा करना प्रारम्भ किया।

धारनेवालेपर पानेवालेका तकाजा कुछ अनुचित नहीं, पर जो धारता नहीं, न कर्ज ही जिसने लिया उसके प्रति सख्त तकाजा कैसा जान पड़ता है इसे सहृदय विचारें। हां, यदि एवजमें कुछ भी काम किया हो तब तो साम्यवादके अनुसार पानेवाला तकाज़ा कर सकता है। यहांतक तो नीतिकी बात हुई। किन्तु आज भी ऐसे लोगोंकी संख्या कम नहीं है जो धार कर भी देनेका नाम नहीं लेते, एवजमें जोतोड़ परिश्रम करा-कर भी जिन्हें देना नहीं भाता, क्या ही घृणास्पद दृश्य है! कैसा अनुचित कार्य्य है!

राजा हरिश्चन्द्रकी समता करनेके लिये यदि ऐसे लोग मूंछें ऐंठते हों तो उन्हें उचित है कि वे पहले उक्त राजाके समान अपना हृदय उदार बना लें और अपना मानसपट्ट सत्य व्यवहारसे उद्भासित रक्खें, तब कहीं वे किसी अंशमें समताके अधिकारी हो सकते हैं, अन्यथा उनका यह एक स्वप्नमात्र है। केवल घरमें ठाकुर पूजने और मस्तकपर तिलक व गलेमें कण्ठी अथवा तुलसी-रुद्राक्षकी माला पहननेसे काम नहीं चलता, जरूरत इसके लिये है सत्य व्यवहारकी; सत्य प्रतिज्ञाकी।

राजा हरिश्चन्द्रको उनके तकाजेसे दुःखका लेश नहीं होता था; पर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेकी बात उनके मनमें जमी हुई थी। उन्होंने सूर्यास्ततक दक्षिणाकी सहस्र स्वर्णमुद्रायें देनेका वादा किया। मुनिके आनेपर राजा अपने मस्तकपर तृण रखकर शरीर बेचनेके लिये काशीके ठठेरी बाजारमें अर्द्धाङ्गिनी और बालकके साथ घूमने लगे। उनके विनीत शब्द ये थे—"भाई सेठ साहूकार लोगो! हम अपनेको किसी कार्य्यवश बेच रहे हैं; यदि कोई मोल ले तो बड़ा उपकार हो।" इसपर वह बालक भी माताकी ओर देखकर राजाके कहे हुए शब्दोंको अपनी तोतली बोलीमें दुहराता था जिसे सुनकर अवश्य ही राजाका कलेजा फटता होगा।

जिस समयकी यह घटना लिखी जा रही है वह समय सत्ययुगका था। उस समय भारतमें खाद्य पदार्थ बहुत ही सस्ता था। शारीरिक बल लोगोंके शरीरमें कहीं अधिक था। लोग अपने हाथों अपना काम कर लेते थे। दास-दासियोंकी आवश्यकता लोगोंको जरा नहीं रहती थी। ऐसी अवस्थामें सहस्र स्वर्णमुद्राएं देकर—क्योंकि वही दक्षिणा थी—दास-दासी खरीदना लोगोंको अनुचित जान पड़ता था। यदि राजा हरिश्चन्द्रको सहस्र स्वर्णमुद्रायें न मिलें तो उनका प्रण भङ्ग होता है! कैसी जटिल समस्या है!

यदि एकमात्र सत्यका व्यवहार करनेवाला व्यक्ति प्रतिज्ञा पालनके लिये अपनी कुलीनता, मान-मर्य्यादा—सारी बातोंको

तिलाञ्जलि दे दे, तो परमात्माका आसन भी डिग जाता है। उस समय सहायताके रूपमें वे उसके सत्यकी जांच करते हैं। यदि वह व्यक्ति सच्ची परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ तो उसकी कीर्त्ति पताका फहराने लगती है। यही सृष्टिका नियम है! यही उसकी मर्य्यादा है!

जब किसीको साहस न हुआ कि इन्हें खरीदे तो परमात्माकी प्रेरणासे धर्म और बटुक, चाण्डाल तथा ब्राह्मणका रूप धारण कर राजाके पास पहुंचे। चाण्डालने राजाको लेना चाहा और बटुकने रानीको। राजाका बिकना अपनी आंखों न देख सकनेके कारण पहले रानी बिकीं; किन्तु शर्त्त यह कर ली कि परपुरुषसे सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन मैं न करूंगी। बटुकने इसी शर्त्तपर खरीदा कि बेटी! तुम ब्राह्मणीकी पूजन-सामग्री एकत्रित करनेमें एकमात्र सहायता कीजियो। पांच सौ स्वर्णमुद्रायें देकर जब रानीको ले बटुक चलने लगे तब उनने उन्हें राजाके वस्त्राञ्चलमें बांधा और अपने अपराधोंकी क्षमा मांगकर अश्रुपूर्ण नयनोंसे 'क्या अब आर्य्यपुत्रके दर्शन भी दुर्लभ होंगे?' कहा और बालकको ले चली गईं। चाण्डालने राजाको खरीदा। उसी समय विश्वामित्र आ पहुंचे। सूर्य्यास्त होनेवाला ही था। हजार स्वर्णमुद्रायें देकर राजाने विलम्बकी क्षमा मांगी। मुनि राजाके विनीत व्यवहारसे लज्जित हुए।

दैव, तेरी गति बड़ी ही विचित्र है! तेरा कार्य्य बड़ा ही बेठिकाने होता है! राजाको रंक और रंकको राजा बनाना तेरा

ही काम है। हा! जो राजा हरिश्चन्द्र धर्म्मका एकमात्र अवलम्बन कर अधर्म्मके मार्गमें पैरतक नहीं रखते थे उनकी आज यह दशा है कि वे चाण्डाल-कुलके दास हो रहे हैं। यद्यपि राजा बिके चाण्डाल-कुलमें, पर भोजन भिक्षासे करते थे और एकमात्र कम्बल ओढ़ते थे। कार्य्य इनका श्मशानमें मुर्देका आधा कपड़ा और दाहके निमित्त पैसे मांगना था। रानी बेचारी ब्राह्मणीके साथ रहकर पूजनके सामान ठीक कर दिया करती थी।

इतनी सत्यकी जांच होनेपर भी, इतना डाह करके राजा रानीको कष्ट देनेपर भी, क्या राजा इन्द्र निश्चेष्ट होकर बैठे? कदापि नहीं। वे राजाकी वदान्यतासे जला करते थे; ज्यों ज्यों वदान्यताके कारण, उदारताके कारण और सत्यप्रतिज्ञ होनेके कारण राजा हरिश्चन्द्रकी सुख्याति फैलती थी त्यों त्यों इन्द्र महाराजके हृदयमें उनके प्रति एक प्रकारका क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या और असूयाका भाव आविर्भूत होता जाता था।

ठीक है! जिस समय वनमें सांवली घटा छा जाती है और मेघ गर्जने लगते हैं, उस समय सिंह, निरर्थक ही क्यों न हो, आप भी गर्जने लगता है! अनुभवी लोगोंका कहना है कि यह बड़े लोगोंकी प्रकृति है जिसके द्वारा वे अन्यकी उन्नति देख नहीं सकते। यह लक्षण उदारताका परिचायक नहीं!!! हां, यदि बड़े लोग यही चाहते हों कि उनसे कोई भी बढ़कर न हो, तो उन्हें अपनेको इतना समुन्नत गुणोंसे सन्नद्ध करना चाहिये जिसमें वेही सर्वोपरि हों; परन्तु ऐसा न कर किसीके गुणोंसे

तिलाञ्जलि दे दे, तो परमात्माका आसन भी डिग जाता है। उस समय सहायताके रूपमें वे उसके सत्यकी जांच करते हैं। यदि वह व्यक्ति सच्ची परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ तो उसकी कीर्त्ति पताका फहराने लगती है। यही सृष्टिका नियम है! यही उसकी मर्य्यादा है!

जब किसीको साहस न हुआ कि इन्हें खरीदे तो परमात्माकी प्रेरणासे धर्म और बटुक, चाण्डाल तथा ब्राह्मणका रूप धारण कर राजाके पास पहुंचे। चाण्डालने राजाको लेना चाहा और बटुकने रानीको। राजाका बिकना अपनी आंखों न देख सकनेके कारण पहले रानी बिकीं; किन्तु शर्त्त यह कर ली कि परपुरुषसे सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन मैं न करूंगी। बटुकने इसी शर्त्तपर खरीदा कि बेटी! तुम ब्राह्मणीकी पूजन-सामग्री एकत्रित करनेमें एकमात्र सहायता कीजियो। पांच सौ स्वर्णमुद्रायें देकर जब रानीको ले बटुक चलने लगे तब उनने उन्हें राजाके वस्त्राञ्चलमें बांधा और अपने अपराधोंकी क्षमा मांगकर अश्रुपूर्ण नयनोंसे 'क्या अब आर्य्यपुत्रके दर्शन भी दुर्लभ होंगे?' कहा और बालकको ले चली गईं। चाण्डालने राजाको खरीदा। उसी समय विश्वामित्र आ पहुंचे। सूर्य्यास्त होनेवाला ही था। हजार स्वर्णमुद्रायें देकर राजाने विलम्बकी क्षमा मांगी। मुनि राजाके विनीत व्यवहारसे लज्जित हुए।

दैव, तेरी गति बड़ी ही विचित्र है! तेरा कार्य्य बड़ा ही बेठिकाने होता है! राजाको रंक और रंकको राजा बनाना तेरा

ही काम है। हा! जो राजा हरिश्चन्द्र धर्म्मका एकमात्र अव-लम्बन कर अधर्म्मके मार्गमें पैरतक नहीं रखते थे उनकी आज यह दशा है कि वे चाण्डाल-कुलके दास हो रहे हैं। यद्यपि राजा बिके चाण्डाल-कुलमें, पर भोजन भिक्षासे करते थे और एकमात्र कम्बल ओढ़ते थे। कार्य्य इनका श्मशानमें मुर्देका आधा कपड़ा और दाहके निमित्त पैसे मांगना था। रानी बेचारी ब्राह्मणीके साथ रहकर पूजनके सामान ठीक कर दिया करती थी।

इतनी सत्यकी जांच होनेपर भी, इतना डाह करके राजा रानीको कष्ट देनेपर भी, क्या राजा इन्द्र निश्चेष्ट होकर बैठे? कदापि नहीं। वे राजाकी वदान्यतासे जला करते थे; ज्यों ज्यों वदान्यताके कारण, उदारताके कारण और सत्यप्रतिज्ञ होनेके कारण राजा हरिश्चन्द्रकी सुख्याति फैलती थी त्यों त्यों इन्द्र महाराजके हृदयमें उनके प्रति एक प्रकारका क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या और असूयाका भाव आविर्भूत होता जाता था।

ठीक है! जिस समय वनमें सांवली घटा छा जाती है और मेघ गर्जने लगते हैं, उस समय सिंह, निरर्थक ही क्यों न हो, आप भी गर्जने लगता है! अनुभवी लोगोंका कहना है कि यह बड़े लोगोंकी प्रकृति है जिसके द्वारा वे अन्यकी उन्नति देख नहीं सकते। यह लक्षण उदारताका परिचायक नहीं!!! हां, यदि बड़े लोग यही चाहते हों कि उनसे कोई भी बढ़कर न हो, तो उन्हें अपनेको इतना समुन्नत गुणोंसे सन्नद्ध करना चाहिये जिसमें वेही सर्वोपरि हों; परन्तु ऐसा न कर किसीके गुणोंसे

साष्टांग प्रणाम करने लगे और रोहिताश्व उठ खड़ा हुआ। इन्द्र महाराज और विश्वामित्रने क्षमा मांगी! राजा सपुत्र सकलत्र अपने राज्यमें चले गये।

क्या इनसे भी बढ़कर संसारमें किसीने दान-वीरता और सत्य-वीरता दिखायी होगी—इस प्रश्नके उत्तरमें मुझे, वाचकवृन्द! यही कहना होगा कि शायद एकने भी नहीं। सांसारिक जीव अपनेको तथा पुत्र-कलत्रको सर्वोपरि मानते हैं, और इसका नाम स्वार्थपरता भी है; फिर कैसे विश्वास किया जाय कि कोई व्यक्ति ऐसी दान-वीरता और सत्य-वीरता दिखला सकेगा?

आज दिन राजा हरिश्चन्द्रका पतातक नहीं है; न उनकी रानी ही जीवित है, न रोहिताश्व; फिर भी जो उनकी धवल चन्द्रिकासी कीर्त्ति संसारमें फैल रही है, उनकी दान-वीरता और सत्य-वीरताकी पताका जो जगत्‌में उड़ रही है वही उनके लिये अक्षय स्वर्ग है, उसीसे वे आज भी अमर हैं और जबतक सूर्य्य चन्द्रमा हैं अमर रहेंगे। धन्य हरिश्चन्द्र! धन्य आपकी दान-वीरता!! धन्य सत्य-वीरता!!!

भारतीय जीवनमें सत्यका स्थान कितना ऊंचा है—यदि इसकी जांच करनी हो तो, वाचकवृन्द! राजा नलकी जीवनीपर ध्यान दीजिये।

जूआ बहुत ह बुरा व्यसन है। इसके चक्करमें आकर लोग अपना सर्वस्व खो बैठते हैं, खाने-खराब हो जाते हैं, सहधर्मिणीतकको बाजियोंमें हार जाते हैं, जब कुछ नहीं रहता है तो बेई-

मानीतक करनेपर तैयार हो जाते हैं; पर भारतीय जीवनमें बे-ईमानीकी बातका लेश नहीं; यहां सत्यका राज्य है, मिथ्याकी मात्राका नामोनिशान भी नहीं।

राजा नल उन उच्च विचारवाले व्यक्तियोंमेंसे हैं जिन्होंने संसारको अपनी धार्मिकतासे प्लावित कर दिया है; अपने सत्यका परिचय देकर राज्य-पाट आदितकको दे डाला है पर सत्यको मिथ्या करनेके लिये झूठा तर्क नहीं किया, न वाक्प्रपञ्च ही फैलाया। सुखसे कष्टोंका सहन कर सत्यकी मर्य्यादाका पालन किया और धैर्य्यसे आये हुए विघ्नोंका विजय किया।

जिस समय संसारमें सुन्दरता-सम्पन्न व्यक्तिकी खोजमें राजा नलके नामपर बड़े बड़े तत्वदर्शी लोगोंकी उंगलियां उठती थीं और मस्तक हिलते थे वह समय ऐसा था कि सत्य हीका सार्वभौम राज्य था। ऐसे सुन्दर राजा नल थे कि विवाह करनेकी इच्छा रखनेवाली राजकुमारियां उक्त राजाके चित्रको हाथमें लेकर एक बड़े आईनेके सामने बैठतीं और चित्रखचित नलके सौन्दर्य्यसे अपनी लावण्यमयी सुन्दरताका मिलान करतीं; पर, हा! नलके सौन्दर्य्य-लेशको अपनी सुन्दरतामें न पाकर नैराश्य-समुद्रमें पड़कर लम्बी सांसोंसे उसे मलिन करतीं। नलकी सुन्दरता उस समय रमणियोंके चित्तमें ऐसी जमी थी कि स्वप्नावस्थामें भी उन्हींको वे देखतीं। यह कुछ आश्चर्य्यकी बात नहीं है। सौन्दर्य्य एक ऐसी ही वस्तु है जिसपर सृष्टिमात्रका प्रेम रहता है। सौन्दर्य्य देखनेके लिये कुलीन और पतिव्रताओंतकके

अवगुण्ठन खुलते हैं। सौन्दर्य्य-प्राप्ति कुछ थोड़े पुण्यका काम नहीं! यह बड़े संस्कारसे मिलता है।

वाचकवृन्द! क्या सुन्दरताकी विनाशक कुसंस्कृतियोंको आपने जानातक नहीं? कानापन, अन्धापन, गूंगापन, बहरापन, लङ्गड़ापन, और बदनुमा चेहरे और शरीरकी बनावट ये ऐसी कुसंस्कृतियां हैं जिनसे सौन्दर्य्य नष्टप्राय हो जाता है; फिर दर्शकका सौन्दर्य्यके प्रति प्रेम कैसे उत्पन्न हो? कहनेकी आवश्यकता नहीं कि राजा नल इन कुसंस्कृतियोंमेंसे एकके भी शिकार न थे; तिसपर भी उनका अलौकिक गुण-सौन्दर्य्य—अद्भुत सौन्दर्य्य वर्त्तमान मनोहरताको और भी बढ़ा रहा था।

राजा नलका विवाह, कुण्डिनपुरके राजा भीमकी कन्या दमयन्तीसे जो सुन्दरतामें नाम मारे हुई थी, हुआ था। यह त्रिलोकीकी रमणियोंमें एकमात्र सुन्दर थी और उनकी सुन्दरताके मदको इसने चूर किया था इसीलिये शायद इसका दमयन्ती नाम पड़ा था। यदि ऐसा न होता तो इन्द्र, वरुण, यम, कुवेर और अग्नि ये पांचों लोकपाल उसकी रूप-सम्पदापर मुग्ध ह. स्वयंवरके लिये प्रस्थित राजा नलकी प्रार्थना कर उन्हें दौत्य कर्ममें नियुक्त न करते और इन्हें इस काममें जाना न पड़ता।

ये दोनों दम्पति विवाहके पूर्वकी कल्पनाओंका यथार्थ आस्वादन करते जब सन्ततिके मुखावलोकनके सौभाग्यसे सम्पन्न हुए उस समय इनके सुखोंकी सीमा न रही, पर भावीवश अपने छोटे भाईके ललकारनेपर जूएमें बैठ सारा राज्य-पाट हार गये।

पतिव्रता-शिरोमणि दमयन्तीने अपनी सन्तानको अपने पिताके घर पहुंचा दिया। आनेवाली विपत्ति थी वह रुकी नहीं। जब राजाके पास कुछ न रहा और वे सब हार गये तब छोटे भाईने स्त्रीकी बाजीके लिये ललकारा। असमर्थ हो राजा सस्त्रीक राज्यसे निकल पड़े।

राजा दमयन्तीपर बड़ा प्रेम रखते थे। उनका दाम्पत्य बड़ा जबर्दस्त था। उसमें मोहिनी शक्ति थी,इसीलिये इस दुःखके समय-में भी वे वियुक्त न हुए। बुरे दिनोंको बुद्धिमान् लोग प्रकृतिकी गोदमें काट देते हैं; बस, यही कारण था कि वे अपने पक्के इरादे-के साथ जङ्गलकी ओर चले।

भला, जिसने कभी दुःखका नाम ही मात्र सुना और उसका अनुभव एक दम न किया वह व्यक्ति दुःखका हाल क्या जाने? पर दैव जो कुछ सहाता है उसे सहना ही पड़ता है। राजा नल यद्यपि इस समय भैक्षुकी वृत्तिका अवलम्बन किये हुए थे पर दुःखका अनुभव न होनेके कारण राग-द्वेषसे अलग न थे। इन्होंने यद्यपि वृक्षोंके प्रति भैक्षुकी वृत्ति अवलम्बन की थी और उनसे फलोंकी भिक्षा पाकर अपना उदर-पोषण कर लेते थे, परन्तु राजस भोजन करनेकी जो आदत पड़ी हुई थी उसने एक समय, जब इन्हें बड़ी भूख लगी थी, कुछ चरते हुए पक्षियोंको पकड़कर उनके द्वारा क्षुधा-निवारण करनेकी राजाको सलाह दी। तदनुसार इन्होंने अपना परिधानीय वस्त्र उन चरते हुए पक्षियोंपर फेंका। वे राजाके कब्जेमें आनेके बदले उस वस्त्रको लेकर उड़ गये, यह

कहकर कि "राजन्! हमलोग जूएके पासे हैं। आपका विवस्त्र कर हमारा हृदय सन्तुष्ट हुआ।"

बेचारी दमयन्तीने राजाको अपना अर्धवस्त्र लपेट लेनेके लिये दिया और बड़े प्रेमसे दोनों प्राणी वनकी ओर जा रहे थे। यद्यपि राजाका मन दमयन्तीके समीप घबड़ाता नहीं था परन्तु उसको जिसमें कष्ट न हो इसलिये राजा उसे लौट जानेका परामर्श देते थे। कभी वे उसके प्रति वनके दुःखोंका, कष्टोंका, पीड़ाओंका विशद् वर्णन करते कभी वे उसके सुकुमार कोमल शरीरको वनके निवासके अयोग्य बतलाते। इस प्रकार कभी हिंसक जीवोंके भयका व्याख्यान सुना ही रहे थे कि वह बेचारी निद्रादेवीकी गोदमें जा पड़ी। राजाने उसे कष्टोंसे मुक्त करनेका इच्छासे अपने शरीरमें लिपटे हुए वस्त्रको बीचसे फाड डाला और यह सोचकर कि यह इसी राहसे अपने नैहरका पता पूछती हुई वहां चली जायगी, आप उसे अकेली सोती हुई छोड़कर चल दिये।

कहां बेचारी दमयन्तीने यह सोचकर राजाका साथ नहीं छोड़ा था कि वनमें मैं आर्य्यपुत्रकी सेवा करूंगी; यदि जरा भी राज्य सुखके विनाशका ध्यान आर्य्यपुत्रको होगा तो मैं बड़ी उत्कट युक्तियोंसे उनके मनको सन्तोष प्रदान करूंगी और किसी प्रकारसे उन्हें निराश न होने दूंगी, क्योंकि आशा ही जीवन है; नैराश्य तो मृत्युतुल्य है; कहां अब अनाथ दमयन्ती घोर वनमें अकेली है, कहीं जानेका रास्तातक नहीं जान पड़ता

है। जो अपने जीवनमें कभी क्लेशोंका नाम भी न सुन पायी थी आज वह उन्हें झेलनेके लिये तैयार है, झेलती जाती है और उनका अन्त होना सम्भव नहीं जान पड़ता।

इतनेमें उसे एक बाघ दिखलायी पड़ा और उसने समझा कि यह मुझे खा जायगा पर एक व्याधने फौरन उसको मार डाला और दमयन्तीकी रूप-सम्पत्तिपर मुग्ध हो इसे अपनी कान्ता बनानेका निश्चय किया। उसके इस दूषित विचारको जान पतिव्रताने शाप दिया और वह उसी क्षण वहीं भस्मावशेष हुआ। भारतीय जीवनमें पातिव्रत्यकी बड़ी महिमा है। क्या मजाल कि कोई भारतीय ललनाके पातिव्रत्यमें दाग तो लगा दे! इस समय जो भारतमें वारनारियां दिखलायी देती हैं यह पाश्चात्य सभ्यताका प्रताप है, क्योंकि दुर्दशाग्रस्त भारतमें इस समय पाश्चात्य सभ्यताकी दिनादिन तूती बोल रही है!

वह बेचारी आगे चली और एक बनियोंका दल जा रहा था उसीके साथ हो ली। विचार उसका यह था कि किसी प्रकार रास्तेका पता तो लगे। हा दैव! रात्रिका समय था, वह अनाथा सो रही थी कि जङ्गली हाथियोंका एक झुण्ड आया और उनके साथवाले हाथियोंसे ऐसा लड़ा कि बहुतसे लोग दब-कर मर गये, पर बेचारी अबला बच गयी और सुनकर भागी कि "वह बड़ी मनहूस है, मिलनेसे मार डालना होगा।"

वहांसे भागकर वह एक नगरमें पहुंची जहां लोग पगली समझकर उसे तंग करने लगे! खासकर वहांके लड़के जो अनाथ

स्त्रियोंको तंग करनेहीमें अपना मनोविनोद समझते हैं। जब राजमहलके नीचेसे वह बेचारी गुज़री तो उसके खुले, धूलभरे केशकलाप, उसकी मैली-कुचैली धोती, गर्दसे भरा हुआ उसका शरीर, लड़कोंका उसे नाहक सताना, ज़ार ज़ार रोनेसे आंखोंकी सूजन और गमका भरा चेहरा—इन बातोंने राजमाताकी सम्वेदनाको उसकी ओर आकृष्ट किया और उन्होंने उसे अपनी परिचारिकाके हाथ बुलवा भेजा। महलमें जाकर जब राजमाताके कहनेसे उसने स्नान किया और खा पीकर जब अपना परिचय दिया तो राजमाता रिश्तेमें दमयन्तीको मौसी निकली। तब कुछ रोज़ रखकर दमयन्तीको उसकी माताके पास राजमाताने भेज दिया। यद्यपि मायकेमें उसे सब प्रकारके सुख प्राप्त थे और बालबच्चे भी थे तोभी अपने राजाकी याद कर वह बराबर रोया करती थी। धन्य दमयन्तीका पातिव्रत्य!

उधर राजा जब दमयन्तीको सोती छोड़ भाग गये तो वे कर्कोटक सर्पके समक्ष पहुंचे। उसने इनको डस लिया जिससे इनका रूप विकृत हो गया और उसीके कहनेसे अपना बाहुक नाम रक्खा। कर्कोटक सर्प बोला—"राजन्! तुम्हारे दिन खराब हैं। कलि तुम्हें कष्ट दे रहा है, पर मेरे डसनेसे वह वेदना अनुभव करता रहेगा। ऋतुपर्ण अयोध्याके राजा हैं उनके यहां जाकर तुम उनसे अक्षविद्या सीखना और उन्हें अश्वविद्या सिखलाना। जब तुम्हारे बुरे दिन कट जायंगे तो फिर तुम पूर्ववत् अपने राज्यका शासन जूएमें छोटे भाईको जीतकर करोगे, सब काम आपके पूर्ववत् ही चलेंगे।"

दमयन्तीके वियोगसे दुःखी हो अब बाहुक ऋतुपर्णके यहां पहुंचे। उन्हें घोड़ेका बड़ा शौक था। ज्योंही बाहुकने अपनी अश्वविद्या दिखलाई कि राजा मुग्ध हो गये। उन्होंने अपने यहां बाहुकको रख लिया और बाहुक नित्य नित्य एक नयी ही अश्व-क्रीड़ा दिखलाते और उनका मनहरण करते।

दमयन्ती यद्यपि अपने बालबच्चोंके साथ मायकेमें थी और सब प्रकारके भोग उसे प्राप्त थे, पर क्या अपने प्राणनाथ, प्रियतम-के वियोगमें उसे कुछ भी रुचता था? कुछ नहीं! वह बेचारी राजाका संवाद पानेके लिये चिन्तित—घोर चिन्तित—थी। जब उसे कोई भी उपाय उनसे मिलनेका न जान पड़ा तो उसने अपना पुनः स्वयंवर घोषित किया।

प्यारे वाचकवृन्द! पतिव्रतायें अन्य पुरुषकी चिन्ता स्वप्नमें भी नहीं करतीं। परपुरुषका चिन्तन उनके लिये महापाप है। भारतीय जीवनमें स्त्रीजातिकी गुणावली कथनमें पातिव्रत्य और परपुरुषका त्याग मुख्य बातें हैं। तब उस पतिव्रता-शिरोमणिने अपने पुनः स्वयंवरकी घोषणा क्यों की यह एक स्वभावतः प्रश्न उपस्थित होता है। मेरा विनीत निवेदन यही है कि दमयन्तीने अपने प्रियतमको बुलानेके लिये यह एक जाल रचा था।

जिन जिन राजाओंने दमयन्तीके पुनः स्वयंवरकी सूचना पायी वे आनन्दसे उछलने लगे। एक बार उसके स्वयंवरमें जो निराश हुए थे उनके मनकी मुरझाती हुई कली खिल उठी, उनके हृदयमें पुनः आशाका सञ्चार हुआ। इसका कारण था

उसकी अलौकिक, अनिर्वचनीय और स्वाभाविक सुन्दरता। सुन्दर वस्तु लोगोंके चित्त अपनी ओर खींचा करती है यह स्वाभाविक है। उसके पुनः स्वयंवरकी बातने राजा लोगोंमें तैयारियोंकी धूम मचा दी।

यह घोषणा ऋतुपर्णके कानमें उस समय पड़ी जब स्वयंवरके लिये एक दिन बाकी था। उन्हें दमयन्तीके पानेकी इच्छा—उत्कट इच्छा—थी। वे उसके सौन्दर्य्यपर मुग्ध हो रहे थे। उन्होंने निरुपाय होकर लंबी सांस लेनी शुरू की। बाहुकके पूछनेपर सारी हालत कह सुनायी और पूछा कि आजभरमें अयोध्यासे कुण्डिनपुर पहुंचना सम्भव है? बाहुकके स्वीकार करनेपर राजा सुसज्जित हो तैयार हुए और उसने रथ जोता। जब बैठकर राजाने आज्ञा दी तो वायुके वेगवाली चालसे घोड़े चले। वह रथ पृथ्वीके ऊपर ऊपर चलता जान पड़ता था। घोड़े उड़ते हुए जान पड़ते थे। भोर होते ही राजा कुण्डिनपुर पहुंच गये। राजा भीमने उन्हें टिकाया, सब सामान राजसम्मानके योग्य पहुंचवा दिये। जब ऋतुपर्णने एक ही दिनमें अयोध्यासे वहां पहुंचनेका कारण बाहुककी अश्वविद्याको बताया तो भीम भूप बड़े आश्चर्य्यमें पड़े। इसकी चर्चा सर्वत्र फैली। दमयन्तीने भी सुनी। उसने राजा नलकी अश्वविद्याके बारेमें सुन रक्खा था, इसलिये उसके हृदयमें आशा टहल लगाने लगी और अपनी अश्वशालामें जहां बाहुक टिके थे एक दासीके साथ अपने बच्चोंको भेजा।

अपने अपने बच्चोंपर सभी प्राणी प्रेम करते हैं सिवा सर्पिणी

और मछलियोंके। मनुष्यका तो कहना ही क्या है! वह एक समुन्नत प्राणी है। बाहुकने बच्चोंको देखते ही गोदमें उठा लिया और अश्रुधारा मारे प्रेमके प्रवाहित हो चली। यह संवाद जब दमयन्तीने सुना तो उसने और जांच करनी शुरू की। अश्व-शालामें सारे भोजनके सामान भेजवाकर आग और पानी नहीं भेजवाया। पाक करनेमें ये दोनों मुख्य हैं, इनके बिना पाक होना असम्भव है। जब बाहुकने देखा कि आग और पानी नहीं है तो सूर्य्यकी ओर देखकर मन्त्र पढ़ा और खरको मुंहसे फूंका। फिर क्या था, आग जलने लगी। जब जलकी आवश्यकता पड़ी तो वरुणका मन्त्र कहा और पात्रमें हाथ देते ही वह पानीसे पूर्ण हो गया।

जब यह समाचार दासीने दमयन्तीसे कहा तो उसे पूर्ण विश्वास हुआ और वह स्वयं अपने बच्चोंके साथ अश्वशालामें पहुंची। बाहुकने उन्हें देख सिवा अविरल अश्रुधारा बहानेके और कुछ नहीं कहा। दासीके पूछनेपर बाहुकने यही कहा कि मेरे भी ऐसे ही बालबच्चे हैं। बस, कर्कोटकके कथनानुसार जब राजाके अच्छे दिन आये तो उन्होंने कर्कोटकका ध्यान किया और उसका कञ्चुल रूप विष उतरा जिसने राजा नलकी असली सूरत छिपा दी थी और कलिको वेदना देता था। फिर राजा नल अपने असली रूपको पाकर अपनी प्राणवल्लभासे मिले और जब ऋतुपर्णसे मिले तो उन्होंने हाथ जोड़कर क्षमा मांगी। यह उनसे अक्षविद्या सीख चुके थे और अश्वविद्या सिखा चुके थे,

अतः वे अपने राज्यको गये और ये पुत्रकलत्रके साथ कुछ दिन रहे। अन्तमें अपने भाईके साथ अक्षक्रीड़ा कर हारा हुआ सारा राज्य लौटा लिया और सुखपूर्वक पुत्रकलत्रके साथ बहुत कालतक राज्य किया।

कर्कोटक नागका अनाथावस्थामें राजा नलके प्रति उपकार, दमयन्तीका अनुकरणीय पातिव्रत्य, दाम्पत्य और पतिके वियोगमें कष्टसहिष्णुता, नलका धैर्य्य और ऋतुपर्णकी दीनबन्धुता तथा गुणग्राहिता—इन गुणोंने ही उक्त व्यक्तियोंको प्रातःस्मरणीय बना दिया है। वाचकवृन्द! इस बातके प्रमाणमें मैं एक संस्कृत श्लोक उद्धृत करता हूं।

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्त्तनं कलिनाशनम्॥

सत्य ही एक ऐसा गुण है जो सारे अवगुणोंको दूर हटाये रहता है। जो सत्यशील है वह एक भी दुष्कर्म नहीं कर सकता; क्योंकि कुकर्म करके सत्यशीलताके कारण वह व्यक्ति उन्हें किसी प्रकार छिपायेगा नहीं। कहनेसे उसे लज्जाके वशीभूत होना पड़ेगा, इसलिये एक भी कुकर्म वह कदापि नहीं कर सकता। इसीलिये "नास्ति सत्यात् परो धर्म्मः; सत्ये नास्ति भयं-कचित्" आदि आदि सूक्तियां धर्म्मग्रन्थोंमें बहुतायतसे पायी जाती हैं।

भारतीय जीवनमें अवगुणोंका लेश नहीं। इसमें गुणोंका इतना प्राधान्य है कि दुर्गुण फटकनेतक नहीं पाते। वाचक-

वृन्द ! यदि इसकी सत्यता प्रमाणित करनी हो तो जरा राजा रामचन्द्रजीकी जीवनीपर दृष्टि डालिये।

सब बातोंमें मर्य्यादाकी रक्षा रामचन्द्रने की है; इसीलिये मर्य्यादापुरुषोत्तमकी उपाधि इन्हें भारतीय जनताकी ओरसे मिली है। इनका आदर्श अनुकरणीय है इसलिये आदर्शपुरुषोत्तम भी इन्हें कहना अत्युक्ति नहीं। जबसे ये पैदा हुए कोई भी काम दूषणके योग्य इन्होंने अपने जीवनमें नहीं किया। इनको भलीभांति यह ज्ञान था कि मैं राजकुमार हूं; मुझे प्रजाकी प्रसन्नतासे काम है। इसीलिये ये सबको प्रसन्न रखते थे। सबको प्रसन्न रखना बड़ा ही दुष्कर कार्य्य है; पर इन्होंने इस काममें सर्वोपरि सफलता प्राप्त की जिसके सुबूतमें इतना ही कहना काफी है कि रामका सिंहासनपर बैठना सबको इतना अधिक रुचा था। इस खबरसे ही सब लोग इतने प्रसन्न थे कि आनन्दके मारे उनके हृदय उछलते थे, उनके प्रसन्नताके भाव ऐसे निःसीम थे कि वे रामको अपने जीवनसे प्रिय, अपना सर्वस्व समझते थे।

उक्त कथन उस समय और भी पुष्ट होता है जब राम अपनी सौतेली माता कैकेयीकी आज्ञा मान—क्योंकि राजा दशरथने अपने मुंहसे यह न कहा कि राम ! वन जाओ—वन जानेके लिये पिताके चरण छूने आये तो पुरवासी लोगोंमें बड़ा हाहाकार मचा; और जब जानकी तथा लक्ष्मणके साथ रथपर बैठे और सुमन्त्रने उसे हांका तो सब पुरवासी उनके संग लगे। क्या इतना प्रेम पुरवासियोंका कभी किसीने अपने तईं खींचा है?

क्या पुरवासियोंके हृदयपर अपने व्यक्तित्वका इतना प्रभाव किसीने डाला है ? क्या प्रजाने और किसीके तई भी ऐसी भक्ति दिखायी है ? उत्तरमें यही कहना है कि किसीके प्रति नहीं।

रामचन्द्र जितना प्रजागणको प्रसन्न रखनेमें सफल हुए उतना दूसरा न हुआ; इसका एक मात्र कारण इनका स्वार्थ-त्याग है। जिस समय इन्हें राज्य मिल रहा था और राजा दशरथने वन जानेकी आज्ञातक नहीं दी थी, उस समय दूसरा व्यक्ति सौतेली माके कहनेसे राजसिंहासनका त्याग कदापि नहीं करता, इतने धन, इतने सुख, इतने भोगोंकी सहज ही उपेक्षा नहीं करता।

जिस समय रामचन्द्र चित्रकूटमें पहुंचे और वहां रहने लगे, उस समय वनके कष्टोंका परिचय उन्हें पूर्ण रीतिसे हो चुका था, क्योंकि सिवाय लक्ष्मणके दूसरा उनका सेवक न था और सिवाय जानकीके उनके एक भी परिचारिका न थी। वे राज-सुखमें पले हुए थे, स्वर्गभोग भोग चुके थे, इतनी अवस्था उनकी सानन्द कटी थी; तिसपर भी भरत उन्हें मनाने व लौटाने गये थे, सारा परिवार और प्रजागण उनके साथ था, साक्षात् वशिष्ठादि मन्त्री-भी वहां वर्त्तमान थे, सबकी एक मात्र यही इच्छा थी कि रामचन्द्र अयोध्या लौट चलें। इन सबकी इच्छासे बढ़कर भरतकी इच्छा थी, क्योंकि उन्हें कलङ्क—घोर कलङ्क—लगता था, इसलिये कि उनकी ही माताने तो रामके अभिषेकमें बाधा पहुंचाई थी, अपने पुत्रके लिये राज्य मांगा था और रामके लिये मुनि-वेशमें वनवास; और वे विना लौटाये आप लौटनेके लिये तैयार

नहीं थे। इस अवस्थामें यदि राम लौटते और राज्य अङ्गीकार करते तोभी उनपर लालचकी लाञ्छना कोई नहीं लगाता। परन्तु वे सच्चे मनसे पिताकी बातकी पूर्त्ति करनेके लिये, कैकेयीके वरोंको फलीभूत करनेके लिये लौटे नहीं, यद्यपि भरतने बहुत विलाप किया और वनवासपर दुःख प्रकट किया। उन्होंने भरतको उलटा समझा बुझाकर और अपनी पादुका देकर लौटा दिया! इतना स्वार्थत्याग कौन कर सकता है?

जब पञ्चवटीमें रावण आया और उसने जानकीका हरण किया तो उन्हें लंकामें ले जाकर अशोकवाटिकामें रखा और अपनेको अङ्गीकार करनेके लिये उन्हें बहुतसे प्रलोभन दिये, पर सब व्यर्थ! उनकी खोजमें राम-लक्ष्मण वन वन घूमे और घोर विलाप किया। सुग्रीवसे मित्रता कर बालिको मार जब रामने हनुमानके द्वारा जानकीका संवाद पाया तो बानरी सेना लेकर समुद्रमें पुल बंधवा लंकामें पहुंचे। वहां युद्ध होने लगा, रावणका सकुटुम्ब क्षय हुआ और जानकी सुखपालपर सवार कराकर विभीषण द्वारा भेजी गयीं। जिनके वियोगमें राम वन वन रोते फिरते थे, जिनकी प्राप्तिके अर्थ राम किसी कार्य्यको अकार्य्य नहीं समझते थे, जिनके लिये समुद्र बांधा गया, जिनके लिये सकुटुम्ब रावणका नाश हुआ, आज उन्हीं जानकीकी शुद्धिके विषयमें रामको सन्देह हुआ और उनकी महा कठोर शुद्धि हुई—अर्थात् अग्निमें उन्हें पैठना पड़ा और गोदमें लिये अग्निदेव प्रकट हुए; उन्होंने इनकी शुद्धि साबित की। यह सब किसलिये? सिर्फ

इसीलिये कि यदि प्रजा कहेगी कि सालभर रावणके घर जानकी रहीं और फिर रामने उन्हें कैसे रक्खा तो यही शुद्धि—घोर शुद्धि—उस वक्त लोगोंको उत्तर रूपमें काम देगी और मुंह न उठेगा, प्रकृतिरञ्जनमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित न होगी। हुआ भी ऐसा ही, किसीने मुंह न उठाया।

संसारके जितने काम हैं अपवाद सबोंमें लगा हुआ है। वही अपवाद रामके प्रकृतिरञ्जनमें भी आ पड़ा। यद्यपि रामने अपनी ओरसे इस काममें जरा भी कोताही नहीं की, कुछ भी चूक नहीं की, पर अपवाद अपवाद है। वह अपना स्थान अवश्य पाता है।

लंकासे लौटकर अवधिके अन्तिम दिन जब भरत नन्दिग्राममें वल्कल चीर पहने, कुशासनपर बैठे रामकी अवधिकी याद कर अविरल अश्रुधारा बहा रहे थे और मनमें सोचते जाते थे कि "यदि आज राम नहीं आये तो मैं जीकर क्या करूंगा? लक्ष्मणका सौभाग्य है कि वह उनकी सेवा कर सके! जान पड़ता है रामने मुझे हद दर्जेका नीच समझा, तभी तो मेरा परित्याग उन्होंने किया कि आजतक नहीं आये। हा! अवधि आज पूरी हो रही है और मेरे जीवन, धन, प्राण क्यों नहीं आये?"

वाचकवृन्द! क्या इससे भी बढ़कर सौभ्रात्र दुनियाके पर्देपर किसी भी देशमें दिखलाया गया है? आजतक तो ऐसा आदर्श सौभ्रात्र दिखायी नहीं दिया। यह भारतीय जीवन है, यहां ऐसी ही अनूठी अनूठी आत्मत्यागकी बातें, प्रेमकी बातें,

पातिव्रत्यकी बातें दिखायी व सुनायी पड़ती हैं जो उत्तम धार्मिक जीवन, उन्नत समाजके बनानेमें सर्वथा समर्थ होती हैं।

रामचन्द्र जब अयोध्यामें लौटकर आये उस समय जनताके हृदयका असीम आनन्द देखने योग्य था। उसका वर्णनातीत उत्साह एक ऐसी कहानी हो गयी है जिसे भारतीय लोग बराबर कहा सुना करते हैं। जिन रामचन्द्रके वियोगमें दुःखी हो अयोध्यावासी रात-दिन अविरल अश्रुधारा बहाया करते थे, उनको सिंहासनासीन देख उनका संयोग-सुख अनुभव कर आनन्द और उत्साहका बढ़ना स्वाभाविक है।

राज्य करनेमें भलीभांति प्रजारञ्जन होता है या नहीं इसकी सूचना पानेके लिये मर्य्यादापुरुषोत्तमने चारों दिशाओंमें दूत भेजे थे। सबोंने लौटकर प्रजा द्वारा किये गये उनके गुणगानका वर्णन किया, परन्तु एकने धोबीके कहे हुए बड़े ही मर्म्मभेदी वचन कहे जिसपर जानकीसी पतिव्रताका त्याग—गर्भ-भारसे अलस, अग्निके द्वारा पहले ही शुद्ध बतायी हुई परम पवित्र जानकीका त्याग—एक मात्र प्रकृतिरञ्जनके लिये रामचंद्रने किया। क्या इससे भी बढ़कर किसीने प्रकृतिरञ्जन किया है? उत्तरमें "नहीं" शब्दका प्रयोग ही सुनायी देगा।

जिस दिन दूतोंने प्रस्थान किया था वही दिन रामचन्द्रके साथ जानकीके प्रेमालापका अन्तिम दिन था और वही रात्रि अन्तिम रात्रि थी। दिनमें जो प्रेमालाप हुआ था उसकी समाप्ति रात्रिमें हुई थी। जानकीने रामचन्द्रके बार बार पूछनेपर अपना

दोहद (गर्भवतीका मनोरथ) कह सुनाया। उन्होंने कहा—"प्यारे आर्य्यपुत्र ! मेरी इच्छा थी कि मैं मुनियोंके आश्रममें घूमती, ऋषि-पत्नियोंसे प्रेमालाप करती, वनकी शोभा देखती, प्रसन्न जलवाली नदियोंमें अवगाहन करती। सिवा इन साधोंके और कोई साध इस समय मेरे चित्तमें नहीं है।" ऐसी बातें करती हुई जानकी रामचन्द्रके गलेसे लगकर सो गयीं और वे भी उनके अंग प्रत्यंगों-का स्पर्श करते हुए, जिस समय विवाह हुआ उस समयसे लेकर आजतक, जो कुछ उनके गुणोंका अनुभव हुआ था उसका वर्णन मन ही मन करते रहे।

इतनेहीमें दूत लोग आये। सब प्रसन्न थे पर एक उनमें रोता था। सबसे कुशल पूछ प्रकृतिको सदिच्छा जान उन्हें विदा किया। अब रोनेवालेकी बारी आयी। उसने कहा—महाराज, एक धोबीकी स्त्री आपसमें झगड़ा होनेके कारण रातभर दूसरेके घरमें रही और सवेरे जब लौट आयी तब उस धोबीने कहा कि अब तू मेरे कामकी नहीं है, जहां रातको रही वहां चली जा, मैं राजा नहीं हूं कि वर्षभर दूसरेके घर रहकर आयी हुई स्त्रीको भी रख लूं। मेरे जातिभाई मुझे जातिसे बहिष्कृत कर देंगे।

ये वचन मर्य्यादापुरुषोत्तमके कानमें जिस समय पड़े वे बड़े भारी सन्नाटेमें पड़ गये। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। एक ओर प्राणप्रिया जानकीके प्रति प्रेम और दूसरी ओर प्रकृति-रञ्जन जिसका उपदेश वशिष्ठजीतकने बड़े जोरदार शब्दोंमें दिया था। उन्हें इस बातका पक्का विश्वास था कि जानकी पति-

व्रता शिरोमणि हैं। यदि ऐसा न होता तो लंकामें अग्निदेव उन्हें गोदमें लिये उनकी शुद्धताका साक्ष्य कैसे देते? इन सब बातोंके होनेपर भी, बहुत विचार करनेपर भी मर्य्यादापुरुषोत्तमने इनका परित्याग ही प्रकृतिरञ्जनके लिये मुख्य उपाय समझा। तदनुसार कार्य्य भी किया गया। लक्ष्मणके आनेपर उनसे मर्य्यादापुरुषोत्तमने कहा—"लक्ष्मण! एक धोबीने जानकीके सम्बन्धमें कलङ्ककी बात कही है,इसलिये इन्हें वनमें पहुंचाकर लौट आओ,मैंने प्रकृतिरञ्जनके लिये पतिव्रताशिरोमणि जानकीनन्दका परित्याग किया।"

रथ कसा तैयार है। महारानी गर्भभारसे अलस बड़े तड़के उठीं और रातकी बातोंकी भावनासे प्रसन्न थीं। वनकी शोभा देखनेके लिये नेत्र उत्सुक हो रहे थे। इतनेहीमें लक्ष्मणने आकर कहा "रथ तैयार है, महारानी वनको चलें।" फिर क्या था! रथपर बैठकर महारानीने वनकी ओर प्रस्थान किया।

मनके भाव छिपाये नहीं छिपते। वे किसी न किसी प्रकार प्रकट हो ही जाते हैं। लक्ष्मणके जिम्मे जो काम सौंपा गया था वह बड़ा ही क्रूर और नृशंस था। लक्ष्मणसे ज्ञानवान पुरुषके लिये ऐसा काम करना कदापि उचित न था। परंतु बड़े भाई—पिताके समान बड़े भाई—की आज्ञा और दूसरे प्रकृतिरञ्जन, न कैसे करते?

ज्यों ज्यों वन समीप आने लगा त्यों त्यों विवश हो उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उच्छ्वासके मारे व्याकुल हो वे अधीर हो रोने लगे। जानकीने कभी ऐसा दृश्य नहीं देखा था,

अतः वे पूछने लगीं—लक्ष्मण, सत्य कहो, बात क्या है ? राजाका कुछ अनिष्ट तो नहीं हुआ ? आज तुम्हारे चित्तकी अवस्था ऐसी क्यों है ? क्या तुमसे कुछ अनुचित हुआ है ? यह सुनकर अधीर हो रोते रोते वे बोले—"माता, एक धोबीके कठोर वचन कहनेपर प्रकृतिरञ्जनके लिये भाईने आपका परित्याग किया है !"

इतनेमें वे गङ्गापार पहुंच चुके थे। रथसे महारानी उतरकर भूमिपर जा बैठीं, रोने लगीं। लक्ष्मण शोकमें अन्धे हो रहे थे। रोदनका अपूर्व दृश्य था ! इसपर महारानीने जो तर्क किया उसका उत्तर न लक्ष्मण ही दे सके न मर्य्यादापुरुषोत्तमने ही भेजा। महारानीने कहा—"हे लक्ष्मण ! मेरी ओरसे तुम राजा रामचन्द्रसे कहना कि आंखोंके सामने अग्निमें शुद्ध प्रमाणित हुई मुझे लोकापवाद सुनकर ही जो उन्होंने परित्याग कर गर्भिणी-की अवस्थामें वनमें छोड़ा क्या यही उस शिक्षित एवं जगत्प्रसिद्ध कुलके योग्य कार्य्य है ?"

लक्ष्मण लौट आये, जानकीके कहे हुए उन वाक्योंको राजा रामचन्द्रजीसे कह सुनाया। वे निरुत्तर हो यथार्थमें जानकीकी वियोगाग्निसे भीतर ही भीतर जला किये। केवल मुखपर तेजः-पुञ्ज था कि प्रकृतिरञ्जनके लिये मैंने सर्वस्व त्याग किया, पर शरीर पीला और दुर्बल होने लगा। वे सब बातोंमें निरानन्द रहा करते और जानकीकी वह अवस्था उन्हें भूलती नहीं थी।

लक्ष्मणके लौटनेपर महारानी मूर्च्छित पड़ी रहीं। निरवलम्ब बेचारी कहां जाय ? इतनेमें वाल्मीकि मुनि भ्रमण करते वहीं आ

निकले और इन्हें अनाथकी अवस्थामें देखकर उनका हृदय दयासे पिघल गया। जब पूछकर उनका परिचय पाया तो उन्होंने इन्हें लेकर आश्रमकी ओर प्रस्थान किया। वह समीप ही था, इसलिये पहुंचनेमें देर न लगी। ऋषिकन्या तथा ऋषिपत्नियोंने उनकी अवस्थापर सहानुभूति प्रकट की।

वाल्मीकि मुनिके आश्रममें रहते जब कुछ समय बीता और गर्भका समय पूरा हुआ तो जानकी महारानीने दो पुत्र एक साथ प्रसव किये। वे दोनों जातकर्म व नामकरणके उपरान्त लव-कुश नामसे पुकारे जाने लगे। इन दोनों भाइयोंने बहुत थोड़े समयमें वाल्मीकि मुनिसे सब शास्त्रोंको पढ़ा और उनकी बनाई हुई रामायणको वीणा लेकर खूब गाते थे जिससे आश्रमवासी लोगोंका तो कहना ही क्या था, सारे पशु-पक्षीतक भी मुग्ध हो जाते थे।

महारानी जानकीके समान इस समय संसारमें कोई भी दुःखी व्यक्ति न होगा। इनके दुःखकी अवधि नहीं थी इसीलिये वह समुद्र तथा पर्वतसे भी बढ़कर था। पतिदेवके चरणोंकी सेवाका सौभाग्य उन्हें प्राप्त होगा यह अब आशाके परेकी बात थी। इतना ही नहीं; उनके चरणोंके एक वार दर्शन भी होंगे और वे अपने नेत्रोंको तृप्त करेंगी—इसकी भी सम्भावना नहीं थी; क्योंकि राजा रामचन्द्रने उनका एकदम परित्याग कर दिया था। ऐसे दुःखके दिन महारानीके कैसे कटते यदि उन्हें लव-कुश सरीखे दो पुत्र न होते? ये पुत्र अपनी रूप-सम्पत्तिसे रामचन्द्रजीके

समान थे और उनके सारे गुण इनमें स्वभावतः वर्त्तमान थे। इन्हीं बच्चोंका संयोग इस घोर दुःखके समुद्रमें महारानीके लिये बेड़ा बन गया जिसके सहारे वे अपनी जीवनयात्रा पूर्ण कर सकीं।

कैसी कड़ी परीक्षामें राजा रामचन्द्र, महारानी जानकी और लक्ष्मण उत्तीर्ण हुए इसे सहृदय पाठक सोच-समझ सकते हैं। प्रकृतिरञ्जनके लिये जानकीसी पतिव्रताका त्याग करना जिनकी शुद्धि अग्नि द्वारा प्रमाणित हो चुकी है—सिवा राजा रामचन्द्रके दूसरेसे होना असम्भव था। माताके समान बड़ी भौजाईको गर्भकी हालतमें भाईके कहनेसे वनमें छोड़ आना ऐसा नृशंस कर्म सौभ्रात्रके खयालसे सिवा लक्ष्मणके दूसरेसे कदापि नहीं हो सकता। पतिसे परित्यक्त हो दुःखसागरमें डूबी हुई महारानी जानकीने उनके प्रति पातिव्रतोचित ही भाव रक्खे—यह दूसरी स्त्रीके लिये मुमकिन नहीं था। यह भारतीय जीवन है; यहां ऐसी ही बातें देखी सुनी जाती हैं।

महारानी जानकीके वियोगमें यद्यपि राजा रामचन्द्र प्रकृति-रञ्जन करते थे पर चित्त बड़ा ही उदास,निराशापूर्ण और निरानन्द रहा करता था। उन्होंने धन तथा वीरताका परिचायक अश्वमेध यज्ञ किया। लंकाके युद्धमें जिन लोगोंने साथ दिया था वे ही इस वार भी अश्वके साथ २ थे। इसके मस्तकपर एक पट्ट बंधा था जिसमें ईर्ष्याके उत्पादक और वीरताके परिचायक वाक्य थे। इन वाक्योंको पढ़कर क्षत्रिय लोग उसी हालतमें

घोड़ेको नहीं पकड़ते थे जबकि अपनेको कमजोर और अशक्त समझते थे। घोड़ा अपनी इच्छाके अनुसार चलता था। जाते २ वह वाल्मीकिके आश्रममें पहुंचा। लवने जिनकी अवस्था किशोर थी उस पट्टके वाक्योंको पढ़ा, यद्यपि मुनि बालकोंके साथ वे बालकोचित खेल खेल रहे थे। पढ़कर ही उनका क्षत्रियत्व प्रोत्साहित हो उठा। उन्होंने बालकोंसे कहा—"अजी, ढेलोंसे मारकर इस घोड़ेको आश्रममें ले चलो, यह बेचारा भी मृगोंके बीचमें रहकर चरा करेगा। मेरे भैया कुश इसपर सवारी करेंगे।" इसपर बालकोंने "उसके पीछे बड़ी सेना है"—इस बातकी विभीषिका दिखलायी। भला लव विभीषिका क्या जानें? वे महारानी जानकी और राजा रामचन्द्रके पुत्र थे जिन्होंने जनक राजाके यहां धनुषको उठाया और तोड़ा था। ऐसे पराक्रमी माता-पिताके पुत्रका बलवान् होना स्वाभाविक है। यही कारण था कि वे निडर होकर ढेलेसे मारते हुए उस घोडेको आश्रममें ले आये।

अब युद्धकी बारी आयी। पर सारी सेनाको लवने जब मूर्च्छित कर डाला तो लक्ष्मणके पुत्र चन्द्रकेतुने उन्हें मूर्च्छित किया और रथपर लादकर ले चले। यह वार्त्ता कुशके कानमें पड़ी। वे तुरन्त रणभूमिमें आये और विकट वाणावली करके अपनी स्फूर्त्ति दिखला लवको छुड़ा ले गये।

कहते हैं कि इस युद्धमें भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न सबोंने हार खायी थी और साक्षात् रामचन्द्र भी लड़े थे। हनुमान, अंगद,

विभीषण,—ये सब आश्रममें बंधे पड़े थे। महारानीने इन लोगोंको पहचानकर छुड़वा दिया। अन्तमें बच्चोंको फुसलाकर घोड़ा भी दिलवा दिया।

जहां अश्वमेधशाला थी वहां वाल्मीकि मुनि अपने दोनों शिष्यों लव-कुशके साथ उपस्थित मुनिमण्डलीमें पहुंचे। इन दोनों शिष्योंने वीणापर जो रामायणका गान किया उसे सुन सारी अश्वमेधशाला मुग्ध हो गयी। जिस समय महारानी जानकीके परित्यागका प्रसङ्ग गानमें आया उस समय महाराज रामचन्द्रके नेत्र भी आंसुओंसे डबडबा गये। उन्हें निरपराध जानकीका त्याग उस समय बहुत ही दुःख देने लगा। उन्होंने कहा कि यदि इस यज्ञशालामें सारी जनताके समक्ष जानकी अपनी शुद्धि प्रमाणित करे तो मैं अंगीकार कर सकता हूं।

अब शिष्यके साथ महारानी जानकीने प्रवेश किया। उनका शरीर दुबलाकर कांटा हो गया था। सिर्फ चाम और हाड़ ही दिखाई देते थे। मस्तक लम्बी २ जटाओंसे परिवेष्टित था। महारानी चीर वल्कल पहने जिस समय वहां आयीं, एक बार सन्नाटा छा गया। अपनी शुद्धिके साबित करनेके लिये कहे जानेपर महारानीने कहा—"यदि मैंने आर्यपुत्रसे भिन्न मनुष्यकी कभी चिन्तनातक न की हो तो भूतधात्री देवी मुझे अपनेमें स्थान देकर अंगीकार करें।"

यद्यपि राजा रामचन्द्रने अपना विवाह नहीं किया था, पर यज्ञमें अर्द्धाङ्गिनीकी स्वर्णमयी प्रतिमा रखी थी; क्योंकि बिना

अर्द्धाङ्गिनीके यह सम्पन्न नहीं हो सकता था। उस प्रतिमाको देखकर महारानीके हृदयमें जलन हो उठी थी। यही कारण था कि उन्हें जीवन बोझ जान पड़ता था।

उनके यह कहते ही आश्चर्यकी घटना हुई। पृथ्वी फटी और काञ्चन सिंहासन नागकी फणपर रखा हुआ निकला। उसीपर बैठकर उन्होंने पातालमें प्रवेश किया। वाल्मीकिके कहनेसे लव-कुशको रामचन्द्रजीने ले लिया। यज्ञ विसर्जन कर रामचन्द्रने अपने पुत्रों और भतीजोंको राज्य दे सब भाइयोंके साथ सरयूमें अपनेको गोता मार विलीन कर डाला और साकेतवासी हुए।

वाचकवृन्द! एक रामचरितसे ही अनेक गुण एकत्रित किये जा सकते हैं, यदि कोई तत्वान्वेषी उक्त चरितमें उनका अन्वेषण करे। राजा दशरथने जो मित्रभाव रोमपाद राजाके प्रति दिखलाया शायदही कोई दिखलाता हो। राजा रोमपादके कोई सन्तति नहीं थी पर उनके प्रिय मित्र राजा दशरथको शान्ता नामक कन्या थी। राजाने सोचा कि मैं सन्ततिवाला हूं और मेरे मित्र रोमपाद बेसन्ततिके हैं यह ठीक नहीं। मुझे उचित है कि मैं अपनी कन्या उन्हें दे दूं। यह विचार कार्य्यमें परिणत कर दोनों मित्र आपसमें सन्ततिवाले हुए। सहानुभूति और समवेदनाका सच्चा उदाहरण इससे भी बढ़कर होगा? क्या कोई भी सभ्य देश इससे बढ़कर तो क्या, इसकी समतामें एक भी उदाहरण दे सकता है?

स्त्री-पुरुषका ज्ञान होना, खासकर बहुत ही छोटी अवस्थामें

जिस समय एकाग्र मनसे उत्तमोत्तम गुणोंका उपार्जन होता है, क्योंकि उसके लिये बालकोंको अभ्यास दिलाया जाता है, एक स्वाभाविक बात है, परन्तु ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती है त्यों त्यों बालकका एकाग्र मन स्त्री-जातिकी ओर अनुरक्त होता जाता है। इसी अनुरक्तिका परिणाम उपनयनके उपरान्त विवाह है जिसे सम्पन्न कर भारतीय गृहस्थाश्रममें सहर्ष प्रवेश करते हैं। पर यदि स्त्री-पुरुषका ज्ञान न हो तो बालक और भी समधिक गुणोंका उपार्ज्जन कर सकता है, क्योंकि मस्तिष्क एक ओरके सिवा दूसरी ओर आकृष्ट नहीं होगा।

ऋष्यश्टङ्ग महात्मा विभाण्डकके पुत्र थे और वे इकलौते पुत्र थे। उनके जीवन—सादे जीवनकी ओर दृष्टि डालिये और देखिये कि उसमें कितनी सादगी और सिधाई भरी पड़ी है। इससे बढ़कर सादगी व सिधाई और क्या हो सकती है कि वेश्याएं—सुसज्जित वेश्याएं बड़ी बड़ी नौकाओंपर कृत्रिम पुष्प-वाटिकाएं लगाकर आश्रम-फलोंके स्थानमें शहरकी अपूर्व बनी हुई मिठाइयोंको लेकर उन महात्माके आश्रममें गयीं और उन्हें फुसलाकर रोमपाद राजाके राज्यमें ले आयीं जिनके प्रतापसे खूब वृष्टि हुई। जब विभाण्डकजी पहुंचे तो उनका सत्कार कर अपनी कन्या-तुल्य शान्ताका ऋष्यशृङ्गके साथ विवाह कर दिया।

ऐसा सादगीका नमूना क्या किसी भी देशमें देखा गया है? पाश्चात्य जगत इसे निरा जंगलीपन कह डालेगा। पर टर

असल यह सादगी है या जंगलीपन, अथवा ब्रह्मचर्य्यरक्षाका एक मुख्य उपाय है—इसे सहृदय भलीभांति समझ लें। मुझे शोकके साथ लिखना पड़ता है कि एक वह समय था जब ऐसे ब्रह्मचारी थे और एक आज समय है कि सिवा स्त्री-लोलुपोंके ब्रह्मचारी कठिनतासे मिलते हैं। ब्रह्मचर्य्यका आदर्श पाश्चात्य सभ्यतामें पड़कर इतना गिर गया है कि लोगोंके चेहरेपर कान्ति, शरीरमें बल, हृदयमें उत्साह बिलकुल गायब है।

लोग ऐसे सत्यवादी थे कि किसीकी भी कही हुई बातको एकदम सच्ची समझ लेते थे। तभी तो ऋष्यश्रृङ्गको वेश्याएं आश्रमके बहाने राजाके राज्यमें ले आयीं। सत्यका स्थान भारतीय जीवनमें कितना ऊंचा है इसकी पुष्टिमें राजा हरिश्चन्द्र और नलके चरित जिनका हवाला पहले दिया जा चुका है काफी हैं।

गुरुजनोंके आज्ञा-पालनका जीता-जागता उदाहरण यदि ढूंढ़ा जाय तो सिवा भारतीय जीवनके अन्यत्र मिलना मुश्किल है। यह बात शायद मर्यादापुरुषोत्तमके लिये कही जा सकती है कि जो मिलते हुए राज्यका परित्याग कर सौतेली माके कहनेसे चौदह वर्षोंके लिये जंगलमें जाकर रहे और नाना प्रकारकी असुविधाओंका सामना किया। पिताकी आज्ञा थी कि 'राम !' तुम कल राज्य पाते हो; आज ही अनायास तुम्हारी सौतेली मा कैकेयी मेरे पूर्वप्रदत्त दो वरोंको मुझसे मांगती है जिनमें एकसे अपने पुत्र भरतका राज्य और दूसरेसे तुम्हारा चौदह वर्ष वनवास; तुम राजाकी हैसियतसे हमें कैद करो और राज्य भोगो।' पर

रामचन्द्रने किया क्या ? ठीक इसका उलटा, क्योंकि वे मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। पिताको कैद कर राज्य लेनेवाले भारतके इतिहास-में शाहजहां और औरङ्गजेब हैं; यों जहांगीरने भी राज्यके लिये अकबरके विरुद्ध बलवा उठाया था।

भाई भाईके झगड़ोंके उदाहरणोंसे जगत्‌का इतिहास कलंकित है, पर भाई भाईके प्रेमकी बात, सो भी सहोदर नहीं, सौतेले—यहीं पायी जाती है। रामके वियोगमें भरतका अपने सुखोंको तिलांजलि देना और रात-दिन रोया करना एक ऐसी हृदयविदारक घटना है जिसे स्मरण कर सहृदय आंसू बहाते हैं। राज्यसुखोंका परित्याग कर भाईके साथ चौदह वर्षोंतक वनमें सेवक रूपसे रहना यह लक्ष्मणका ही काम था। क्या इससे भी बढ़कर सौभ्रात्रका उदाहरण दूसरा होगा ? कदापि नहीं !

प्रजाओंकी प्रीति—सच्ची प्रीतिके लिये जगत्‌के राजा लोग इतनी स्पृहा रखते हैं कि उन्हें दूसरी कामना उतनी शायद ही होती हो। यह बात दूसरी है कि वे अपनेको अधिकाधिक समृद्धिशाली देखना चाहते हैं। पर क्या ऐसा भी कोई राजा दुनियाके पर्देपर होगा जिसने प्रकृतिरञ्जनके लिये अपनी पतिव्रता सहधर्मिणीका परित्याग किया हो ? एक भी नहीं। यह बात भी हमारे मर्यादापुरुषोत्तमके ही लिये विधाताने रख छोड़ी थी, किसी दूसरेके लिये नहीं !

अपनी २ सहधर्मिणीके पातिव्रत्यपर जगत्‌के सभी लोग साभिमान रहते हैं। यदि स्त्री नेकचलन है तो उसका सर्वत्र

आदर है अन्यथा वह अपने पतिसे परित्यक्त होती है, तिरस्कृत होती है। पाश्चात्य देशोंमें परित्याग, तिरस्कार (Divorce) तक है; पर इससे समाजमें उस स्त्रीका स्थान ज्योंका त्यों रहता है। इसका कारण वहांकी धनसम्पत्ति है। समाजमें समुन्नत स्थान पाना धनसम्पत्तिकी वृद्धिके ऊपर निर्भर है। भारतीय जीवनमें सो बात नहीं। यहां पति स्त्रीके लिये देवता है, वह उसके शरीरपर अपना अधिकार रखता है। दोनोंके दो शरीर कहनेके लिये होते हैं, पर हृदय एक ही होता है। रोज़ी-रोज़गार, वणिज-व्यापार, खरीद्-बिक्री, लेन-देन—सब कामोंमें अर्द्धाङ्गिनी अपनी राय, सत्परामर्श देती है। वास्तवमें वह गृहलक्ष्मी है। उसके बिना घर सूना है। सभी बातें उसके अभावमें निरानन्द जान पड़ती हैं। राजा रामचन्द्रने यद्यपि एक धोबीके रञ्जनके लिये महारानी जानकीका परित्याग किया पर आप उन्हें निर्दोष जानकर दिनोंदिन पीले पड़ने लगे, अस्थिचर्मावशिष्ट रह गये। महारानी जानकीने रावणद्वारा हरी जानेपर लङ्कामें उपस्थित किये गये अनेकानेक प्रलोभनोंसे अपनी मर्य्यादाकी रक्षा की और उन्हें तुच्छ माना; यही नहीं बल्कि प्रतापशाली रावण जिस समय अपनी रानियों और परिचारिकाओंके साथ महारानीको मनानेके लिये आता और उन्हें अपने विभव, अपनी सम्पत्तिकी मालकिनी होनेको कहता उसी समय ऐसे २ वचनोंसे—युक्तियुक्त वचनोंसे उसकी नीचता साबित करतीं कि वह थर्रा जाता और क्रोधमें भर जाता। क्या इतना पातिव्रत्य कहीं भी किसी स्त्रीमें संभव

है ? यदि है तो इसी भारतीय जीवनमें। पतिव्रताओंके चरित्र जो इस जीवनमें दृष्टिगोचर होते हैं वे और जीवनमें नहीं। सती, सावित्री आदिके अनुकरणीय चरित्र आज भी बड़ी आदरभरी दृष्टिसे देखे जाते हैं।

पतिदेवकी आज्ञाकारिणी और छायाके समान उनका अनुसरण करनेवाली बनना सभी स्त्रियां चाहती हैं, क्योंकि इससे उनकी कीर्त्तिकी वृद्धि होती है। पर यथार्थमें कितनी औरतोंने ऐसा किया है ? बग़ैर कठिन समयके जांच करना कठिन ही नहीं असम्भव है। रामचन्द्रका वन जाना और लक्ष्मणका उनके साथ ही लेना यह कौशल्या और सुमित्रा दोनों महारानियोंके लिये ऐसी बात है कि वे अपने पति दशरथराजका तिरस्कार—घोर तिरस्कार कर सकती थीं; पर किया क्या ? उनके वन जानेपर राजाके पास बैठे उनका समाश्वासन करने लगीं, उन्हें ढाढ़स बंधाने लगीं, उन्हें सब प्रकारसे सन्तुष्ट करने लगीं।

ऐसा कोई विरला राजा होगा जो अपनी शासनप्रणालीसे प्रकृतिरंजन करनेकी इच्छा न रखता हो। पर क्या कोई ऐसा भी है जिसने राम-राज्यके समान प्रजाओंके प्रसन्न करनेमें सुख्याति पायी हो ? राम-राज्यमें मरे हुए ब्राह्मणके पुत्रका जीवन-प्रदान और संन्यासीसे मार खाकर एक कुत्तेका अपनी फर्याद सुनाकर न्याय पाना बड़ी ही विचित्र घटनायें हैं जिनकी वजहसे राजा द्वारा दिये गये थोड़ेसे सुखके लिये भी लोग उसके राज्यकी समता रामराज्यसे करते हैं।

अनाथोंकी सेवा और इन्द्रिय-विकल लोगोंकी हालतें—हृदयको दयार्द्र करनेवाली हालतें—हा! भारतीय जीवनमें किसका चित्त नहीं आकर्षित करती थीं! भिन्न भिन्न अनाथालय और चिकित्सालय जो देशसेवा करते थे उनका नमूना यहीं था, अन्यत्र नहीं।

जो सम्पत्ति इस देशमें थी, जो व्यापार यहां था, जो कला-कौशल यहां था उसकी सुख्यातिने ही विदेशियोंको इस भारत-भूमिके लिये लालायित किया, वह ही उन्हें हज़ारों कोससे घर छोड़वाकर यहां लायी कि आज इस देशमें उनका अखण्ड अधिकार है और वे अपनी इच्छायें सफल करके मौजें उड़ाते हैं, रंगरलियां मनाते हैं।

इस समय पाश्चात्य संसार अपने कला-कौशलोंपर, अपने नये नये आविष्कारों, रासायनिक प्रक्रियाओं, विज्ञानवेत्ताओंपर जो घमण्ड करता है, सो ठीक है; क्योंकि आधुनिक भारतीय जीवन गुलामीका जीवन है। इस जीवनमें किसी भी व्यक्तिको शक्तिशाली होनेके साधनोंका आविष्कार करते नहीं पा सकते, क्योंकि इसकी शासनप्रणालीमें कानूनन सख्त मुमानियत है; कला-कौशलोंके द्वारा यथार्थ उन्नति करते हुए व्यक्तिके मार्गमें भी कानून बाधा डालते हैं। आधुनिक जीवनको कानूनोंसे विदेशियोंने जकड़ डाला है। हां, यदि प्राचीन भारतीय जीवनसे पाश्चात्य संसार अपनी तुलना करे तोभी उसने उतनी उन्नति नहीं की जिसपर उसे गरूर है!

आजकल पाश्चात्य संसार जो काम शत्रुओंके नाशके लिये करता है और आग, बारूदके संयोगसे बड़े बड़े गोले फेंकता है वह शारीरिक बलका कदापि परिचायक नहीं। हां, यह बात दूसरी है कि विलासितामें गर्क मनुष्योंके शरीरमें बल नहीं रहता इसीलिये ऐसे उपकरण तैयार किये गये। परन्तु हमारे प्राचीन भारतीय जीवनमें जिस बाणावलीसे वीरोंने काम लिया है वहांतक तो अभी उक्त जगत् पहुंचा ही नहीं है।

शास्त्रविद्या, शस्त्रविद्या, जीवविद्या, वनस्पतिविद्या, योग-विद्या एवं और और प्रकारकी विद्याओंके जाननेवाले इस भारतमें एक नहीं अनेक थे; और योगविद्याके जाननेवाले तो आधुनिक समयमें भी वर्त्तमान हैं जिनपर पाश्चात्य सभ्यताने अपनी घोर घमण्डवाली दशामें भी हार खायी है। वह सभ्यता योगकी शक्तिपर अवाक् हो रही है। उसे लज्जित होकर अपनेको अधूरी मानना पड़ रहा है; या यों कहिये कि आध्यात्मिक शक्ति क्या वस्तु है इसके जाननेमें वह अन्धकारमें है। लाख टटोलती है कि योगविद्याकी प्राप्ति हो, पर तामस भोजनवाले राक्षस-प्रकृतिके लोगोंको वह नसीब कहां?

बालकोंकी शिक्षाका सुदृढ़ व सुसंगठित प्रबन्ध जो भारतीय जीवनमें था वह इतना विख्यात था कि विदेशी लोग आ आकर यहांकी शिक्षासे लाभ उठाते थे। यहांकी धन-सम्पत्ति इतनी बढ़ी चढ़ी थी और इस समय भी अनन्त भूगर्भमें है जिसकी वजहसे विदेशी लोग भारतमें मंडराया करते हैं। यहांका धर्म

शान्तिमय अहिंसा सिखाता है। यहांकी वीरता सच्ची वीरताकी शिक्षा देती है। यहां बनावटका नाम नहीं। अपनी सब प्रकारकी सचाई, सादगीके कारण यहांके लोग ईश्वरतकसे परिचित थे व हैं।

पर अभाग्य किसीको भी नहीं छोड़ता, क्योंकि अधःपतन सभीका होता है; यही कारण है कि सृष्टि क्षणभङ्गुर कही जाती है। जब भाग्योदय होता है उस वक्त सब तरहसे उन्नति ही उन्नति होती है, और जब अभाग्य आता है तब अवनति होते होते अधःपतन होता है और वह यहांतक होता है कि नामोनिशानतक मिट जाता है। उदाहरणके लिये सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुको लीजिये, उसकी उत्पत्ति, उसका विकास, उसकी पूर्णता, उसकी अवनति एवं उसका विनाश भलीभांति निरीक्षण कर देखिये।

इस स्थानपर प्रत्येक वस्तुकी सृष्टि,विकास और विनाशका वर्णन उदाहरण सहित मैं कर सकता था, पर पुस्तक बहुत बढ़ जायगी इसलिये सूक्ष्म रीतिसे ही दिग्दर्शन करा दिया है; सहृदय लोग भलीभांति इसका मनन कर सकते हैं और तत्वका पता लगा सकते हैं।

इसी अभाग्यने भारतको भी नहीं छोड़ा। वह उसको निगल गया है और हजम करना चाहता है, पर उसमें कुछ ऐसी अलौकिक शक्ति है जिसकी वजहसे अभाग्य भी घबड़ाता है, कहता है कि परमात्मन्! कौनसी बुरी चीज मैंने निगली जो मेरे हजम

किये हजम नहीं होती ? वह वस्तु मेरी आन्तोंको रौंदती हुई पेटके अन्दर घूम रही है ! हा ! मैं एक बड़े अजदहेके मानिन्द हूं और सबको निगलकर अपनी तृप्ति सम्पन्न करता हूं, पर यह चीज हजम होनेके बदले मुझे बीमार डाल देगी । आह ! अब सिवा बमन करनेके कोई चारा नहीं ! खैर, कै किये डालता हूं !!!

यद्यपि भारत अभाग्यके मुंहसे निकल आया है पर वह उदास है ! अजदहेके पेटकी गर्मीने उसे बदहवास बना दिया है ! शरीर लालासे लिप्त है ! यदि कोई महात्मा अपने कमण्डलुके जलसे इसका सेक करें तब यह अपनी बदहोशीका परित्याग कर सकता है ।

उपाय सब बातोंका है । ऐसी कोई बीमारी नहीं जिसकी दवा न हो । ऐसा कोई काम नहीं जिसकी सिद्धिके लिये उद्यम निर्दिष्ट न हो । पर कमी है ढूंढ़नेवालेकी । यदि सच्चा उद्यमी हो तो असम्भवको सम्भव कर दिखा सकता है, असिद्धको सिद्ध कर सकता है ।

ऐसे महात्माओंकी इस भूमिपर कमी नहीं जिनके हृदयमें उपकार करनेकी उदारता वर्त्तमान है । भारतभूमि उपकार-के लिये सुविख्यात है । इसके उपकारकी शोहरत कहां नहीं है ? पर अभी तो अभाग्यने इसे निकाला है, निगलकर उगला है । दैवसंयोगसे एक सच्चे, स्वार्थत्यागी, जीवमात्रपर अक्षुण्ण दया दिखानेवाले महात्माने जिन्होंने अहिंसाव्रतका उपदेश किया है, इसे असहयोग जलसे सर्वांग सिक्त किया है, जिस

सेकके कारण यह आंखें खोल उठ बैठा है और अपनेको संगठन द्वारा, कला-कौशल द्वारा उन्नत कर रहा है।

यद्यपि सारा भारत अभी इस उद्धार-कार्य्यमें नहीं लगा है, तोभी जहांतक वह लगा है उससे भविष्य प्रकाशमय जान पड़ता है। यह उज्ज्वल भविष्य प्रतिदिन बहुत सन्निकट जान पड़ता है जब यह देखनेमें आता है कि जो भारतीय सब बातमें विलायती कला-कौशलों द्वारा सम्पन्न किये गये उपकरण काममें लाते थे वे इन दिनों अपने देशके बने उपकरण काममें ला रहे हैं। भारतीय खाद्यके साथ वे भारतीय वस्त्र भी व्यवहार कर रहे हैं। कुछ लोगोंने तो यहांतक प्रण किया है कि अपनी कमरका एक पैसा भी खरच करना पड़ेगा तो उसे देशकी वस्तु खरीदनेमें, देशके श्रमजीवीको देनेमें करेंगे। यह प्रतिज्ञा बहुत अच्छी है। इसके अनुसार कार्य्य करनेसे देशका उद्धार भलीभांति सम्पन्न होगा।

अभाग्यका मुख्य कारण आपसकी एकताका अभाव, सहानुभूति एवं समवेदनाका अभाव है जिनके बिना कोई भी समुदय प्राप्त देश गिर सका, पददलित हुआ और अपनी सत्तातक खो बैठा; क्योंकि पाश्चात्य जातियां अपनी धाक बांधकर विजित अथवा अधिकृत देशकी जमीनतक खोदकर अपने यहां ढो ले जानेकी चेष्टामें लगी रहती हैं। इसपर भी ज़रासी चमक मटक देखकर प्रलोभनमें पड़ जब यहांके रहनेवाले अपने देशकी उन्नतिको तिलाञ्जलि देनेकी इच्छासे अपने यहांकी बनी एक भी वस्तु न

अपनाने लगे तो विदेशियोंका व्यापार बढ़ा और इस देशको उनके ऊपर भरोसा करना पड़ा। फिर तो वस्तुओंका मनमाना दाम बढ़ाकर, हा! भारतका पैसा निचोड़ा गया और वह यहांतक विदेश गया कि भारत उस रोगीकी समता करने लगा जिसके शरीरमें रक्तका लेश न हो और चरकसा सुफेद पड़ गया हो।

अभाग्यका परिणाम इतना ही भोगकर उस दीन-हीन भारतको निश्चिन्त होना पड़ा हो सो बात नहीं। विदेशियोंके प्रबल अधिकारने इस देशको दबाना शुरू किया और यहांतक दबाया कि ज़रा ज़रासी बातोंमें गोलियां चलीं और निहत्थे भारतीय मार डाले गये। इसका एक विचित्र दृश्य पंजाबमें जलियांवाला बाग है जहां अभी भी कई हजार मनुष्य गोलियोंके शिकार हुए।

महात्मा गांधीने जिस असहयोगका प्रयोग बताया है उसका तात्पर्य्य यह है कि सारे भारतीय ऐसे शासनसे असहयोग करें अर्थात् अलग हो जायं; क्योंकि भारतीयोंके सहयोगसे ही शासनका सारा काम चलता है। महात्माजीने बात बहुत ठीक बतायी और ऐसी बतायी कि जिसके द्वारा बहुत शीघ्र स्वतन्त्रताका सूत्रपात हो। सरकारी न्यायालयोंमें अन्याय और अपरिमित व्यय होते देख उन्होंने भारतीयोंके प्रति पञ्चायत-प्रथाका उपदेश दिया। इसके द्वारा अहम्मन्य होकर रोबके साथ शासन करनेवालोंके हाथ पैर ढीले किये। विदेशी वस्त्र आदि उपकरणोंका जिनके बिना जीवन-यात्राका चलना कठिन हो जाता है, परित्याग करना भारतकी कलाओंके संजीवनका मुख्य उपाय जान आपने

विदेशी वस्तुका परित्याग और स्वदेशी वस्तुका स्वीकार अनिवार्य्य बताया। इस प्रकार विदेशी व्यापार और शासनकी नींव हिला दी। सरकारी मुलाजिमोंको अपनी नौकरियां छोड़नेके लिये उन्होंने उपदेश दिया। इस काममें स्वार्थी भारतीय टससे मस नहीं हुए। हां, कुछ जिलोंके पुलिसवाले किन्हीं नौकरियां छोड़नेको तैयार थे और उनकी इस बातसे पुलिस अफसरोंके छक्के छूटने लगे थे, पर बहुत थोड़ी संख्यामें नौकरियां छोड़ी गयीं, इसलिये उन्हें अपमान सहना पड़ा। सम्मानार्थ शासनप्रदत्त उपाधियोंके लौटानेकी बात भी उन्होंने बतायी पर इसे भी बहुत थोड़े लोगोंने किया। यद्यपि भारत बहुतसे मजहबोंका इस समय प्रदर्शन हो रहा है पर इसकी उन्नतिमें सबोंका पूर्ण रीतिसे योग हो इसके लिये महात्माने भारतके हिन्दू-मुसलमान-ईसाई सबोंको एक होनेका उपदेश दिया, जो कुछ अंशतक पूरा उतरा पर पूर्णतया नहीं। इस प्रकार महात्माजीका असहयोग-अस्त्र एक अमोघ अस्त्र कहा जा सकता है जिसकी सफलताके विषयमें कोई सन्देह नहीं हो सकता, पर हां, काम करनेवालोंकी ही कमी है।

स्वतंत्रताका मुख्य साधन महात्माजीने प्रस्तुत कर दिया इसमें कोई सन्देह नहीं। एकमात्र क्षमा और अहिंसाव्रतके उपदेशसे महात्माजीने कामोंके अग्रसर करनेमें जरा भी रुकावट न डाली, अन्यथा कार्य्योंकी प्रगति रुक सकती थी। महात्माजीका मतलब संगठनके उपरान्त सत्याग्रहसे है जिसके बिना

कोई भी पददलित देश उठ नहीं सकता अर्थात् क्षमा और अहिंसाके साथ सत्याग्रह करनेसे कामको सफलता आपसे आप कार्य्यकारीके अङ्कमें आ जाती है।

महात्माजीकी बातोंका प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। इसका मुख्य कारण देशकी महंगी है। महंगीके कारण आज दिन ऐसे लोगोंकी कमी नहीं जिन्हें मुश्किलसे एक सन्ध्या भोजन मिलता है। यह महंगी उस समय बड़ा ही विकट रूप धारण करती है जब सरकारी खरीद होती है। खरीदनेकी मुद्रायें कागज हैं जिनके खर्च करनेमें ज़रा भी हिचक नहीं रहती; क्योंकि उनका निर्माण करनेवाला और खरीदनेवाला एकही व्यक्ति है; फिर अन्यान्य देशोंमें खरीदी हुई वस्तुओंका विक्रयकर कागज़के बदले सोना मिलता है। इस प्रकार सुवर्णका मिलना कौन नहीं पसन्द करेगा! जिस सुवर्णके लिये लोग अनवरत परिश्रम किया करते हैं, जिसकी प्राप्तिके लिये अधिकांश लोग धर्मलक्षणोंपर लात मार देते हैं, कार्य्याकार्य्यका विचार जिसके कारण नहीं रहता वह यदि अपनी इच्छाके अनुसार एक वृहत् परिमाणमें प्राप्त हो जाय तो उसके लिये सभी हाथ फैलायंगे; 'कंचन, कामिनि, कुचनको किन न पसारयो हत्थ'।

कानूनोंका समधिक परिमाणमें बनाया जाना शासकोंके पक्षमें कहीं बढ़कर हितकर हुआ। कुछ थोड़ेसे कानून प्रजाओंके हितके लिये सिद्ध हुए। इस प्रकार कानूनोंकी जकड़बन्दीमें पड़कर प्रजाओंके हाथमें गुलामी करके मुट्ठीभर अन्न खाने और

अपने दिन काटनेके सिवा और कुछ न रह गया। कला-कौशलों-का प्रचार पहलेहीसे रोक दिया गया था इसलिये प्रजाकी हालत बिगड़ गयी थी। इसपर भी एक कानून जिसका नाम रौलट ऐक्ट था बना, जिसके अनुसार गिरफ्तार किये गये मनुष्यको न साक्षी देनेका अधिकार, न बहस करनेका अधिकार, न किसी प्रकार अपनी संरक्षा करनेका अधिकार रहा।

परमात्मा न करे कि कोई देश अभागे भारतके समान गुलाम हो! हा! जिस समय यह भीषण ऐक्ट बड़ी व्यवस्थापिका सभामें पेश था उस समय सारा भारत एक स्वरसे कहने लगा कि यह कानून बड़ा ही दोषी है, इसे कदापि दण्ड-विधानमें स्थान नहीं मिलना चाहिये, क्योंकि एकसे एक उत्पीड़न देनेवाले कानूनोंकी जब कमी नहीं है तो ऐसे कानूनकी जरूरत ही क्या, जिसके द्वारा प्रत्येक भारतीयकी जान खतरेमें रहे? जब इस प्रकार भारतमें खलबली मची और सब जगहोंसे एक ही आवाज इस दूषित कानूनके विषयमें गूंजी तब भी लोकमतका कुछ खयाल न कर जब शासकोंने इसे पास करना चाहा तो इस सङ्कटापन्न अवस्था-में महात्मा गांधी देशोद्धारके लिये निष्क्रिय प्रतिरोधका उपदेश करने लगे। यह काम सत्याग्रहके नामसे होने लगा। उस समयसे लेकर कई वार लोगोंने सत्याग्रह किया और इसकी बराबर विजय होती गयी।

पहले पहल सत्याग्रह कलकत्तेमें उस वक्त बड़े जोर-शोरसे हुआ था जब सम्राट्के पुत्र युवराजके रूपमें भारत देखने आये।

उनके आनेकी तिथिको हड़ताल मनानेका उपदेश स्वयंसेवक-दल प्रत्येक दिन देता था और खद्दर बेचनेका तो एक बहाना मात्र था। इस काममें भी शिक्षित समाजके नवयुवक, महिलायें और अधेड़ अवस्थाके लोग सम्मिलित हुए। क्षमा और अहिंसाके बलपर भारतीयोंने इस संग्राममें विजय-लाभ किया। जो कष्ट उन देशभक्तोंको झेलने पड़े वे असह्य थे। ये कष्ट नौकरशाहीकी ओरसे दिये गये थे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। इस काममें भी सहस्रों मनुष्य जेलके अतिथि हुए।

उसके बाद तो सारे भारतमें सत्याग्रहकी धूम मची। मादक वस्तुओंसे अपने देशबन्धुओंको बचानेके विचारसे जब नवयुवक जी-जानसे लगकर उपदेश देने लगे तो शासकोंको आबकारी विभागकी आयके घटनेका बड़ा भय हुआ। इसलिये वे धरना देनेवालोंको, मना करनेवालोंको पकड़वाकर जेलमें ठूंसने लगे। यह दृश्य बनारस, इलाहाबादमें खासकर और और और देशोंमें साधारणतः दिखाई देने लगा, पर सत्याग्रहियोंने इस बार भी क्षमा और अहिंसाके बलपर विजय प्राप्त की।

तीसरी बार नागपुरमें राष्ट्रीय झंडेके सम्मानके लिये सत्याग्रह हुआ। जहांपर अंग्रेज लोग रहते थे वहां उसके ले जानेकी मुमानियत थी। इसलिये करीब करीब समग्र भारतके लोगोंने इस सत्याग्रहमें योग दिया। दनादन लोग कृष्ण-भवनके अतिथि होने लगे। अधिकारी चाहते थे कि मेरी बात रहे और राष्ट्रीय झंडेकी सीमा निर्दिष्ट रहे, पर असहयोगी राष्ट्रीय

झंडेकी गति अप्रतिहत चाहते थे। इस बार भी हजारों स्वेच्छा-सेवकोंने असह्य कष्ट सहा। यद्यपि थोड़ी थोड़ी बातोंके लिये इस प्रकार कष्ट भोगना अच्छा नहीं, पर शासकोंको मालूम हो गया कि भारतीय कैसे और कहांतक कष्ट सहनेवाले हैं। खैर, सत्याग्रहियोंकी विजय हुई। उन्हें हुकुम लेकर जलूस निकालनेकी आज्ञा मिली और झंडा निर्दिष्ट सीमा पार कर गया।

ईसाई-संसार जितना हिन्दुओंको सीधा और अच्छा समझता है उतना मुसलमानोंको नहीं। हिन्दू लोग किसी भी ढंगसे जातिच्युत किये गये व्यक्तिको अपनानेमें अपनी पवित्रतामें बट्टा लगना समझते हैं और इसी कारण वे उस व्यक्तिका परित्याग कर डालते हैं। इस बातसे ईसाइयोंको बड़ा लाभ है। वे कुछ खिला-पिलाकर उसे ईसाई बना लेते हैं और हिन्दुओंकी तायदाद कम कर डालते हैं। परन्तु मुसलमानोंके साथ यह उद्यम लागू नहीं होता; वे झटपट कलमा पढ़ाकर उसे फिर अपने धर्म्ममें दीक्षित कर लेते हैं इस कारण ईसाइयोंकी मुसलमानोंके साथ कुछ चलती बनती नहीं।

हिन्दू-मुसलमानोंके मेलकी बाबत महात्माजीने उपदेश दिया था। इस बातसे बहुत ही लाभ होता जान पड़ता था पर अधिकांश मुसलमानोंने इससे अपना ज़ाती नफा उठाया और हिन्दुओंके साथ बड़ा भारी विश्वासघात किया। वे कहनेके लिये एक थे पर जहां किसी भी हिन्दूके मुसलमान करनेकी बात आ जाती चाहे उसकी अरुचि ही क्यों न हो, तो उस वक्त घोर

विश्वासघात करते। इसके एक नहीं अनेक प्रदर्शन हुए। पश्चिम भारतमें एक नहीं अनेक दंगे प्रायः सभी शहरोंमें हुए जिनमें मेरठ, मुलतान आदि शहरोंके दंगोंके नाम विशेष उलेख्य हैं, जहां हिन्दू-स्त्रियोंके जेवर अंग काट कर ले लिये गये। यों तो मुसलमानोंने अक्सर नादिरशाही मचायी पर मालाबारमें जो मोपलाओंका उपद्रव हुआ वह बड़ा ही रोमाञ्चकारी था। उपद्रवके समय इनने ललकार कर कहा-"ऐ काफिर हिन्दुओ! या तो इस्लाम कुबूल करो, या तलवारके सामने आओ।" लाचार इनने इस्लाम कुबूल किया, 'मरता क्या न करता'वाली कहावत चरितार्थ हुई। इतनेहीसे उनके हृदयमें सन्तोष नहीं हुआ। उनने बहुतसी हिन्दू-महिलाओंको अपनी भार्य्याओंका स्वरूपतक दिया! क्या इससे भी बढ़कर कोई विश्वासघात हो सकता है?

जब सरकारी रिपोर्ट निकली और कुछ नेताओंने उपद्रवके उपरान्त वहां जाकर पता लगाया तो ये बातें बिलकुल सही निकलीं; यों तो अफवाहको मुसलमान लोग झूठ बताते थे। जिस समय नेताओंके सामने हिन्दू-स्त्रियोंने अपनी दुःख-गाथा सुनायी उस समय वे रोने लगे। अब तो चारों ओरसे वहां एक मात्र यही आवाज गूंज उठी कि जो लोग जबर्दस्ती तलवारके जोरसे मुसलमान बनाये गये उन्हें शुद्ध किया जाय। फिर क्या था, महात्माजीने अछूतोंके उद्धारके लिये पहलेहीसे उपदेश दिया था, उसीके अनुसार ये विपद्ग्रस्त हिन्दू शुद्ध करके मिला लिये गये।

इस कार्य्यका प्रभाव बड़ा अद्भुत पड़ा। औरंगजेबके समय

इसी प्रकार तलवारके जोरसे सैकड़ों राजपूतोंके गांव मुसलमान बना डाले गये थे। यद्यपि वे तलवारके जोरसे कहनेको मुसलमान बनाये गये, पर उनका आचारव्यवहार ज्योंका त्यों बना रहा। केवल दो एक कुरीतियां—जैसे मुर्दोंका गाड़ना और ब्याहके अखीरमें काजीको कुछ दे देना—उनमें आ गयी थीं। इसमें भी मतलब था, जिसमें बादशाह यह न जाने कि ये नाम मात्रके मुसलमान हैं, आचार-विचार हिंदुओंकासा ही है। मालाबारी हिन्दुओंकी शुद्धिपर ये चुपचाप न बैठे। इन्होंने भी हिंदू-समाजसे अपनी शुद्धिकी बाबत कहा और ये शुद्ध किये गये।

दिन सभीके फिरते हैं। चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन, अवस्था सभीकी पलटती है। इसीका नाम क्रान्ति है; इसीका नाम परिवर्त्तन है। यह अनिवार्य्य है, इसकी गतिमें कोई बाधा नहीं डाल सकता, यह प्राकृतिक नियम है। इसी नियमके अनुसार आज हमारे वे भाई, जो सैकड़ों वर्ष पहले तलवारके जोरसे मुसलमान बनाये गये थे, शुद्ध हुए और बिरादरीने उन्हें अपनेमें मिला लिया। इस काममें राजा महाराजा लोग सम्मिलित हुए।

इन भीषण दंगोंने जो प्रभाव सहृदय हिन्दुओंपर डाला उसने महामना महात्माओंको हिन्दूजाति-संगठनके लिये बाध्य किया। वे इस समय समग्र भारतमें घूम घूमकर यह कार्य्य सम्पन्न कर रहे हैं। उन्होंने अभी काशीमें एक बड़ी भारी हिन्दू-महासभाका आह्वान किया था। जितने प्रस्ताव उस सभाने अङ्गीकार किये वे यदि कार्य्यरूपमें परिणत हो जायं तो निश्चय हिन्दू-जाति

एक ऐसी सबल जाति हो जाय कि उसे डिगानेवाला विश्वमें कोई नहीं दीख पड़े। वे प्रस्ताव हैं—पारस्परिक ऐक्य, जातित्वकी रक्षा, ब्रह्मचर्य पालन, व्यायाम, विद्याभ्यास, संस्कृतका पठन-पाठन, अस्पृश्य वर्णोंका स्पर्श और उनके प्रति शुचित्वका उपदेश, मुसलमानोंकी शुद्धि, कलाकौशलोंका संवर्द्धन व अनुशीलन, गृहदेवियों द्वारा बालकोंमें अनिवार्य्य शिक्षाका प्रचार, रजोदर्शनके समय कन्याओं और २० वर्षकी अवस्थामें युवकोंका विवाह, आदि आदि। अनेक उत्तमोत्तम प्रस्ताव जो सभा द्वारा अङ्गीकृत हुए, भारतके उत्थानमें मुख्य कारण स्वरूप हैं इसमें सन्देह नहीं। अभी संगठन-समिति नहीं बनी है; वही बनकर किस ढंगपर कार्य्य करना होगा यह बतलायगी।

इस संगठनसे मुसलमान लोग जो एकताकी दुहाई देकर विश्वासघात किया करते थे, बेतरह बिगड़े हैं। उनने महात्माओंपर लाञ्छन लगाया है, वे इस संगठनको वैरमूलक बता रहे हैं। पर बात वैसी नहीं; उन्हें भय खानेकी कोई आवश्यकता नहीं। अपनी अपनी रक्षा और बचावका काम सभी करते हैं। वही हिन्दू-जातिने किया। हिन्दू-जातिको प्रतिकार करने योग्य बनना चाहिये इसीलिये वह उद्यम कर रही है। बल-वर्द्धन द्वारा जब इस जातिके चेहरेपर एक प्रकारकी जीवन-ज्योति चमकने लगेगी जो आज दिन स्वतन्त्र देशकी जातियोंपर चमक रही है, तब कोई भी इस जातिको नीचा दिखा न सकेगा।

यदि भारतवर्षका आधुनिक जीवन इसके प्राचीन जीवनसे

मिलाया जाय तो जमीन आसमानका अन्तर देख पड़ेगा। तब सत्य था, अब उसका अभाव है—ऐसा अभाव है कि शायद वह इस देशको रसातलमें पहुंचाये, ऐसा सन्देह प्रति पद होता रहता है। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या और क्रोधराहित्य— इन धर्म-लक्षणोंका अभावसा हो गया है। कला-कौशलोंका अभ्यास छोड़कर सिर्फ काहिलोंकी तरह पड़े रहना और रात-दिन ऐयाशी, मादक-सेवन, मिथ्या व्यवहारमें अपना अमूल्य जीवन बिताना ही इन अभागे भारतीयोंका काम रह गया है। तभी तो ये इतने दुर्दशाग्रस्त हैं और किसीको भी इनपर तरस खाते नहीं देखा जाता। प्रेमका इनमें लेश नहीं; परमार्थकी ओर स्वप्नमें भी ये नहीं देखते; एक मात्र स्वार्थका बाजार गर्म है; हा! स्वदेश-प्रेम, आत्माभिमान, आत्मनिर्भरता क्या है इसका इनके आधुनिक जीवनमें नामोनिशानतक नहीं है। ये जिन पाश्चात्योंकी नकल करनेहीमें दिन-रात अपना फर्ज अदा किया करते हैं, यदि उनकी असलियतकी ओर ध्यान देते, उनके गुणोंको ग्रहण करते तोभी ये स्वदेश-प्रेम, आत्माभिमान, आत्मनिर्भरता आदि गुण पा जाते और अपना और अपने देशका उद्धार कर सकते, क्योंकि जितनी जातियां आज समुन्नत एवं समृद्धिशाली हुई हैं वे इन्हीं गुणों द्वारा अन्यथा उनका नामतक न रह पाता।

यदि इनका व्यापार देखिये तो एकमात्र दलाली रह गयी है; क्योंकि ये स्वयं कच्चा माल पैदाकर उससे माल तैयार नहीं करते बल्कि विदेशसे तैयार होकर आये हुए मालको खरीदकर

उसे कुछ महंगा करके बेचते हैं। यदि एक ही आदमी खरीदके भावसे कुछ महंगा करके माल बेचता तोभी देशवासियोंको इतनी महंगीका सामना नहीं करना पड़ता, पर बात दूसरी ही है। उस व्यक्तिसे दूसरेने कुछ नफा देकर थोक माल खरीदा और उससे तीसरेने, तीसरेसे चौथेने—बस, जितने व्यक्तियोंने खरीदा उतना ही नफा उस मालपर रखकर वह बेचा गया। परिणाम इस व्यापारका यह निकला कि देशकी तिजारत गारत हुई; स्वार्थने अपना सिर अच्छी तरहसे उठाया; फूटने पैर रोप दिये; एक दूसरे-की उन्नतिपर जलने लगा और देशोन्नतिकी परवा किसीको भी नहीं रही। अब कहिये, कला कौशलोंका सहारा कौन ले? हां, कुछ थोड़ेसे श्रमजीवी हैं जो लोहार, सोनार, बढ़ई, राज, बेलंदार, जुलाहे, धुनिये आदिका काम करके अपनी जीविका उपार्ज्जन करते हैं। चमार यद्यपि जूते बनाते हैं पर ज्यादातर पाश्चात्य ढंगके; दरजी कपड़े सीते हैं पर उनमें भी पाश्चात्य सभ्यताने अपना पूर्ण अधिकार कर लिया है; कसेरे और लोहार सिवा छोटी छोटी चीजोंके एक भी बड़ी वस्तु तैयार नहीं कर सकते। सोनार प्रायः खाद मिलाकर जुआचोरी किया करते हैं। प्रायः ब्राह्मणोंको सिवा भिक्षा-वृत्ति और नौकरीके दूसरा काम न रहा! अपनी विद्या-पठन-पाठन प्रणाली छोड़ दी इस-लिये नाममात्रके वे ब्राह्मण रह गये। क्षत्रिय प्रायः नौकरी, पियादगिरी करने लगे और वैश्योंने नफेपर नफा लेकर देशवा-सियोंको खूब लूटा! फिर तो मूर्ख शुद्र बेचारे क्या करें? इनने

दासवृत्तिपर कमर बांधी और भारतको गारत करनेमें जरा भी कोर कसर न रक्खी।

अधिकांश भारतीय अंग्रेजी पढ़कर उसी सभ्यतामें रंग गये और वे दासवृत्ति अङ्गीकार कर अपनी जीवन-यात्रा ते करते हैं। आज दिन देशोन्नतिकी ओर उनका ध्यानतक नहीं है। जो पढ़े-लिखे नहीं हैं वे सब तरहकी नौकरी-चाकरी करते हैं या गाड़ी-वानी, एक्केवानी करते हैं। पैसा कमानेकी ओर अपनी अपनी धुनमें सब मस्त हैं,चाहे वह पैसा कैसे ही कुकर्म्मकर क्यों न प्राप्त हो। समाजका कोई सुधारनेवाला नहीं; कुरीतियोंके निकालनेका कोई उपाय नहीं; क्योंकि इस ओर कोई दृष्टिपाततक नहीं करता। हां, कुछ अहिंसा व्रतके व्रती महात्मा ऐसे हैं जो देशो-न्नतिके लिये जेलमें पड़े हैं।

ऐयाशीमें पड़कर, जिसकी दीक्षा भारतीयोंको पाश्चात्य सभ्यतासे मिली है, हा! ये—क्या स्त्रियां,क्या पुरुष—व्यभिचारमें प्रायः प्रवृत्त हो गये हैं। फिर तो "कामातुराणां न भयं न लज्जा" वाली कहावत चरितार्थ करते हैं। जो ललनाएं अशिक्षित रहनेके कारण, अपनी मर्य्यादा-सभ्यता न जाननेके कारण एक वार भी गलतीसे कुपथमें पड़ीं वे सदाके लिये समाजसे बहिष्कृत की जाती और फिर तो कुलटायें होती हुई वेश्याओंका जीवन व्यतीत करती हैं—यद्यपि सदुपदेश द्वारा उनका भी कल्याण किया जा सकता है—और पहले नीरोग अवस्थामें रहनेकी वजहसे इस व्यभिचारको जीविका समझ पैसे कमाती हैं, पर शीघ्र रुग्ण

होनेपर अत्यन्त दुर्दशाग्रस्त हो अपनी लीला संवरण करती हैं। ऐसी स्त्रियोंके सुधारनेका भारतीय समाजमें कोई उद्यम नहीं।

व्यभिचारी पुरुषोंको बगैर धनके अत्यन्त कष्टका सामना करना पड़ता है। उन्हें मादक-सेवनकी सख्त जरूरत रहती है, इसलिये वे जुआ अथवा चोरीके शिकार बन जाते हैं। फिर तो कारागार वास करनेका सौभाग्य उन्हें स्वतः प्राप्त हो जाता है। कितने उचक्केका काम करते हैं। जरासा सन्नाटा हुआ कि किसीकी चीज़ फौरन झपट ली। कितने दलबंदीकर डाकेजनी, राहजनी किया करते हैं। इस काममें भी वे सुख नहीं पाते बल्कि सदा सशङ्क जीवन व्यतीत करते हैं।

कितने लोग बंदर नचाकर अपनी जीविका उपार्ज्जन करते हैं और कितने भालु नचाकर। सांप और बिच्छू, गोह और बिस-खोपड़ोंका प्रदर्शन भी जीविकार्ज्जनका एक मुख्य साधन हो गया है। ऐसे लोग मदारी या सपेरे कहे जाते हैं। कुछ लोग बट्टे-बाजी अथवा इन्द्रजालके द्वारा लोगोंकी आंखोंमें धूल झोंकते हैं और अपने पैसे बना लेते हैं। यह भी एक प्रकारका प्रहसन है।

नाटकोंके अभिनय और जंगली हिंसक पशुओंके साथ लड़ना, हाथीको अपने ऊपर चढ़ाना और छातीपर पत्थल तुड़-वाना, सींकड़ोंको तोड़ना और चलती हुई मोटर रोकना आदि काम भी जीविकाओंके साधन हैं। नटबाजीके द्वारा भी लोगोंका जीवन चलता है। नाचना, गाना आदि कार्य्योंसे नटनर्त्तक तथा वेश्याओंके जीवन चलते हैं।

मजदूरीसे भी बहुत लोग जीते हैं। पर कला-कौशलोंके अनुशीलनसे प्रायः देश विमुखसा हो रहा है, यद्यपि विदेशी चीजें—छाते, मोटर गाड़ियां, साइकिलें, हारमोनियम, फोनोग्राफ, घड़ियां आदि—भारतमें मरम्मत होती हैं और इसके जरिये बहुतसे लोग अपनी जीविकाका कार्य्य सम्पन्न कर लेते हैं।

शीशे और सीसेकी चीजें—व्यवहारिक चीजें—भी बनने लगी हैं। मोटे वस्त्र और साथ ही महीन भी बनने लगे हैं; परन्तु सारा देश, न मालूम क्यों, इन्हें अभी एक दम अपनाता नहीं; तोभी देशीका व्यवहार बहुत होता है, इसमें सन्देह नहीं।

टिकुली और सितारे तथा गोटे-पट्टेका भी काम यहां होता है पर मूलवस्तु जो उनमें लगती है विदेशसे ही आती है। यद्यपि कुछ श्रमजीवी लोग इस कामके द्वारा अपना पारिश्रमिक पा जाते हैं तथापि इस व्यवसायसे मुख्य लाभ विदेशको होता है।

खाने-पीनेकी चीजें भारतीय बाजारोंमें मिलती हैं और उनसे हलवाइयोंको लाभ होता है, पर विदेशी ढंगकी चीजें भी बनने लगी हैं जिनकी खपत नकल करनेवालोंमें अच्छी होती है। सबको—चाहे मुसलमान हो वा ईसाई—यदि वह विदेशी नहीं है, तो भारतीय खाद्य खाना पड़ता है; कुछ विवश होकर नहीं बल्कि प्रकृतिके कारण।

आधुनिक जीवनमें भारतीय समयका मूल्य अधिकांशमें नहीं समझते। वे इतनेको ही अपना कर्त्तव्य समझ बैठे हैं कि किसी प्रकार भोजन वस्त्रभर कमा लेना और बाकी वक्तको या तो कलह

अथवा सोकर या मादक वस्तुओंका सेवन कर काट देना। पहली अवस्थामें फौजदारी होती है और परिणाम कारागारवास होता है। दूसरी अवस्थामें आलस्यकी मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि मनुष्य किसी कामका नहीं रहता और एकदम बेकार हो जाता है। कुछ अशिक्षित लोग यद्यपि निर्दोष मनोविनोदकी दुहाई देकर चिड़ियोंको अगिन, तूती, बुलबुल, बटेर, तीतर, तोता, मैना आदिको लेकर घूमा करते हैं, पर समय उनका तीन चार घंटेसे कम बरबाद नहीं होता जिसके एवजमें वे सिवा इनकी मीठी बोली सुननेके या लड़ाई देखनेके और कुछ नफा नहीं उठाते। हा! जिस देशमें कला-कौशलोंका परित्यागकर लोग इस तरह कालक्षेप करें उस देशका अधःपतन क्यों न हो? वह तो अवश्यम्भावी है। कहीं तास या गंजीफा खेलकर दिन बिताया जाता है तो कहीं शतरंज व चौसर खेलकर कहीं सितार या सारंगी बजती है तो कहीं हारमोनियम और फोनोग्राफ। इस प्रकार अपने समयका भारतवासी सदुपयोग करते हुए अपनेको मिट्टीमें मिला रहे हैं।

आधुनिक जीवनमें इनकी सभ्यताका स्थान बहुत ही नीचा है। उसे पाश्चात्य सभ्यताने घर दबाया है। हां, जहांपर संस्कृतका पठन-पाठन बना हुआ है वहां यह फटकनेतक नहीं पायी है और निराश होकर लौटना पड़ा है। यही कारण है कि पाश्चात्य तत्त्वदर्शी लोग भारतमें उसकी सभ्यता और सत्ताका विनाश करनेके लिये विदेशी भाषा, विदेशी विचार, विदेशी आचार प्रचलित करनेकी शिक्षा अपने यहां दे रहे हैं।]

धार्म्मिक विचार यद्यपि भारतके बड़े समुन्नत हैं तथापि इस दीन-दरिद्र देशको धनका लालच अथवा नौकरियोंका प्रलोभन देकर ईसाई-संसार अपना मतलब खूब गांठ रहा है। उधर ऐयाशीमें पड़ रंडियोंके फेरमें लोग मुसलमान तो पहले बन जाते हैं पर बादमें 'धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका' वाली कहावत चरितार्थ होती है। वे न इधरके रहते हैं न उधरके।

यह कहना अत्युक्ति न होगी कि भारतवासी अपना आधुनिक जीवन संचालन करनेके लिये अपने शासकोंका मुंह जोहा करते हैं। जो कुछ पहले लिखा जा चुका है उससे स्पष्ट है कि आधुनिक भारतीय जीवन समादरके योग्य नहीं। तभी तो गुलामी भी भोगनी पड़ रही है और इससे उद्धारका उपाय नहीं सूझता! हां, यदि अहिंसा-व्रतके व्रती बन भारतीय कष्ट झेलनेके लिये तैयार हों और महात्माके बताये असहयोग-सिद्धान्तपर चलें तो बहुत शीघ्र देशोद्धार सम्भव है। फिर तो यह देश अद्वितीय हो जायगा। इसका पूर्व वृत्तान्त बड़ा ही समुज्ज्वल है इसलिये यह बहुत शीघ्र समुन्नत होगा इसमें सन्देह नहीं।

यद्यपि इस देशकी भाषा प्राचीन समयमें संस्कृत थी और अनन्तर वह प्राकृतसे संपृक्त हुई तथापि समयके हेरफेरसे यवनोंके आक्रमणके कारण उसे उर्दू मिश्रित हिन्दी होना पड़ा है। इस समय यही भाषा प्रधान है यों तो प्रान्तीय भाषायें अपने अपने प्रान्तोंमें प्रचलित हैं। जबसे अंग्रेजी अमलदारीने अपना दखल जमाया तबसे अंग्रेजी भाषाका प्रचार भारतमें फैला, और

आधुनिक भारतीय जीवनमें यह इतना बढ़ गया है कि संस्कृतका पठन नहींके बराबर है; यद्यपि प्रान्तोंमें कहीं कहीं इसके प्रेमी ब्राह्मण लोग इसको जीवित अवस्थामें रक्खे हुए हैं। पाश्चात्यों-ने तो इसे मृत भाषा (Dead Language) कहनेमें भी जरा संकोच नहीं किया, यद्यपि बहुत थोड़े परिवर्त्तनके साथ यह मद्रास प्रान्तमें व्यवहृत होती है। महाराष्ट्र लोग भी इसे उसी प्रकार बोलते हैं जैसे मद्रासी। बंगाली लोग तो इस भाषाका इतना समादर करते हैं कि शुद्ध बङ्गला और संस्कृतमें कुछ भी भेद नहीं जान पड़ता, हां, विभक्तियोंका अभाव बङ्गला विभक्तियों-के चिह्नसे पूर्ण किया जाता है।

ज्यों ज्यों अंगरेजीका पठन-पाठन बढ़ता गया त्यों त्यों पाश्चात्य सभ्यताने अपनी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति की। इस भाषाका प्रेम यहांतक बढ़ा कि लोगोंने और भाषाओंका पढ़ना छोड़ दिया। इस समय तो भारतमें अंग्रेजी जाननेवाले गली गलीमें भरे पड़े हैं। बी० ए०, एम० ए० पास किये व्यक्ति जब सैकड़ों मिलते हैं तो मैट्रिक और आई० ए० वालोंकी कौन चर्चा चलावे। इनकी भाषा भी एक विचित्र ढंगकी हुई है। इसे सुनकर बेतरह हंसी आती है! इसे हिन्दी-अंग्रेजीका सम्मिश्रण कह सकते हैं। एक दम अंग्रेजी या हिन्दी बोलें सो बात नहीं; बल्कि हिन्दीके बीच बीच अंग्रेजीका तड़का या उसकी बघार रहा करती है; जैसे—'रातको साउंड स्लीप या नाइटमें साउंड स्लीप नहीं हुई।' 'ईट करनेके वक्त किसीको बोट करना अच्छा नहीं।'

इस समय बहुतसे भारतीय अंग्रेजी ही बोलकर अपना अभिप्राय अन्य अन्य प्रान्तवालोंके प्रति व्यक्त करते हैं। घरेलू भाषामें भी अंग्रेजीकी बघार रहा करती है। यद्यपि अंग्रेजीका इतना प्रचार है तथापि राष्ट्र-भाषा हिन्दीका प्रचार इन दिनों खूब बढ़ रहा है। सभी प्रान्तवाले इसे सीख चुके हैं और सीख रहे हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपना काम बड़े वेगसे कर रहा है। अन्यान्य प्रान्त भी अपनी अपनी भाषाकी उन्नति कर रहे हैं।

पाश्चात्योंकी नकल करना और उनके गुणोंका ग्रहण न करना भारतीयोंके लिये बड़े दुःखकी बात है। पाश्चात्योंके समान कला-कौशलका अनुशीलन न कर उनके किये आविष्कारों और गवेषणोंपर मूंछें ऐंठना, उनके समान अपनी महिलाओंको भूषण-वसन पहना गाड़ियों और मोटरोंपर लिये घूमना (यद्यपि वे पाश्चात्य महिलाओंके समान शिक्षित नहीं), पाश्चात्योंके व्यापारद्वारा प्रदत्त वस्तुओंसे अपना जीवन निर्वाह करना, आपसमें द्वेषाग्नि भड़काते रहना, एकताका अभाव और प्रेमका अभाव भारतीय सत्ताका विनाशक है। वाचकवृन्द, प्यारे देशवासियो, जिसमें उक्त सत्ता बनी रहे, सभ्यता बनी रहे सो काम करना चाहिये।

तुलनात्मक जीवन ।
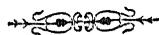
इसमें पाश्चात्य जीवन और भारतीय जीवनकी तुलना की गयी है। इसी उद्देश्यसे यह जीवन लिखा गया है। बिना तुलना किये पता नहीं लगता कि किस जीवनमें कौन गुण अथवा अवगुण वर्त्तमान है। कौनसा जीवन सर्वश्रेष्ठ है, पक्षपातशून्य होकर इसकी मीमांसा करना एक बड़ी कठिन समस्या है। इस वक्त पक्षपातका बाजार बड़ा गर्म है। जहां देखिये वहां इसने अपना ऐसा दखल जमाया है कि न्याय बेचारा अन्धकारमय हो जाता है, उसका गला घोंट डाला जाता है और वह अपनी फर्यादतक किसीको सुना नहीं सकता। एकमात्र न्यायपर प्रकाश डालनेके लिये इस जीवनकी रचनाकी ओर लेखक प्रवृत्त हुआ।

तुलना देश, भाषा, सौंदर्य्य, उर्वरता, रत्नगर्भता, खाद्य, पेय पदार्थ, वेश-भूषा, बल, कलाकौशल, विद्वत्ता, तर्क, समाज, प्रथा, गुण-दोष, धर्म, रीति-नीति आदिके साथ की जाती है; और इसी सिद्धांतको आगे रख लेखक पहले भारतवर्षके साथ पक्षपातशून्य होकर पाश्चात्य देशोंकी तुलना करता है।

भारतवर्षको प्रकृतिदेवीने स्वयं अपनी गोदमें रख लिया है। पश्चिम, उत्तर और पूर्वको ओर पर्वतश्रेणियोंने इसे

घेरकर अगम्य बना दिया है; हां, पश्चिम और पूर्वकी पर्वत-श्रेणियोंमें होकर घाटियां हैं जिनके द्वारा लोग दोनों ओरसे आ जा सकते हैं और आते जाते भी हैं। इसका दक्षिण भाग समुद्रसे प्रक्षालित है। एक ओर अर्थात् पश्चिम-उत्तरकी ओर ऊंचीसे ऊंची पर्वतश्रेणियां हैं और दूसरी ओर नीचीसे नीची रत्नाकरकी तरंगमाला! बीचका प्रदेश पर्वतोंसे निकली हुई समुद्रगामिनी नदियोंसे ऐसा सींचा-संवारा हुआ है कि इसकी जहांतक प्रशंसा की जाय थोड़ी है। यही कारण है कि भारतमें सब प्रकारके प्रदेश वर्तमान हैं जहां हदसे ज्यादा गर्मी और सर्दी पड़ती है; और बाज बाज जगहें न अधिक सर्द हैं न गर्म।

शायद पाश्चात्य देशोंमेंसे किसी भी एक देशको प्रकृतिदेवीने ऐसा सुरक्षित, मनोमुग्धकारी, ठंढा, गर्म और औसत दर्जेकी सर्दी व गर्मीसे युक्त नहीं बनाया। वे देश न तो भारतवर्षसे सुरक्षित हैं न मनोहर ही। ठंढक उन देशोंमें इतनी पड़ती है कि वहांके रहनेवाले बदन फटनेके कारण नरकसे सुफेद हो जाते हैं। बस यही कारण है कि वे अपनेको सुन्दर देशोंका बताते हैं। यथार्थमें वे सुन्दर नहीं हैं। ठंढके मारे जो दशा उनकी होती है उसका वर्णन बड़ा विचित्र है। प्राय: उत्तरीय प्रदेशोंमें जहां सूर्य्य-के दर्शन बगैर मौसम बहारके आये मिलना सम्भव नहीं, ऐसी ऐसी जातियां रहा करती हैं जिन्हें कभी भी स्नान करनेका सौभाग्य नहीं होता। इन जातियोंके लोग रात-दिन सिरसे पैरतक

भेड़की रोआंदार छालके बने कपड़े पहने रहते हैं, सिर्फ आंखें और मुख उनके खुले रहते हैं। उन्हें सिर्फ भोजन करना और सोनेके सिवा यदि कुछ काम रहता है तो यही कि कुछ काम अपनी जीविका-निर्वाहके लिये—जैसे जानवरोंका शिकार इत्यादि कर लेते हैं। इसके सिवा उनका जीवन पृथ्वीके लिये बोझ है। निरर्थक जीना अच्छा नहीं। हा! जिस प्रकार कुत्ते, बिडाल आदि जीव अपनी देहको चाटकर स्वच्छ करते हैं, अपने बच्चोंकी देह साफ करनेके लिये चाटा करते हैं, वैसे ही ये नर-पशु अपनी तथा अपने बच्चोंकी देह चाटकर स्वच्छ करते हैं। शायद भारत-वासी ऐसे कष्ट झेलनेके लिये तैयार नहीं। यह दूसरी बात है कि बहुतसे दरिद्र, गृहहीन, जीविका-हीन, रोग-ग्रस्त तथा निःसहाय भारतवासी हैं जो अपनी दशापर लोगोंकी सच्ची सहानुभूति एवं समवेदना आकृष्ट करते हैं, नाना प्रकारके कष्टोंके शिकार बने रहते हैं; पर चाटकर पशुके समान देहको स्वच्छ ये भी नहीं करते हैं। हा! उन देशोंकी प्राकृतिक बनावटने वहांके अधि-वासियोंको पशुतुल्य बना दिया है। उनकी पशुता उस समय और बढ़ जाती है जिस समय उन्हें भोजन नहीं मिलता, अकाल पड़ता है। वे कभी कभी आपसके लोगोंको पकड़ पकड़ खा जाते हैं। हा! इतनी पशुता!

भाषा।

भाषा वही अच्छी समझी जाती है जो सुननेमें अच्छी लगे।

जो भाषा सुननेमें कटु और अप्रिय हो, जिसमें चित्तके खींचनेकी शक्ति नहीं, जो मनको मुग्ध न कर सकती हो, जिसके उच्चारण करनेमें कष्ट हो अथवा जो उच्चरित न हो सके वह भाषा भाषा नहीं किन्तु एक भारी कष्टका प्रदर्शन है। यदि इसे भाषाका विडम्बन कहें तो ज़रा भी अत्युक्ति न होगी।

भारतवर्षकी भाषा प्राचीन समयमें तो संस्कृत थी ही यह निर्वाद सिद्ध है; परन्तु पाश्चात्योंहीके मनसे १५०० से १६०० वर्षके करीब हुए होंगे कि उज्जैनके राजा विक्रमादित्य और भोजके समयमें संस्कृतकी चर्चा किसी प्रकार कम न थी। उन दोनोंमेंसे पहलेकी सभाके नवरत्न नव पण्डित थे जो यथार्थमें रत्न ही थे; और दूसरेके समयमें सभी संस्कृत बोलते थे और कविता करते थे; राजाके प्रसन्न होनेपर प्रत्यक्षर लक्ष लक्ष मुद्रायें लोग पाते थे। इस बातकी पुष्टिमें एक नहीं अनेक प्रमाण हैं जो भोज-प्रबन्धमें मिलते हैं। और सबसे जबर्दस्त प्रमाण तो यह है कि आज एक ओर गुजराती, मराठी, बंगाली तथा मद्रासी आदि प्रान्तीय भाषाएं और दूसरी ओर हिन्दी, उर्दू, अर्बी, मागधी तथा अन्य प्रान्तकी बोली जानेवाली भाषाएं कोई कम कोई अधिक संस्कृतके शब्दोंसे सुसम्पन्न हैं। और इन भाषाओंमें संस्कृतके शब्द बीचमें बीचमें जब आ जाते हैं तो सुनकर चित्त और भी प्रसन्न हो जाता है। संस्कृतके शब्दोंमें यथार्थ माधुरी है। इस माधुरीकी समता आजतक तो किसी भी भाषाने नहीं की।

कहनेके लिये लोग कह सकते हैं कि जो जिसकी मातृभाषा

है वही उसको रुचती है। परन्तु यदि इस विषयमें तत्त्वान्वेषण किया जाय तो भलीभांति पता लग सकता है कि कौन भाषा यथार्थ मधुरिमासे पूर्ण है, किस भाषाकी वाक्यावलीमें मनोमुग्ध-कारिणी शक्ति है, किस भाषामें आकर्षणशक्ति है। यह गुण प्रायः संस्कृतसे विभूषित होनेके कारण भारतीय भाषाओंमें आ गया है। हां, यह बात दूसरी है कि जिस भारतीय भाषामें अधिक संस्कृत शब्द आये हैं वही सर्वाङ्गसुन्दर हो सकी है।

जो उच्चारण किया जाय उसका शुद्ध शुद्ध लिखना और जो लिखा जाय उसका शुद्ध शुद्ध पढ़ना—ये बातें सिवा भारतीय भाषाओंके अन्य भाषामें नहीं मिलतीं। किसी भी बातको शुद्धतापूर्वक भारतीय भाषाओंमें लिख सकते हैं, पर अन्य भाषाओंमें यदि लिखने लगें तो बड़ी भारी अड़चनें आ उपस्थित होंगी।

पाश्चात्योंकी भाषाओंमें यह बड़ा भारी दोष है कि जो लिखते हैं उसको भलीभांति उच्चारण कर पढ़ नहीं सकते; दूसरे शब्दोंमें यह पाश्चात्य भाषाओंमें विकट विलक्षणता है कि शब्दोंकी बना-वटमें जितने अक्षरोंका प्रयोग होता है वे सभी उच्चरित नहीं होते, अनुच्चरित भी रह जाते हैं। क्या संस्कृत अथवा भारतीय अन्यान्य भाषाओंमें भी उपर्युक्त दोष दिखलायी देगा? कदापि नहीं।

पाश्चात्योंकी भाषा चित्तको खींचती नहीं न उनकी भाषा-में कुछ रस ही जान पड़ता है। जिन्होंने भलीभांति उनकी

भाषाका अध्ययन किया है वे भी उसमें रस नहीं पाते। इसका मुख्य कारण यही है कि उनकी भाषामें सरस वाक्यावलीका पता नहीं है, न शब्दोंमें मनके मुग्ध करनेकी शक्ति ही है। जिन्होंने अपनी जिन्दगी उनकी भाषाके अध्ययनमें बिता दी है वे भी उनकी भाषामें रसाभाव बतलाते हैं।

सौन्दर्य्य।

सौन्दर्य्यमें बड़ी भारी आकर्षणशक्ति है। उसने लोगोंके मनको बहुत जल्दी मुग्ध करनेमें सफलता पायी है। उसकी ओर दृष्टिपात सभी करते हैं। वह बड़ीसे बड़ी मनोमोहिनी शक्ति है। उसमें किसीको भी वशीभूत करनेकी बड़ी ताकत है। यही कारण है कि वह प्रधान गुणोंमेंसे एक समझा जाता है।

भारतवर्षका सौन्दर्य्य विश्वविदित है, यह कुछ अत्युक्तिकी बात नहीं। इस गिरी दशामें भी जो सौन्दर्य्य इस देशके नर-नारियोंका है उसकी समता करना किसी भी देशके लिये गौरव-की बात है। सौन्दर्य्य एक स्वाभाविक होता है और दूसरा कृत्रिम। स्वाभाविक सौन्दर्य्यकी यहांपर बात हो रही है। कृत्रिम सौन्दर्य्य भारतमें नहीं है बल्कि वह पाश्चात्योंके हिस्सेमें पड़ा है। अङ्ग प्रत्यङ्गकी बनावट, मृदुता, गठन जो भारतमें है वह दूसरी जगह नहीं है। पाश्चात्य लोग अपनी चरकसी गोराईको बहुत ऊंचा स्थान देते हैं, पर यथार्थमें जो लावण्य और सौन्दर्य्य लाल वर्णवाले भारतीयोंमें है वह उन्हें मुअस्सर कहाँ? प्रकृतिदेवीने उन्हें अपने हाथों संवारा है। इनके केश-

काले, नेत्रकी पुतलियां काली, भ्रूमध्यके समीप रहनेके कारण रंग न बहुत काला न बहुत चरकसा उजला रहता है। यदि कोई व्यक्ति हद दर्जेका सांवला भी है तोभी उसकी सांवली सूरतमें एक वशीकरणवाली शक्ति है, जिसके द्वारा वह विना दर्शकको मुग्ध किये नहीं रहता।

पाश्चात्योंमें वह सौन्दर्य्य ढूंढ़नेपर भी नहीं मिलता। उनका सौन्दर्य्य एक निराले ढंगका है। वे भूरी आंखें, भूरे केश और चरकसा उजला रंग पसन्द करते हैं। यथार्थमें भूरी आंखोंके प्रति लोगोंका मन खिंचता नहीं, न भूरे केश ही चित्तका आकर्षण करते हैं। चरकसे सफेद रंगमें भी आकर्षण नहीं। यदि उस रंगमें बीच बीचमें कुछ दाग़ आ गये हैं तो वह अबलख रंग नेत्रोंके लिये सुखकर किसी प्रकार नहीं। शरीर एवं चेहरेकी विलक्षण बनावट दर्शकके मनमें कुछ भयका सञ्चार करती है। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि अधिकांश पाश्चात्य व्यक्ति सौन्दर्य्यसे प्रकृतिदेवी द्वारा वंचित किये गये हैं। जिनकी गणना सुन्दर व्यक्तियोंमें है वे किसी प्रकार भारतीय सौन्दर्य्यका कुछ अंश पा चुके हैं। उदाहरणके लिये बहुतसे पाश्चात्य नर-नारी वर्त्तमान हैं। उन्हें देखकर ही पता लग जायगा कि लेखकने कहांतक सत्य बात लिखी है।

उर्वरता।

उर्वरता भारतवर्षमें प्रधान स्थान पाये हुए है। यद्यपि इस

समय भारत गुलामोकी जंजीरसे जकड़ा हुआ है तथापि यह भारतकी उर्वरता है जिसके कारण ऐसी अवस्थामें भी लोग अपना जीवन निर्वाह कर लेते हैं, जबकि अन्यान्य देश अन्न न पाकर या बहुत कम पाकर आपसमें एक दूसरेको भक्षणतक कर जाते हैं।

उक्त कथनकी पुष्टिमें १९२२-२३ में रशियाके अकालकी बातका लिखना ही काफी है। जो दुर्भिक्ष यहां पड़ा था उसका स्मरण मात्रही रोमाञ्चकारी है। परिवारके लोगोंकी दशा ऐसी हीन हो गयी थी कि खाद्य पदार्थके अभावमें वे मुश्किलसे पेड़ोंकी जड़ें और पत्तियां पाते थे। तदनुसार अस्थिचर्मावशिष्ट होकर आपसके सम्बन्धियोंतकपर घातक आक्रमण किये बिना नहीं रहते थे। हा! भाई भाईको कमजोर समझकर खा न डाले इस लिये वह जंजीरसे जकड़ा गया था! माता-पिता बड़े भाईसे छोटेका खाया जाना कैसे देख सकते थे? इसलिये वे उसे बांध कर रखना ही पसन्द करते थे।

जहां उर्वरता अधिक होती है वहां मांस-भोजन बहुत कम होता है। जहां प्रायः सभी लोग जानवरोंके मांस खाते हैं, अथवा जहांका प्रधान भोजन मांस ही है, वहां उर्वरताका अभावसा होता है। एकके अभावमें दूसरेका भाव होना प्राकृतिक है।

उर्वरताके लिए अच्छी मिट्टीकी बड़ी ही आवश्यकता है। अच्छी मिट्टी सिवा भारतवर्षके दूसरे देशोंमें नहीं पायी जाती। बस, यही कारण है कि अन्यान्य देश अच्छी मिट्टीके अभावके कारण उर्व-

रताका बहुत ही थोड़ा दम भरते हैं। जिस देशका भोजन मांस, परिधान चमड़ा है, उस देशमें उर्वरताका नामोनिशान भी नहीं। यद्यपि यह युग विज्ञानका है और वैज्ञानिक उन्नतियां प्रायः सभी विभागमें हुई हैं, परन्तु प्रकृतिदेवीने जिसे स्वाभाविक उर्वरता प्रदान की है उसकी समता गैर मुल्क कैसे कर सकता है! यह सौभाग्य भारतवर्षको साक्षात् प्रकृतिदेवीने प्रदान किया है और प्रधान कारणोंमेंसे यह भी एक कारण है जिसपर लुब्ध होकर पाश्चात्य देश यहांपर कब्ज़ा किये बैठे हैं।

रत्नगर्भता।

संसारमें जितने रत्न अथवा उनकी जातियां निकली हैं वे सब पृथ्वीके भीतर गर्भहीसे आविर्भूत हुई हैं। यही कारण है कि पृथ्वीका नाम वसुन्धरा अथवा रत्नगर्भा है। सभी देशोंको यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ है। पाश्चात्य देशोंने यहांपर अपने मुंहकी खायी है। भारतवर्षको प्रकृतिदेवीने यह सौभाग्य प्रदान किया है। प्रायः नवरत्न जिनकी समता करनेमें चौरासी संगोंके अवशिष्ट पचहत्तर संग आजतक विफल मनोरथ हुए हैं, भारतवर्षमें ही उत्पन्न होते हैं। इन रत्नोंके सिवा चांदी, सोना यहींके पहाड़ोंसे निकलते हैं।

जर्मन महासमरके होनेका कारण भी भारतवर्षकी रत्नगर्भता है। महासमर आरंभ होनेके पहले जर्मनोंका एक दल गुप्त विचारके साथ यहां आया था। उसने ऐसी गुप्तरीतिसे भारत-

वर्षके स्थान स्थानकी मिट्टीकी जांच की थी कि जब वह दल जर्मनी पहुंचकर इसका पूरा विवरण निकालने बैठा तब पाश्चात्योंकी आंखें खुलीं और खासकर अंग्रेजोंने जाना कि भारतीय भूमि इस प्रकार रत्नोंको उत्पन्न करनेवाली है।

यों तो पृथ्वीका नाम ही वसुन्धरा है, पर बात अधिकताकी है। जहांपर जो चीज अधिकतासे पायी जाती है वहांकी भूमिकी ख्याति बढ़ जाती है। बस यही कारण है कि अनन्तरत्नोंको उत्पन्न करनेवाली भारतीय भूमि रत्नगर्भा होनेकी कीर्त्तिसे चमत्कृत है। इसी हेतु विदेशोंसे आ आकर लोगोंने अनेक बार आक्रमण किये और भारतको खूब ही लूटा। रत्नगर्भताके कारण लूटे जानेपर भी भारत अपना मस्तक इस गुलामीकी अवस्थामें भी सब देशोंसे अधिक उन्नत रखता है।

खाद्यकी सामग्रियां जो भारतवर्षमें हैं वे दूसरी जगह नहीं पायी जातीं। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रकृतिदेवीने जो उर्वरता इसे प्रदान की है वह और देशोंको नहीं। इसीलिये भारतवर्षको पाश्चात्य संसार अपनाये हुए है अन्यथा बड़े बड़े कष्टोंका सामना कर वह भारतभूमिको अपने अधीन न करता।

खानेकी मुख्य सामग्री अन्न है। अन्नके अनेक भेद हैं। इन विभिन्नताओंके द्वारा नाना प्रकारके खाद्य तैयार किये जाते हैं। खाद्योंके तैयार करनेमें गोदुग्ध बड़ी सहायता पहुंचाता है। कच्ची रसोईके सामान, पक्की रसोईके सामान, तरह तरहकी मिठाइयां,

भांति भांतिके पक्वान्न, अनेक प्रकारकी भाजियां—ये सब आज-दिन भी इस दीन भारतवर्षमें बहुतायतसे होती हैं जिन्हें खाकर भारतवासी शारीरिक बलमें किसी भी जातिसे कम नहीं रहते। पाश्चात्य संसारने इतनी सुविधा प्रकृतिदेवीसे नहीं पायी; तभी तो उसका मुख्य भोजन जानवरोंका मांस है और शारीरिक बलके अभावमें यन्त्रोंका बल उसे काम देता है।

पेय पदार्थ।

भारतवर्षमें पेय पदार्थ मुख्यतया दुग्ध है। यह गौका अथवा भैंसका या बकरीका बहुत बड़े परिमाणमें उपलब्ध होता है। भारतवर्षके लोगोंका मुख्य बल यही था। इसके द्वारा मक्खन और और मलाई तैयार होती है जिसे भारतीय खाकर 'जीवेम शरदः शतम्' की वैदिक कहावत चरितार्थ करते थे। इसीसे घी निकाला जाता है। घीके समान बलकारक वस्तु कोई नहीं; पर आज भारतका अभाग्य है कि यहांके रहनेवालोंको न घी मिलता है न दूध, मक्खन तो इस समय गोरी जातियोंके बांटे पड़ा है। पाश्चात्य सभ्यताका प्रभाव जबसे इस देशपर पड़ा है तबसे लोग मादक अधिक सेवन करने लगे हैं। कई तरहकी शरावें इस देशमें चल रही हैं और देश गारत होता जा रहा है।

पाश्चात्य संसारकी पेय वस्तु एक मात्र मदिरा है। वह मदिरा पीकर मस्त रहा करता है। स्त्रियांतक इसकी गुलाम हो रही हैं। इसके कारण उनपर उस देशमें जुर्माने भी हुआ करते

हैं; पर इसका प्रभाव उनपर कुछ नहीं पड़ता। पड़े भी तो कैसे? पाश्चात्य संसार अपनेको भारतवर्षका यथार्थ अधिकारी समझता है और इस देशके लोगोंको अपना गुलाम।

इन दिनों पाश्चात्य संसार और विडम्बन जीवन व्यतीत करनेवाले भारतीय लोग चाह और कहवा भी पीते हैं। हां, दूध भी इन्होंने पुष्टिकारक समझकर पीना शुरू कर दिया है। यों तो गर्मियोंमें बरफ और लेमोनेड तथा सोड़ा वाटर प्रायः ये पीते हैं। यद्यपि इस पानके द्वारा किसी प्रकार स्वास्थ्यको लाभ नहीं होता तथापि उक्त व्यक्तियोंको इस प्रकारके पानका व्यसन सा हो गया है। यथार्थ बलका वर्द्धक दूध है जिसे खाकर और पीकर बगैर दूसरी चीज खाये भी मनुष्य रह सकता है, इसका कारण यह है कि उसमें जलका भी अंश है।

वेशभूषा।

मनुष्यजाति विवेकी होनेके कारण अपनेको इस ढंगसे रखती है कि जिसमें शरीर सुन्दर और मनोहर जान पड़े। बस यही कारण है कि मनुष्यजातिने वेशभूषाकी सृष्टि की। यह सृष्टि तरह तरहकी हुई इसमें सन्देह नहीं परन्तु किसकी वेश-भूषा उत्तम है यह मैं विचारशील पाठकोंहीपर विचारनेके लिये छोड़ता हूं।

यद्यपि भारतीयोंने वेशभूषाको अलङ्करणका साधन माना है, तथापि मुख्य साधन ब्रह्मचर्य्यको इन्होंने पहला स्थान दिया है।

जिसके शरीरमें ब्रह्मचर्यकी मात्रा जितनी अधिक है और स्वच्छताने जहां सर्वत्र स्थान पाया है यथार्थ सुन्दरता और मनोहरताका वहीं निवास है। यथार्थ सुन्दरता उस चमकदमकमें रहती है जो ब्रह्मचर्यके कारण दिखलायी देती है। जैसे आबके बिना जवाहरकी शोभा नहीं उसी तरह कान्तिके बिना यथार्थ मनोहरताका नामनिशानतक नहीं। ब्रह्मचर्यकी कान्ति क्या है वह रत्नोंकी चमक है। खिले हुए फूलोंकी शोभा ब्रह्मचारीके अंग प्रत्यङ्गमें देखी जाती है, पर ब्रह्मचारीके अङ्गोंमें जो सुषमा है उसके दर्शन तो ब्रह्मचर्यके पालन करनेवालोंहीमें होते हैं।

प्यारे वाचकवृन्द ! जिन प्राकृतिक लोहित कपोलोंको देख कर ही चित्त प्रफुल्लित हो जाता है, हंसी आनेके समय जो चेहरेकी ललाई उसकी अपूर्व शोभा बढ़ाती है, चंपाके समान सर्वाङ्गमें जो अन्तर्विलीन लालिमा दिखलायी देती है, वही ब्रह्मचर्यकी सच्ची ज्योति है। इसी ज्योतिका प्रकाश जिसके सर्वाङ्गमें है वही व्यक्ति यथार्थ सुन्दर है। फिर सुन्दरता—यथार्थ सुन्दरता—के आगे बनावटी सुन्दरताकी क्या ज़रूरत? भारतवर्षमें सच्ची सुन्दरता है और उसीका सम्मान है, यही कारण है कि भारतीयोंका सादा वेश है और भूषण उनको विद्या है। पर हां, जबसे पाश्चात्य सभ्यताने अपने कदम भारतमें बढ़ाये हैं तबसे इस ज्योतिका पता विरले व्यक्तियोंमें लगता है।

इस स्थानपर गुरुकुलकी शिक्षा पाकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छासे बाहर आये हुए ब्रह्मचारीको मनोमुग्धकारी बातें

उपयुक्त होंगी इसमें सन्देह नहीं। ज्योंही एक ब्रह्मचारी बिलकुल साधारण वेशसे देशकी दुर्दशापर आंसू बहाता जा रहा है कि एक अशिक्षित रमणी उसके मार्गमें खड़ी हो कुशल-प्रश्न करती हुई कहती है—"अहा! आपके समान मनोहररूप मैंने आजतक नहीं देखा; मैं मुग्ध हो रही हूं, क्या मुझे अङ्गीकार करेंगे?" देश दुर्दशापर विचार करते हुए उस व्यक्तिने उस रमणीकी बातें न सुनकर पूछा—"क्या है? आप क्या कह रही हैं?" रमणीने पुनः कहा—"अपने समान पुत्र प्रदान कीजिये।" अब ब्रह्मचारीकी समझमें बात आ गयी और वह झट बोला—"ठीक मेरी समताका पुत्र होना असम्भव है। कुछ न कुछ फर्क अवश्य ही आ जायगा, इसलिये तू मेरी माता है और मैं तेरा पुत्र हूं।" इन बातोंको सुनकर रमणी लज्जित हुई और ब्रह्मचारी अपने काममें लगा।

जिस भारतने ब्रह्मचर्यकी सच्ची ज्योतिको सौन्दर्य समझा वह आज पाश्चात्योंकी विलासितामें इतना डूब गया है कि अपनी सत्तातक खोनेपर तैयार है। जिस भारतमें शकुन्तलासी प्राकृतिक सौन्दर्यशालिनी मुनिकन्याओंने गान्धर्व विवाह कर राजाओंसे पुत्र उत्पन्न किये और उन्हें अपने वशमें रक्खा वहां नकली सुन्दरताकी बोलबाला रहे इससे बढ़कर लज्जाकी बात भारतीयोंके लिये और दूसरी क्या होगी! पर पाश्चात्योंकी रमणियोंके कपोल जो बनावटी सुन्दरतासे रंजित रहते हैं यहांकी प्राकृतिक सुन्दरताका मुकाबिला नहीं कर सकते।

भारतीयोंकी यथार्थता विलासितामें नहीं बल्कि सादगीमें

पायी जायगी। यों तो जितने प्रकारके कपड़े और गहने भारतीयोंने पहने और पहनते हैं शायद ही पाश्चात्य संसार उसकी समता करे। हां, जितना विलासितामें गर्क रहनेके कारण पाश्चात्य संसार अपनेको वेशभूषाके साधनोंसे संवारा करता है और इसी कारण अपनेको स्वर्गीय समझता है उतना भारतीय नहीं। मकानोंको जालीके पर्देसे सजाना, केशोंको ऐलबर्ट फैशन्पर संवारना, साहब और मेमोंके समान कपड़े पहनना और वैसी सजधज जो आज दिन भारतमें दृष्टिगोचर हो रही है पाश्चात्य सभ्यताका प्रभाव है। हां, जब कभी सजनेका मौका आ जाता है उस वक्त भारतीयोंका सजना पाश्चात्योंसे कहीं बढ़ जाता है। पाश्चात्य संसार रात-दिनकी सजावटमें चूर रहनेके कारण एकदम विलासप्रिय हो गया है और अब भारतको अपना अनुयायी बना रहा है; नहीं तो रोजकी सादगी और वक्तपरकी सजावट यही यहांका सिद्धांत है।

बल।

भारतका बल ब्रह्मचर्य था जो इस समय पाश्चात्य सभ्यतामें पड़कर नष्टप्राय हो गया है; अन्यथा भारतमें बलकी कमी नहीं। इस हीन दशामें भी यदि किसी भारतीय बालकके साथ पाश्चात्य बालककी कुश्ती देखिये तो जान पड़ेगा कि कौन अधिक बलवान है। भारतीय युवक पाश्चात्य युवककी छातीपर दिखलायी पड़ेगा। भारतीयोंकेसे दाव पेच उन्हें

मालूम नहीं, फिर वे शारीरिक बलमें इनकी समता कहांसे कर सकेंगे ?

विलासी लोगोंके शरीरमें बल हो भी नहीं सकता। बल तो वीर्य्य है; जहां वीर्य्यका संचय नहीं, जहां हमेशा पुरुष स्त्रियों-की संगति किया करते हैं वहां व्यभिचार-दोष उत्पन्न होकर वीर्य्यको विनष्ट कर देता है। यह प्रथा पाश्चात्य संसारमें अधिकतर पायी जाती है। यही कारण है कि वहां शारीरिक बलके अभावमें वैज्ञानिक बलसे विशेष काम लिया जाता है।

गत जर्मन महासमरमें भारतीय तलवार लेकर जो सैनिकोंमें प्रवेश करते थे उसकी प्रशंसा अंग्रेजोंतकने मुक्तकण्ठसे की है। जैसे किसान खेतमें अन्न काटकर ढेर लगाता है वैसे ही सैनिकों-को काटकर वे ढेर लगाते थे। इसका प्रभाव ऐसा पड़ा कि उक्त युद्धमें पाश्चात्य संसार भारतीयोंसे कहीं अधिक डरने लगा।

कला-कौशल।

इस समय पाश्चात्य संसारको अपने कला-कौशलपर जितना गर्व है उससे कहीं अधिक गर्व विदेशियोंके आगमनके पहले भारतीयोंको अपने कला-कौशलका था। भारतीयोंका कला-कौशल उस समय इतना बढ़ा चढ़ा था कि विदेशी लोग इनकी बुद्धिपर चकित रहते थे। पर यह कहावत सच है कि पुरानी बातोंसे नये जमानेमें काम नहीं चलता। किसीके पिता, पितामह यदि सम्पन्न थे और सन्तानको यदि खानेको लाले पड़ें तो वह पूर्वकी

अवस्थासे धनिक नहीं कहा जा सकता। भारतीयोंके हाथमें जो कुछ कला-कौशल है वह प्रोत्साहनके अभावसे बिलकुल दबा पड़ा है। जबतक देशवासी प्रोत्साहनके ख्यालसे देशकी बनी वस्तु न खरीदें तबतक बनानेवाले हमेशा चीजें किस तरह तैयार करें और क्योंकर तैयार करें? निरर्थक समय खोना—उसमें भी पैसा लगाकर—किसे अच्छा लगेगा!

पाश्चात्य संसार इस समय कला-कौशलमें नाम मारे हुए है। उसकी तिजारत इस कारण संसारमें कहीं बढ़ी चढ़ी है। उसने पैसे कमाकर अपना वैज्ञानिक बल इतना बढ़ाया है कि जिससे कला-कौशल बहुत परिवर्धित हुआ है और उक्त संसार-की सामरिक शक्ति खूब सुसमृद्ध और सुसम्पन्न है। क्यों न हो, यह उक्त संसारकी एकतापर निर्भर करती है; एकमात्र एकता कला-कौशलके प्रोत्साहनमें, प्रोत्साहन गहरी तिजारत—संसारव्यापी तिजारत—में, तिजारत धनार्जन—प्रचुर धनार्जन—में, एवं धन शक्ति-संचयमें परिणत हुआ है। तभी तो वह आज विश्वसाम्राज्यपर अधिकार जमानेका दम भरता है। केवल जापानके सिवा इस संसारका मुकाबला करनेवाला दूसरा नहीं है; क्योंकि उसने भी तिजारतमें बड़ा नफा उठाया है। जबतक बरा-बरवाला न मिले तबतक युद्धमें अधिक आनन्द नहीं आता। जबसे रशियाको जापानने शिकस्त दी है और पहलेका पोर्टआर्थर पिछलेने दखल किया है तबसे बड़े बड़े राष्ट्र उसका दबदबा मानने लगे हैं। यह दबदबा इतना बढ़ा चढ़ा है कि पाश्चात्य

संसार यद्यपि कई राष्ट्रोंका है पर उस अकेलेको दबानेकी हिम्मत नहीं रखता।

विद्वत्ता।

विद्वत्ताके खयालसे भारतवर्ष भूतलपर सर्वश्रेष्ठ गिना जाता था। यहांकी विद्याकी शोहरत भूतलके किस खण्डमें नहीं पहुंची थी! वह सर्वत्र छायी हुई थी; तभी तो देश देशान्तरसे सानन्द लोग यहां आते थे और नाना प्रकारकी विद्याओंको सीखकर अपनी विद्वत्ताका परिचय देते थे। पर उस ज़मानेसे इस जमानेकी हालत एकदम बदली हुई है। जिस देशमें षड्द-र्शनोंने जन्म पाया, जहांका संस्कृत व्याकरण और उसके टीका-ग्रन्थ अद्वितीय हुए, जहांका चिकित्सा-शास्त्र सर्वाङ्ग परिपूर्ण हुआ, जहांका न्याय संसारमें लासानी कहलाया, जहां ज्ञान-विज्ञानका खजाना वेद साक्षात् वर्तमान है, वह देश—वह भारत-वर्ष आज गुलामीकी जंजीरमें जकड़े जानेके कारण अधोगतिको प्राप्त हो रहा है !!

उस प्राचीन विद्वत्ताका परिचय देनेवाले आज भी कुछ इने गिने विद्वान भारतवर्षमें हैं, पर आज दिन इन विद्वानोंकी कुछ-भी नहीं चलती। पाश्चात्य सभ्यताने बलपूर्वक ऐसा रंग जमाया है कि लोग उसी रंगमें रंग गये हैं, और इसलिये वे अपनी विद्वत्ताको तिलाञ्जलि दे बैठे हैं। जब अपनी विद्वत्ता ही नहीं तब अपनी सभ्यता कहां? और जब अपनी सभ्यतापर तरह

तरहके आक्रमण विदेशियोंके होते हैं, तब तो सत्ता भी खतरे— विकट खतरेमें पड़ी हुई है।

तर्क।

बुद्धिपर शान देनेके लिये तर्कशास्त्रकी रचना हुई है। बगैर तर्कशास्त्रके मननके युक्तियुक्त बहस कोई कर नहीं सकता, न किसीका व्याख्यान ही उत्तम और सर्वाङ्ग परिपूर्ण हो सकता है। भारतवर्षकी प्राचीन भाषा संस्कृतमें जो तर्कशास्त्र महर्षि गौतम और कणाद मुनिका रचा हुआ वर्त्तमान है वह भूतलपर बेजोड़ है और यही कारण है कि भारतीय पण्डित और देशोंके पण्डितोंको तर्कमें दबा देते हैं।

प्राचीन समयके इस बातकी पुष्टिमें अगणित उदाहरण दिए जा सकते हैं, पर उन्हें लोग 'स्वप्नकी सम्पत्ति' कह डालनेमें जरा न हिचकेंगे। इसलिये आधुनिक समयका उदाहरण लोगोंके दिमागमें धसेगा और उनपर कारगर होगा इसमें सन्देह नहीं।

लोकमान्य बालगङ्गाधरतिलक, जिनकी मृत्युसे इस दीन भारतको राजनीतिक क्षेत्रमें बेतरह धक्का लगा है, कई पुस्तकें रच गये हैं जो उनके प्रगाढ़ पाण्डित्य और सच्चे तर्कका परिचय दे रही हैं। उनकी बनायी पुस्तकोंमेंसे एक पुस्तकमें इस बातपर विचार किया गया है कि आर्य्यलोगोंका आगमन कहांसे हुआ। इसी विषयपर बड़े बड़े पाश्चात्य विद्वानोंने भी निबन्ध लिखकर अपने अपने विचार प्रकट किये, पर जिस समय लोकमान्यका

निबन्ध पढ़ा गया उस समय उन सबोंके निबन्ध फाके पड़ गये। आर्य्योंका आना किसीने कहींसे बताया, किसीने कहींसे, किन्तु लोकमान्यने उत्तरीय ध्रुवसे आर्य्योंका आगमन सिद्ध किया। इस बातकी पुष्टिमें उन्होंने वेदमें की गयी सूर्य्य, वायु और अग्नि-देवताकी स्तुतियोंको पेश किया एवं आर्य्योंके सभी शुभकार्य्य उत्तराभिमुख होकर सम्पन्न किये जाते हैं इसे भी दिखलाया। इन प्रौढ़ प्रमाणोंके सम्मुख जो तर्कके अटल सिद्धान्तोंसे जकड़े हुए थे, पाश्चात्य विद्वानोंने लोकमान्यके निबन्धको मस्तक झुकाकर सत्य माना और अपनी पराजयपर दांतों उंगली काटते रह गये। लोकमान्यका तर्क बनावटी नहीं था, वह सत्यतासे परिपूर्ण था। जिस समय सूर्य्य दक्षिणायन हो जाता था और कार्त्तिकका महीना उपस्थित होता था, उस समय सूर्य्यका दर्शन होना ही दुर्लभ हो जाता था और शीतके मारे जो कष्ट उन्हें सहने पड़ते थे वे वर्णनातीत थे। बरफका बेतरह जमना वहांका एक प्राकृतिक एवं स्वाभाविक दृश्य था, ऐसी दशामें ही—इस कष्टकी दशामें ही आर्य्योंने शीत— घोर शीत—दूर करनेके लिये सूर्य्य, वायु, और अग्नि-देवताकी स्तुतियां कीं; क्योंकि ये ही तीनों देवता शीतके नाशक हैं। सूर्य्य बरफको गलाता है और वायु शोषण करती है, एवं अग्निके संयोगसे शीतका कष्ट दूर भागता है। आर्य्योंके शुभ कार्य्य जो उत्तराभिमुख होकर होते हैं सो उनके प्राचीन गृहवाली दिशाके प्रेम—अलौकिक प्रेम—के परिचायक हैं।

प्रसिद्ध देशभक्त महात्मा गोपाल कृष्ण गोखलेको तर्कमें कोई शिकस्त न दे सका, इसे सभी पाश्चात्य लोग मानते हैं। वे जिस समय बहस करने खड़े होते थे उस समय उनके श्रीमुखसे जो वाग्धारा तार्किक सिद्धान्तोंसे प्लावित हो निकलती थी क्या उसे किसी पाश्चात्यके तर्क-बन्धन रोक सकते थे? कदापि नहीं! सब लोग उनके तर्कके सामने मस्तक झुकाते थे और उनकी बातोंका हृदयसे सम्मान करते थे। वे एक एक दिन चार-पांच व्याख्यान देते थे और श्रोतृ-मण्डलीको बिना सन्तुष्ट किये नहीं रहते थे।

जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडेका नाम प्रौढ़ तर्कके लिये प्रसिद्ध है। इनकी तर्क-प्रणाली इतनी उदार और तथ्यसे पूर्ण थी कि विपक्षी लोग भी इनकी मुक्तकंठसे प्रशंसा किये बिना नहीं रहते थे। जो बहस करनेके लिये अदालतमें इनके समक्ष उपस्थित होते थे उन्हें ये उनकी ही बातोंसे कायल करते थे। जो मनुष्य किसी प्रकारके दोषका शिकार रहता उसे तर्कके साथ ऐसी ऐसी शिक्षायें देते थे कि वह यह नहीं जानता था कि मेरे दोष इन्हें विदित हो गये, और वह स्वयं उन्हें परित्याग करता था। इसीका नाम समीचीन तर्क है।

काशीनिवासी सरयू पारीण ब्राह्मण महामहोपाध्याय पंडित शिवकुमार शास्त्री जैसी जैसी अनूठी तार्किक युक्तियोंका प्रयोग करते थे वैसी वैसी शायद पाश्चात्य संसारमें हैं ही नहीं। पाश्चात्य लोग तर्क करनेमें अपना तर्कशास्त्र (Logic) उपस्थित करते हैं जो केवल वाक्यमात्रकी जांच करता है कि अमुक वाक्य

दूषित तो नहीं है। जो काम काव्य-प्रकाश, साहित्य-दर्पण प्रभृति ग्रन्थोंके दोष बतलानेवाले अंश करते हैं वही काम पाश्चात्योंका तर्कशास्त्र (Logic) करता है। यदि पाश्चात्योंका तर्कशास्त्र किसी अंशमें भी संस्कृतके प्रसिद्ध विद्वान उक्त शास्त्रीजीके तर्कका अनुसरण करता तोभी वह भारतीय दृष्टिमें श्रद्धाका पात्र बन जाता। पाश्चात्योंके खण्डन-मण्डन-सम्बन्धी तर्कका तो कहीं पता ही नहीं लगता; न कभी किसीने कोई पाश्चात्य तर्क ही उपस्थित किया, न इनके कभी खण्डन-मण्डनात्मक शास्त्रार्थ ही देखनेमें आये। पाश्चात्य विद्वान मैक्समूलरने भारतीय पण्डितोंकी सहायतासे वेदोंका अनुवाद जिनके अंदर वैज्ञानिक बातें भरी हुई हैं, भले हो किया हो, पर व्याकरण और तर्कशास्त्रोंका अनुवाद आजतक किसी पाश्चात्यने नहीं किया।

महामहोपाध्याय पण्डित हरिहर कृपालु न्यायाचार्य्य जो इस समय पटनेमें बाबू रामनिरञ्जनरायकी पाठशालामें अध्यापनका कार्य्य सौ रुपये मात्र वेतन लेकर करते हैं ऐसा तर्क उपस्थित करते हैं कि वादी आगे बढ़ नहीं सकता; बढ़े भी वह कैसे? उसे समीचीन एवं प्रौढ़ तर्कसे ये ऐसा जकड़ते हैं कि वह किसी तरफ जरा भी हिल नहीं सकता। आप भी सरयूपारीण ब्राह्मण हैं और रात-दिन पठन-पाठनका कार्य्य किया करते हैं। आपका समय सर्वदा तार्किक विषयोंके मननमें ही व्यतीत होता है। आपका तर्क उक्त महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्रीके समान होता है।

साहित्याचार्य पण्डित रामावतार शर्म्मा एम०ए०का तर्क भी बड़ा ही प्रौढ़ होता है। आप भी सरयूपारीण ब्राह्मण हैं और पटना कालेजमें प्रोफेसरके पदपर अध्यापनका कार्य्य करते हैं। आपका तर्क लोगोंको ऐसा जकड़ता है कि वे उचित मार्गपर फौरन चले आते हैं। आपका तार्किक विद्याभ्यास इतना चढ़ा-बढ़ा है कि पण्डित-मण्डली उसके सामने मस्तक झुकाती है।

भारतीय तर्कके नाते कुछ अर्वाचीन विद्वानोंका नाम उल्लिखित किया गया है जिसे दिग्दर्शन मात्र ही समझना चाहिये। यह मानी हुई बात है कि पाश्चात्य तर्कशास्त्र (Logic) वाक्यमें शाब्दिक और आर्थिक दोषके सिवा और कुछ तथ्य नहीं दिखाता। हाथ कंगनको आरसी क्या? आप वाचक वृन्द, Deduction और Induction Logic देख सकते हैं एवं मेरे लेखकी पुष्टि उसमें पा सकते हैं।

समाज।

भारतीय समाज प्राचीन समयमें ऐसा सुसंगठित था कि कर्मके अनुसार भारतीयोंकी जाति मानी गयी या यों कहिये, कि गुण तथा कर्मने भारतमें प्रधान स्थान पाया था। इसीको लेकर भारतीय समाज चलता था; इसीने मुख्यतया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रकी उत्पत्ति की और पहले तीन जन्म और संस्कारके कारण द्विज कहलाये। ये द्विज आपसमें वंशका परिचय देते हुए सहभोज्यता सम्पन्न करते थे तथा इनमेंसे पहले दो आपसमें

वैवाहिक सम्बंध भी करते थे। केवल कृषि-कार्य्य करनेसे नाम-मात्रकी वैश्य संज्ञा थी, पर उत्पीड़नसे देशके बचानेमें सभी भाग लेते थे, इसलिये यथार्थ क्षत्रियोंकी संख्या कहीं अधिक थी। कला-कौशलमात्रसे जो अपनी जीविका चलाते थे वे शूद्र संज्ञा पा गये; पर ये पात्रबहिष्कृत नहीं थे। हां, जिन्हें कुत्तों-का मांस खाना एवं विड्वराहोंका रखना प्रिय था, या जो निहा-यत गन्दे रहते थे वे अन्त्यज इसलिये हुए कि उनमें न गुणोंका समादर ही था और न वे उत्तम कर्म्म ही किया करते थे। यही कारण था कि वे अस्पृश्य हो गये और अपने उद्धारकी चेष्टातक उन लोगोंने नहीं की।

कला-कौशलसे जीविका निर्वाह करनेवाले शूद्र इसलिये कहलाये कि भारत ऐसे सम्पन्न देशको कला-कौशलोंकी बहुत कम जरूरत थी। यह भारत अमूल्य रत्न, सुवर्ण, रजत और विविध धातुओंकी इतनी पर्वताकार राशियोंका जन्मदाता था कि इन सम्पत्तियोंके सामने दूसरी वस्तु—कला-कौशल द्वारा बनायी हुई वस्तु—का अधिक समादर न होना बिलकुल प्राकृतिक है। इसपर भी योगविद्यामें पारदर्शिता प्राप्त किये हुए ब्राह्मणोंने जिन मानसी सिद्धियोंका प्रदर्शन कराया उनका मूलकारण तपोबल था और वे इसी तपोबलकी वृद्धि बराबर किया करते थे। इसके द्वारा कोई भी कार्य्य असाध्य नहीं था, सारी बातें सम्पन्न होती थीं। आज दिन पाश्चात्य संसार जिन बातोंपर घमण्डमें चूर रहता है वे सब बातें कहते सम्पन्न होती थीं, क्योंकि योगसि-

द्धियोंका ऐसा ही प्रभाव है। इन बातोंमें मिथ्याका लेशतक नहीं है। इन बातोंकी खूब जांच की जा सकती है।

अर्वाचीन समयमें समाज एक ऐसे दूषणसे सन्नद्ध है जिसका अंकुर भारतीय सामाजिक जीवनमें महाभारतके समयमें वृद्धिको प्राप्त हुआ। यही बढ़ते बढ़ते पृथ्वीराज व जयचन्द्रके बीचमें एक विशाल वृक्ष बन गया। यह दूषण था फूट, आपसकी घृणा, द्वेष, वैर जिसके कारण सामाजिक जीवन पलट गया और वह बुरी तरह बदल गया, जिसका परिणाम आज दिन अधोगति है—भारतका दीन-हीन दशामें गिर जाना है। ऐसा होनेपर भी विदेशियों—म्लेच्छों—के घोर लुण्ठनपूर्ण आक्रमण करनेपर भी, अर्वाचीन भारतीय समाजमें प्राचीन सामाजिक कृत्योंकी छायामात्र दीख पड़ती है। आज दिन इस अधोगतिकी अवस्थामें भी दम्पतिका विशुद्ध प्रेम, सन्तानोंकी गुरुजनोंके प्रति आज्ञाकारिता, अपने धर्म्ममें कट्टर विश्वास, बड़े लोगोंका पूर्ण समादर जो भारतमें दिखायी देता है वह शायद ही कहीं हो।

पाश्चात्य संसार दम्पतिके विशुद्ध प्रेमसे परिचित नहीं, बड़े होनेपर सन्तानोंकी आज्ञाकारिता नाममात्रकी रह जाती हैं; उनका क्या धर्म्म है, उसके सिद्धान्त पुष्ट तर्ककी भित्तिपर अवस्थित हैं कि नहीं इसकी बाबत उक्त संसार कोरा है। अगर कोई बड़ा गुण उक्त संसारमें है तो यही कि उसकी जातियोंमें सहानुभूतिकी मात्रा कहीं अधिक है, अपनी जरूरतको वे खूब

समझती हैं और उसे जैसे हो, पूर्ण किये बिना नहीं रहतीं। शत्रु का सामना करनेके लिये सर्वोत्कृष्ट भौतिक बल उन्होंने स्वयं सम्पन्न किया है, यद्यपि मुख्य षड्वर्ग—छः शत्रुओं—से वे सदैव पराजित रहा करती हैं। इसकी ओर उनका तनिक भी ध्यान नहीं है न हो ही सकता है, क्योंकि परमार्थ उनके धर्म्ममें है ही नहीं न पुनर्जन्म ही वे मानते हैं, यद्यपि उनके गुरु ईसा मारे जानेपर कब्रके अन्दरसे कुछ दिनों बाद निकल आये थे और उपदेश दिया था; क्योंकि मरनेके अनन्तर जीव धारण करना ही पुनर्जन्म है।

कला-कौशलोंकी परिचायक वस्तुओंमें दग़ा भरा पड़ा है। यही उक्त संसारकी खूबी है! किसी चीज़के तोड़ने या टूटनेपर उसकी लागत एक धेलेकी भी नहीं जान पड़ती, यह कैसी सचाई है! ऊन कह कर सनकी चीज़ें बनाना-बेचना; कुछ कह कर कुछ देना यह उक्त संसारको ही शोभा देता है! सत्यका लेश नहीं, मिथ्याका प्रचार-इससे बढ़कर धर्म्मका भी निरादर—सिवा उक्त संसारके दूसरा कदापि नहीं करता। दोमें मतभेद पैदाकर स्वयं शासन-सूत्र हाथमें लेना यह सत्यताका परिचायक नहीं; इसे लोग—सभ्य लोग—कुकर्म्म कहा करते हैं। भले बुरेका विचार न कर स्वार्थकी पूर्त्ति करना महापाप है; सभ्य लोग-सभ्यताके अभिमानी इसे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं।

प्रथा।

भारतवर्षकी जितनी प्रथायें हैं वे सब धार्मिक भित्तिपर

अवस्थित हैं। एक भी प्रथा भारतवर्षकी ऐसी नहीं जो घृणित समझी जाय, न कोई चाल ही ऐसी है जिसको कोई भी सभ्यताभिमानी दूषित बतला सके।

खान-पानके सम्बन्धमें भारतवर्षने जिस प्रथाका अवलम्बन किया हैं वह भी समीचीन है। छुआछूतका विचार करनेकी जो प्रथा है उसका तात्पर्य्य सात्विकतासे है। जल और अग्नि द्वारा जो मुख्य शुद्धि भारतीय मानते हैं सो यथार्थमें शुद्धिके दो ही द्वार हैं। सब प्रकारकी शुद्धियोंमें भारतीय मनकी शुद्धि मुख्य मानते हैं। जहां मनकी शुद्धि है वहां कार्य्यकी शुद्धि अवश्य है; क्योंकि विचार—भले हों अथवा बुरे—पहले पहल मनमें ही उठते हैं पश्चात् कार्य्यरूपमें परिणत होते हैं।

पाश्चात्य संसार दो बातोंको निषिद्ध बतलाता है—(१) सती-प्रथा और (२) विधवाओंका पुनर्विवाह न होना। वाचकवृन्द! सती-प्रथाकी नींव लोगोंकी जबर्दस्तीपर निर्भर न थी, बल्कि स्त्रियोंके सतीत्वपर उसने अपनेको अवलम्बित किया था। इस बातकी पुष्टिमें एक नहीं अनेक उदाहरण वर्त्तमान हैं। हां, जिसका पुत्र वीर होता था वह पतिके साथ जलती न थी, अन्यथा पतिके वियोगमें मरना ही वह पसन्द करती थी और खुशी खुशी जलती थी। Bengal Peasant Life नामक पुस्तकमें जो पादड़ी लाल विहारी देने बंगालकी एक रमणीका पहले खुशीसे सती होनेकी इच्छासे चितापर पतिसे मिलकर सोना और पीछे भागनेकी इच्छा प्रकट करना और लोगों द्वारा

ज़बर्दस्ती उसका जलाया जाना लिखा है वह आधुनिक विदेशी सभ्यताका प्रभाव था जिसमें सतीत्वकी रक्षाका नामोनिशान तक नहीं है। हां, आधुनिक समयमें भी विदेशियोंके अत्याचार न सहनेकी ही इच्छासे पद्मिनी आदि सैकड़ों स्त्रियां जल गयी हैं पर शाही सुखोंपर लात ही मारी है। और सतीत्वहीके कारण पुनर्विवाह भी उनने नहीं किये कि पातिव्रत्यमें धक्का न लगे। यद्यपि मनुने पुनर्भू संस्कारका जिक्र किया है पर वह अनिवार्य्य नहीं है,यदि ब्रह्मचर्य्यका पालन करती हुई कोई रमणी अपने प्राणेश्वरके मृत्यु-वियोगमें अपनी ज़िंदगी बिता दे, तो उसकी मनुजी प्रशंसा करते हैं। हां,व्यभिचारकी हर हालतमें निंदा है। इसको ओर यदि किसीका ध्यान नहीं है तो पाश्चात्य संसारका। उसने व्यभिचारको, स्वेच्छाचारिताको स्वाधीनताका परिचायक समझा है।

बाल-विवाहकी बाबत जो दोषारोपण है वह भी विदेशियोंके आक्रमण और अत्याचारके फलस्वरूप है। जवान लड़कीको घरमें रखनेसे विदेशी घरके मालिकको आबरू लेनेपर तुल जाते थे, बस, यही कारण हुआ कि लड़कपनमें शादी हो जाती और लड़कियां अपनी ससुरालमें रहा करती थीं। हां, इन दिनों बाल-विवाहकी प्रथा उठीसी है, तथापि जहां मनुष्योंकी तैंतीस करोड़की संख्या है वहां कोई भी काम जबतक खूब जोर-शोरसे न चल पड़े, तबतक सफलताका पूरा दबदबा नहीं कहा जा सकता।

गुण-दोष

जहां गुणोंने स्थान पाया है वहां दोषोंने भी अपना अधिकार

करनेमें बाकी न छोड़ा। इस सिद्धांतकी पुष्टिमें चन्द्रदेवका उदाहरण बड़ा ही उपयुक्त है। चन्द्रदेव सारे संसारको आह्लादित करते हैं, प्रकाशित करते हैं, अन्धकारका निवारण करते हैं, लोकप्रियता उनकी अत्यन्त प्रशंसनीय है इसमें संदेह नहीं; परंतु उनके मध्यमें जो कालिमा, कलंककी छाया दिखलायी देती है वह उनकी कीर्त्तिमें धब्बा लगाती है। कैसे २ कांतिमान् रत्न भूगर्भसे उत्पन्न होते हैं, पर उनमें भी दागका आ जाना उनके मूल्यके लिए हानिकर समझा जाता है। कवि कविता—उत्तम, अनूठी कविता—करता है; परन्तु किसी भी प्रकारका दूषण यदि उसमें आ गया तो उसका सौन्दर्य्य—मुग्धकारी सौन्दर्य्य—लुप्त-प्राय हो जाता है। इसी कारण यह सिद्धान्त निर्णीत है कि—

'जड़ चेतन गुण-दोष-मय, सकल कीन्ह करतार।
सन्त-हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥"

ऐसी अवस्थामें गुण दोषोंका विवेचन करना बड़ा कठिन है। परन्तु जो गुण है वह सभीकी दृष्टिमें गुण है और जो दोष है वह भी सबकी दृष्टिमें दोष ही है। यह नहीं हो सकता कि किसीकी दृष्टिमें एक ही बात गुण भी हो और दोष भी, जब-तक कि उसे परिस्थितिने वैसा करनेके लिये बाध्य न किया हो। परिस्थितिके बाध्य करनेपर भी, यदि कोई सहज उपाय निकल आता है, तो उस अवस्थामें फिर 'दूधका दूध और पानीका पानी' वाली कहावत चरितार्थ होती है एवं गुण-दोषकी विवेचना प्रत्यक्ष हो जाती है।

पाश्चात्य संसार भारतीयोंको जंगली समझता है और ये उस संसारको। वह इन्हें कलाकौशलोंसे अनभिज्ञ, अशिक्षित कहनेका दम भरता है और ये उसे स्वार्थपरायण आदि आदि उपाधियोंसे विभूषित करते हैं। पर इन कोरे झगड़ोंसे भरे तर्कमें वाचकवृन्द, आप क्या तथ्यातथ्यके निर्णयपर पहुंच सकते हैं? कदापि नहीं। इसलिये गोस्वामी तुलसीदासके दोहेके अनुसार सारी सृष्टिको गुण-दोष-मय जानकर गुणोंका ग्रहण और दोषों परित्याग करना ही उचित है, यदि परिस्थिति बाध्य न करती हो।

धर्म्म।

धर्म्मका अर्थ यदि कर्त्तव्य समझा जाय तो संसारका बड़ा उपकार हो। इस शब्दका अर्थ जबसे मतमतान्तर अथवा सम्प्रदाय समझा जाने लगा है तबसे संसारमें गुणोंकी संख्या बहुत कम पायी जाती है और दोषोंकी संख्या इतनी बढ़ रही है कि जहां देखिये वहां दोष ही दोष नजर आते हैं। धर्म्मको सम्प्रदाय मानकर कर्त्तव्यका जो गला घोंटा जा रहा है और संसारमें जो द्वेषकी, घृणाकी अग्नि भड़कायी जा रही है उसका फल संसारके लोगोंको रो रोकर भोगना पड़ रहा है और आगे आगे पड़ेगा। हां, यदि कर्त्तव्य उसे मान लें और मुक्तकण्ठसे अपना कर्त्तव्य समझा दें तो सम्प्रदाय मानकर जो हानि होनी सम्भव है वह निवारण की जा सकती है।

विदेशियोंने जो धर्म्मके नामपर आत्याचार किये हैं और कर रहे हैं वे क्या सभ्य संसार—हमदर्द संसार—से कहीं भी छिपे हैं ? कदापि नहीं। उक्त संसार विदेशियोंके अत्याचारके ऊपर घृणासे थूकता है और यह कहता है कि परमात्मा तुम्हारा नाम भूतलपरसे उठा दे। क्या यह शाप मिथ्या हो सकता है ? कदापि नहीं। सबके हृदयमें परमात्माका वास है, क्योंकि वह सर्वव्यापी और विश्वात्मा है, उसकी सृष्टिमें जो उत्पन्न हुए हैं सब आपसमें उसी एक परमपिताके पुत्र हैं; ऐसी अवस्थामें अपना अपना कारण प्रत्यक्षकर सब कर्त्तव्य निर्धारित करें, बहुत सम्भव है कि परिस्थिति उन्हें कारणवश कुकर्म्म करनेके लिये दबाती हो, पर समुदायके लोगोंमेंसे बहुतोंकी बुद्धि उन्हें ठीक और अहानिकर रास्ता बता सकती है जिससे वे गुमराह नहीं हो सकते और न परमात्माकी सृष्टिको हानि ही पहुंचा सकते हैं।

जो बातें अच्छी हैं वे सब सम्प्रदायोंके लिये अच्छी हैं। ऐसी हालतमें साम्प्रदायिक नियमोंपर जोर देकर भले बुरेका विचार न करना—खासकर मानवजातिके लिये—बड़ी भूल है।

शोकके साथ लिखना पड़ता है कि मुसलमानोंके धर्म्ममें कुर्बानी करना जो साम्प्रदायिक आज्ञा है वह निर्दयताकी पराकाष्ठा है, और मुहम्मद् साहब, जिन्हें उक्त धर्म्मके अनुयायी रसूलकी उपाधि देते हैं, की वह आज्ञा है न कि उस अल्लाहतालाकी जिसकी रहमत सारी खिलकतपर बरसा करती है। यदि कोई मुसलमान पाप करे, तो कयामतके दिन उसका इन्साफ रसूल

साहब करेंगे और पापके एवजमें उसे दोजखकी आगसे यह कहकर बचा लेंगे कि यह मेरा बन्दा है। वाहरे धर्म्म! इसी प्रकार ईसाई धर्म्ममें भी यह बात मानी हुई है कि हजरत ईसाने ईसाइयोंके पापको लेकर क्रूसपर कीलोंसे जड़े जाकर जो आत्मविसर्जन किया है वह उनके गुनाहोंका नाशक सिद्ध हुआ है। इसीलिये ईसाई संसार पापकी परवा नहीं करता न उससे घृणा ही करता है।

भारतवर्षके लोगोंका धर्म्म पुकार पुकार कर कहता है कि पापका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। जो कुछ भला बुरा कर्म किया जाता है उसका फल भोगना अनिवार्य है, वह रुक नहीं सकता। यहां भी शास्त्रतः तो नहीं पर तान्त्रिक साहित्यके अनुसार कापालिक सम्प्रदाय नरवलि देता था और नर-मांससे हवन-सम्पन्न करता था। पशुवलि तो शक्तिके उपासक आजदिन भी देते हैं; पर 'अजापुत्र वलिर्दद्यः देवोदुर्बल घातकः' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

मैं धर्म्मके नामपर घोर अत्याचारका एकदम विरोध करता हूं—चाहे वह विदेशियों, विधर्म्मियों द्वारा हो अथवा भारतीयोंके द्वारा। प्यारे वाचकवृन्द, किसी जीवको मारकर अपने पेटमें रख लेना, या घोड़े, बैल तथा बकरेका वध कर अपना कार्य साधन करना न्यायकर्ताकी सृष्टिके साथ घोर अत्याचार है। चीन देशके रहनेवाले तो किसी भी जीवको अपना खाद्य बना लेते हैं। उनके समान जीवहिंसा शायद ही कोई असभ्य भी करता हो।

इस जमानेमें हिंसासे बढ़कर भारतमें दूसरा पाप नहीं गिना जाता। इसीलिये महात्मा गांधी अहिंसाव्रतके व्रती होकर इसका पूर्णरूपसे प्रचार कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि बुद्धदेवके समयमें जिस प्रकार हिंसाका नामोनिशान नहीं था, उसी प्रकार हिंसा भारतसे उठा दी जाय। बात भी ठीक है! जिस देशमें ऋषियोंने जन्मग्रहण किया है उस देशमें हिंसाका नाम रहना ही बुरा है।

रीति-नीति।

भारतवर्षकी एक भी रीति दूषित नहीं कही जा सकती, यदि उसकी परिस्थितिका विचार भलीभांति किया जाय। अर्वाचीन समयमें कुछ सदियां व्यतीत हुई होंगी जब गंगासागर स्थानपर अथवा गंगातटपर, वे स्त्रियां जिनकी कोख न खुलती थी, अपने प्रथमजात शिशुको गंगामें फेंक दिया करती थीं और वे प्रथमजात शिशुके चढ़ानेकी मंता मानती थीं। यह बात भी कानूनन रोक दी गयी और इस कुप्रथाके दूर करनेके लिये राजाको धन्यवादका पात्र समझना चाहिये। इसी प्रकार विदेशियोंके प्रभावसे ऐयाशीकी मात्रा अधिक बढ़नेपर ज्यों २ सतीत्वका बन्धन शिथिल हुआ त्यों २ लोभवश पुरोहितोंने, कुछ स्त्रियोंके पतियोंकी मृत्युपर अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके अभि-प्रायसे, क्योंकि उनके आभूषण आदि वेही ले लिया करते थे— स्त्रियोंकी इच्छा न रहनेपर भी उन्हें पतिके साथ बांधकर जिन्दा जलाना आरम्भ किया था जो काननन रोका गया। वे पहले

विधवाओंको सतीधर्मकी शिक्षा देते थे और जब बांध देते थे तब अनाथ स्त्रियां विवश हो जाती थीं। इस कुप्रथाके निवारण-के लिये भी राजा धन्यवादका पात्र है।

भारतवर्ष आभ्यन्तर और बाह्य शुद्धताके लिये परम प्रसिद्ध है। अशुद्धियोंसे पूर्ण रहनेके ही कारण अछूत जातिकी उत्पत्ति हुई है जिसका स्पर्शतक करना पाप समझा गया और उसकी छायातक निवारणीय सिद्ध हुई। इस बातमें घृणाका लेशतक नहीं है, पर विचारोंकी सात्त्विकी शुद्धि अवश्य है जिसके लिये स्पर्श—नहीं नहीं छायातक निवारणीय समझी गयी। पाश्चात्य संसार सब प्रकारकी मलिनताको अपने स्वार्थके लिये अंगीकार करता है। अपने पाकालयमें मेहतर भंगीतकसे पाक सम्पन्न करनेमें सहायता लेता है।

भारतवर्षकी नीति सर्वदा उदार रही है और इस गिरी अवस्थामें भी उसमें अनुदारताका लेश नहीं है। जिस कार्यमें आंखें उठाकर देखें उसी कार्यमें उदारताका सूत्र जान पड़ेगा। जीवनके प्रत्येक कार्यमें—क्या मित्रता, क्या शत्रुता सभीमें, प्यारे वाचकवृन्द, आप उदारताको पावेंगे। संकीर्ण नीति भारतवर्षकी कहीं भी,कभी भी किसीके साथ नहीं रही, चाहे कोई इसके प्रति कैसे ही भाव रखता हो। उदाहरणके लिये पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरीका दृष्टान्त वर्तमान है कि बार बार पहलेने दूसरेको गिर-फ्तारकर उसके साथ राजाकासा व्यवहार किया और उसे मुक्त कर दिया, जिसके लिये दूसरेने कृतघ्नता—घोर कृतघ्नता—की।

पाश्चात्य संसार एवं विदेशियोंकी रीतियोंकी यदि आलोचना की जाय तो जान पड़ेगा कि भारतवर्षसे भिन्न देशवाले कैसी २ कुरीतियोंको अपने समाज और जीवनमें स्थान दिये हुए हैं। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध उनमें ऐसा है जैसे कोई किसी खेलीकी संगतिमें रहे और उसके साथ व्यवहार करे। इसपर भी थोड़े २ दिनोंकी जीवनयात्रामें पुरुषोंकी कौन कहे, स्त्रियोंके एक नहीं दस दस विवाह सम्पन्न किये जाते हैं। अब वाचकवृन्द, जरा सोचनेकी बात है कि वारनारियोंसे किस तरह वे गृहस्थकी स्त्रियां कम हो सकती हैं जो विवाहको गुड़ियाका खेल समझती हैं और घोर व्यभिचारको एक स्वाभाविक कार्य्य समझती हैं। रुधिर जिसमें पवित्र रहे ऐसा काम करना उक्त संसारको उचित है; यह नहीं कि थोड़ीसी सम्पत्ति और थोड़ेसे आरामके लिये—सो भी अभिनवताके ख्यालसे—अपनी इज्जत और आबरू खो बैठना। हां, जिस देशने, जिस संसारने धनहीको सर्वोच्च स्थान दिया है, उसकी बुद्धि और विवेचनाकी बात कहांतक चलायी जाय? खान-पान, विहार और ऐशोआराम ही जिस देश, जिस संसारका सर्वोपरि सिद्धांत है, किसी भी प्रकारसे हो, धन एकत्रित करना जिसका मुख्य उद्देश्य है, उसके समक्ष उदारता, प्रतिष्ठा, रुधिरकी शुद्धता, धर्म्म, कर्तव्य, सभ्यता एवं परमात्माकी ओर लगन आदि बातोंका जिक्र ही निरर्थक है। खैर, भारतवर्ष इस गिरी हुई अवस्थामें भी अपने प्रातःस्मरणीय महात्मा तुलसीदासजीके इस दोहेसे

पूरी नहीं तो अधूरी ही सही, चौथाई ही सही सहानुभूति रखता है—

'तुलसी सोई चतुरता, रामचरण लवलीन ।
परमन, परधन हरणको, वेश्या बड़ी प्रवीन ॥'

विदेशियोंकी नीति—कुटिल नीति, संकीर्ण नीतिका तो कहना ही क्या है! इसका नमूना, प्यारे वाचकवर्ग, यदि आप जरासा भी विचारसे काम लेंगे आपको अपने जीवनकी अधिकांश घटनाओंमें मिलेगा । कुछ घटनाएं उदाहरणके रूपमें दी जाती हैं जिनके द्वारा तथ्यातथ्यका निर्णय बिलकुल सुलभ हो जायगा ।

जिस समयसे विदेशियोंका आगमन भारतवर्षमें हुआ उस समयसे जिस निर्दयताके साथ भारतवर्ष लूटा गया उसका अन्त नहीं दिखलायी पड़ा । विदेशियोंने चढ़ाइयांकर सिर्फ भारतकी सम्पत्तिको ही लूटा हो सो नहीं, औरत, मर्द और बच्चोंतकको लूटा और उन्हें गुलाम बनाकर बेच डाला । उस वक्त अपनी इज्जत-आबरूका बचाना यहांतक मुश्किल हो गया कि भारतवासी स्त्रियां पर्दे नशीनी इख्तियार करने लगीं । जब इतनेसे भी काम न चला तब बाल-विवाहकी प्रथा जारी की गयी । यद्यपि यहांतक उपायोंका अवलम्बन किया गया तथापि विदेशियोंने मनचाहा उपहार—कन्याओंकी भेंट—ले ही लीं । यदि वे ऐसा करनेसे रोके गये तो गांवका गांव जला देना, सारे शहरको कत्लेआमकी आज्ञा सुना देना,जो जी चाहे कर डालना, तलवार-

के जोरसे विधर्मी बना डालना, नष्ट भ्रष्ट कर देना एक मामूली बात थी।

आजदिन यद्यपि पाश्चात्य संसार भारतवर्षपर ही क्या सारे संसारपर कब्जा किये हुए है और कानूनी शासन कर रहा है, तथापि लोग वे बातें भूल गये हैं जिनका उल्लेख—जिन अत्याचारों का उल्लेख—ऊपर किया गया है। हां, उत्पीड़न—कानूनके जरिये घोर उत्पीड़न—की पुकार पूर्वीय संसार मचा रहा है, पर नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज कौन सुनता है ? भारतवर्षका अस्तित्व मिटे नहीं इसलिये भारतवर्षके सच्चे हितैषी नेता लोग उत्पीड़नके विरुद्ध आवाज उठाने लगे। पर इसका फल यह हुआ कि वे जेलके शिकार हुए और उत्पीड़न दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता गया। तब देशके प्रसिद्ध नेताओंने यह सोचा कि जबतक देशका शासन अपनी इच्छासे नहीं होगा तबतक शासनके दमनसे बचाव नहीं है; बस, इस सिद्धांतको आगे रख लोकमान्य बालगंगाधर तिलक स्वतंत्रता और स्वराज्यके संदेशको देशके प्रत्येक व्यक्तितक पहुंचाने लगे जिसका फल यह हुआ कि वे जेलके अतिथि हुए। वहांसे आनेपर भी वे निरन्तर स्वराज्यके उद्योगमें अपना जीवन व्यतीत करने लगे। देश-सेवा उनने बहुत की; पर मृत्यु सभीके लिये अनिवार्य्य है, इसलिये उन्हें भी मृत्युमुखमें विलीन होना पड़ा। जो हो, उक्त लोकमान्यकी मृत्युके समय सारे देशने उनको देश-सेवासे अत्यन्त सन्तुष्ट हो उनकी लोकमान्यताका परिचय दिया और सारे भारतमें इसका शोक मनाया गया जिसे देखकर

शासकमण्डली दहल उठी और उसे यह भलीभांति ज्ञात हो गया कि भारतमें उत्पीड़नके कारण अभूतपूर्व उत्तेजना फैली है।

देखिये, कैसी कुटिल नीति—संकीर्ण नीति—का अवलम्बन पाश्चात्य संसार कर रहा है कि जिसके द्वारा उसे स्वर्गसुख प्राप्त है उसका ही दमन कर रहा है। उनकी मृत्युके पश्चात् महात्मा गांधीने स्वराज्य-प्राप्तिके लिये उद्योग करना शुरू किया और असहयोग-प्रचार कर जेलके अतिथि हुए। ऐसे अहिंसाव्रतके व्रतीको जेल भेजना पाश्चात्य संसारको ही शोभा देता है! उक्त महात्मा जगद्गुरु होनेकी योग्यता रखते हैं और इसको जगत् मान भी रहा है।

उस समय उक्त महात्माजीके छोड़े जानेका प्रस्ताव न हुआ हो सो नहीं, पर उनसे पूछनेपर वे बोले कि यदि सब राजनीतिक कैदी छोड़े जायं तो मुझे भी छोड़ा जाय अन्यथा नहीं; क्योंकि हम लोग एक ही उद्देश्य—एक ही लक्ष्य—के लिये जेल भेजे गये हैं। खैर, न सब लोग छोड़े जाते और न महात्माजी छूटते। प्यारे वाचकवृन्द, देखी आपने पाश्चात्योंकी कुटिल नीति! तात्पर्य्य यह है कि अकेले महात्माजीको छोड़नेके लिये कहेंगे और वे अकेले छूटना कदापि पसन्द न करेंगे; बस, वे न छूटेंगे। यह बात भी कब की जा रही है? उस वक्त जब स्वयं पाश्चात्य संसार इस बातको अनुचित बता रहा है। इसका नाम मुंह छूना है—इसीका नाम घोर कुटिल नीति है। भारतवर्ष ऐसी कुटिल नीति कदापि पसन्द नहीं करता; न उसने कभी भी-

प्राचीन समयसे आजतक—इस कुटिल नीतिका अवलम्बन ही किया। ऐसी नीति पाश्चात्योंके ही बाटे रहे यही अच्छा है। भारतवर्ष जो कुछ करना चाहता है वह साफ तौरपर, दगा करके नहीं।

अनुकरणीय जीवन ।

अनुकरणीय जीवन यथार्थ आदर्श जीवन अथवा प्राकृतिक जीवन है। इसीके द्वारा मानव-जाति सभ्यताके शिखरपर जा सकती है, नहीं नहीं, जो विश्वका सर्वोच्च पद है वह भी उसे दे-चाहे आपसे आप मिल सकता है। जिसने इस जीवनका अवलम्बन किया वही यथार्थमें अवतार—परमात्माका अवतार—माना जाता है और उसी तरह पूजा और सम्मानका पात्र बन जाता है।

अनुकरणीय जीवन वही है जिसकी शिक्षा प्रकृतिदेवीसे मानव-जातिको मिली है। यह जीवन अनुकरणीय इसलिये है कि ऐसा जीवन व्यतीत करनेवाले मुनियोंकी समतामें आ जाते हैं और वे विश्वके सामने आदर्श जीवन प्रस्तुत करते हैं जिसकी महिमा वर्णनातीत है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि कौन कौनसे कार्य्य करनेसे, किस किस सिद्धान्तके कार्य्य रूपमें परिणत करनेसे, कौन कौन गुणोंका अवलम्बन और किन किन दोषोंके त्याग करनेसे, कैसी शिक्षा देनेसे, कैसी विद्या पढ़नेसे तथा कैसे उपदेश, व्याख्यान देनेसे मानव-जाति अनुकरणीय जीवनकी अधिकारिणी बन सकती है।

प्यारे वाचकवृन्द, इसी प्रकारका प्रश्न यदि प्राचीन कालमें

कोई भी व्यक्तिविशेष करता तो वह कर ही नहीं सकता, क्योंकि उसे करनेका अवसर ही नहीं था; सबोंके जीवन अनुकरणीय थे; किन्तु आजदिन हमारा प्यारा भारतवर्ष इतना गिर गया है, ऐसी अधोगतिको प्राप्त हुआ है कि मुझे अनुकरणीय जीवन बतलानेकी आवश्यकता आ पड़ी है।

जीवनको अनुकरणीय बनानेके लिये आडम्बर तथा विडम्बन-से दूर रहना पड़ता है। सादगीकी मात्रा, स्वाधीनता, उदारता, समवेदना एवं सहानुभूति, उपकार-बुद्धि आदि आदि गुणोंकी इस जीवनमें भरमार रहती है। तभी तो किसीका भी जीवन अनु-करणीय बन जाता है।

प्रकृतिदेवीने आडम्बर तथा विडम्बनका प्रदर्शन कभी भी नहीं कराया, तब फिर न जाने क्यों लोग इतने आडम्बरप्रिय हो रहे हैं? हा, इस बातके कई उदाहरण प्रत्येक दिन दृष्टिगोचर होते होंगे, पर आडम्बर एवं विडम्बन जिन्हें निरर्थक एवं हानिकर होता हुआ भी प्यारा है उनके सुधरनेका कोई ढंग नहीं नजर आता, जबतक कि वे स्वयं आडम्बर और विडम्बनकी बुराइयोंको समझ-कर न छोड़ें। एक महाशय पटना एग्जिबिशन् रोडपर एक किरायेके मकानमें रहते थे। उनकी परिस्थिति उन्हें आज्ञा नहीं देती थी कि वे किरायेके मकानमें—उसपर भी अधिक किरायेके मकानमें—रहें। उचित यह था कि वे उसे छोड़ देते, पर किराया चुकताकर छोड़ना लाजिम है इसलिये वे छोड़ न सके, क्योंकि रुपये पास न थे। इस हालतमें न उन्होंने किराया दिया

और न मकान ही छोड़ा—किराया अधिक हुआ। अब दो ही सूरतें थीं—या तो करज करते या अदालतसे उनकी जायदाद कुर्क होती। जो हो, इतने आडम्बरकी कौनसी जरूरत थी। महज मामूली मकान रहनेके लिये काफी था।

विडम्बन जीवनका चित्र मैंने शुरूहीमें खींचा है। उस जीवनमें खर्च बहुत होता है—यहांतक कि कर्जके भारसे उक्त जीवन बितानेवाला व्यक्ति चूर रहा करता है। उसे अपने जीवनका तनिक भी आनन्द नहीं आता न वह सुखसे भोजन करता है न सोता है। चिन्ता राक्षसी रातदिन चैन नहीं लेने देती, न उसके मुखपर मधुरिमापूर्ण हंसी ही कभी दिखलायी देती है। हा, ऐसे आडम्बर और विडम्बनका त्यागकर भारतवासी सादगीके नमूने न बने तो ये अपनी सत्तातक खो बैठेंगे। यदि वे सादगी ढूंढ़ना चाहें तो उन्हें प्राचीन सभ्यताकी ओर जरा मुड़ना पड़ेगा और तब ये उसे पावेंगे।

प्रकृतिदेवीकी गोदमें जिस प्रकार मधुर मधुर कुसुमावलि खिलती है और बनावटका उसमें नाम नहीं, जैसे विकासोन्मुख अभिनव कलिकाएं बिना किसी प्रकारकी कृत्रिमताके विकसित हो उठती हैं, जैसे अन्यान्य जीव अपने जीवनमें बिना किसी नकली कार्यके अपना सौन्दर्यमय विकास करते हैं, उसी प्रकार प्यारे भारतीयो! आप भी अपना विकास करें; तब इसमें बनावटकी बातोंका नामोनिशान भी न रह जायगा अन्यथा आप पाश्चात्य सभ्यतामें पड़कर ऐयाशीके शिकार बनेंगे और अपनी

सभ्यतासे इतनी दूर जा पड़ेंगे कि फिर लौटकर वहांतक आना आपके लिये मुश्किल होगा।

प्यारे भारतीयो! आप ऋषि-सन्तान हैं। मैं समझता हूं, आपको ऋषि-सन्तान होनेका गर्व अवश्य है और होना ही चाहिये। तब आप ऋषि-जीवन क्यों नहीं व्यतीत करते हैं? शायद आप समझते होंगे कि पाश्चात्य वेश ऋषियोंके वेशसे सुन्दर जान पड़ता होगा; पर आपको यह कहावत याद रखनी चाहिये कि 'आत्मरुचि भोजन पररुचि शृङ्गार'। शृङ्गार वही है जो दूसरेके देखनेपर अच्छा मालूम हो। आप जो ऐलबर्ट फैशनके बाल कट-वाते हैं उसके लिये आपको दो आनेसे लेकर आठ आनेतक देने पड़ते हैं। इतनेपर भी उसकी शोभा कुछ नहीं। चेहरा देखनेपर गुण्डोंकासा या वेश्याओंकासा जान पड़ता है; क्योंकि सभी वही फैशन रखते हैं। मस्तकपर जान पड़ता है कि काली हांडी औंधी पड़ी है। मूंछोंके बिना पुरुषोंका मुख विकसित नहीं जान पड़ता। छोटी, अधकटी या बीचसे मुड़ी मूंछें अथवा बिलकुल ही गायब कैसी बुरी लगती है! मुख श्रीविहीन, कान्तिविहीन दीख पड़ता है! ऐयाशीमें लिप्त, विलासितामें गर्क लोगोंको रमणियोंका रात-दिन सहवास ही रुचता है, तिसपर भी वे उनका सान्निध्य इतना चाहते हैं कि उनसे अलग होनेमें उन्हें दुःख होता है; जुदाई सही नहीं जाती, ज़हरे इश्क पिये हुए हैं। वीर्य्य क्षय करते करते चेहरेका रंग फीका पड़ जाता है, बलके न रहनेसे कामाग्नि प्रज्वलित नहीं होती, तब वे मादकके गहरे शिकार

बन जाते हैं। इस प्रकार मादक और विलास दोनों उनके बल, उनकी चमक-दमकको हर लेते हैं; अब तो कान्तिशून्य चेहरा निहायत बुरा जान पड़ता है। सुस्ती आलस्यके वे शिकार बन न कुछ कर ही सकते हैं न अपना मस्तिष्क ही ठिकाने रख सकते हैं। इस प्रकार अपनी सभ्यता खोकर गैरोंकी सभ्यता अपना कैसे कैसे कुकर्म्मके वे वशीभूत हो जाते हैं! जब सरमें चक्कर आने लगता है, तब वे सुगन्धित तेल लगाया करते हैं सो भी नकली जिसका फल कुछ भी नहीं होता। हो भी कहांसे? ब्रह्मचर्य्य, वीर्य्यरक्षा जो बलशाली बनानेका तरीका—जबर्दस्त तरीका है, जिसका पालनकर व्यायाम—सुदृढ़ व्यायाम—हमारे ऋषि लोग करते थे और अत्यन्त बलशाली बने रहते थे, आजदिन उक्त सभ्यतामें पड़कर लापता है।

प्यारे भारतीयो! आप ब्रह्मचर्य्यका पालन करें अर्थात् ऋतु-कालमें अपनी सहधर्मिणीका सहवास करें, वह भी ऋतु-दर्शनकी रात्रिसे दसवीं रात्रिमें, तब आपका ब्रह्मचर्य्य नष्ट न होगा और सुपुत्र उत्पन्न होगा। एक वारके गमन करनेसे आपकी शक्तिका ह्रास न होगा और आप वीर्य्यशाली बने रहेंगे; शरीरमें बल रहनेसे बहुतसे काम आप स्वयं कर लेंगे, दीपन पाचन प्रबल रहेगा और जिस कान्तिको आप अपने चेहरेमें देखना चाहते हैं वह आपको उसमें दीख पड़ेगी। यदि केशका शौक है तो भारतीय ढंगका रख लें। मूंछोंकी शोभा है इसलिये उन्हें रक्खें और बढ़ाकर रक्खें। अपने देशकी बनी चीजें अपनावें;

क्योंकि आपको स्वाधीनताकी जरूरत—सख्त जरूरत—है। संसारके प्रायः सभी देश आजाद हो रहे हैं और आपको गुलामीकी नींद सोना अच्छा लग रहा है।

ऐ मेरे प्यारे देशवासियो ! आपको पाश्चात्य शासनमें रहते सदियां बीत चुकीं, पर आपने उन लोगोंसे एक भी गुण सीखा हो सो नहीं। यहांतक कि आप अपनी सभ्यता भूल गये, अपनी सत्तातक खोनेको तैयार हैं; और जो आपपर शासन करते आ रहे हैं उन्होंने भूलनेके बदले अपनी सभ्यताकी उन्नति की और इसीलिये उनकी सत्ताका मूल पातालमें पहुंच गया है और इतना मज़बूत है कि किसी भी प्रकारसे वह उखाड़ा नहीं जा सकता। उनकी सभ्यतासे कुछ मतलब नहीं! पर अपनी सभ्यता और सत्ताको बचाना बहुत ज़रूरी है इसलिये आपको अपने देशके कला-कौशलको भलीभांति उत्साह प्रदान करना ही होगा, अर्थात् अपने देशकी बनी हुई चीजें आपको खरीदनी होंगी; तब आपका व्यापार बढ़ेगा। जिस देशमें कलाकौशलका नाम नहीं, वहांका व्यापार गिर जाता है, और जहांका व्यापार गिरा हुआ है वहांकी सम्पत्ति-सबन्धी अवस्था बड़ी ही भयानक—दीनहीन है। वह देश बराबर उन्नतिका स्वप्न ही देखा करता है, पर यथार्थमें अवनति ही अवनति दिखायी पड़ती है। इसलिये आपको अपने देशकी दुरवस्था दूर करने और उसे सुधारनेके लिये अपने देशकी बनी चीजें-वस्त्र, खाद्य, परिधानीय वस्तुएं अथवा विलासिता-

प्यारे देशवासियो! ऋषियोंका सादा जीवन और उनके उच्च विचार सुने जाते हैं। क्या आप भी हर एक जीवनकी बातमें सादगी दिखलायंगे? यदि हां, तो याद रक्खें कि भोजन पुष्टिकर एवं और और बातें सादगीसे भरी रहेंगी। जीवनमें आडम्बर एवं विडम्बनके दर्शनतक न होने चाहिये। फिर ऋषियोंके पास कौनसी सिद्धि न थी? प्रायः सभी सिद्धियां उनके सामने हाथ बांधे खड़ी रहा करती थीं। शारीरिक बल उनमें इतना बढ़ा चढ़ा रहता था कि 'परशुरामजीके द्वारा राजा सहस्त्रार्जुनका वध' एक ऐसी वीरताका परिचायक है जिसके सामने आश्चर्यसे सभी मस्तक झुकाते हैं। जब शरीरमें बल बढ़ता है तब स्वाधीनताकी चाह उत्पन्न होती है। वही व्यक्ति स्वाधीन हो सकता है जिसके शरीरमें बल है, यद्यपि मानसिक और आर्थिक बलकी भी इसके लिये सख्त जरूरत पड़ती है।

प्रकृतिदेवीने ही स्वाधीनताकी शिक्षा दी है। जबसे सृष्टिका विकास हुआ उसी समयसे उक्त देवीने उसे स्वाधीन बना दिया। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश जिनके द्वारा—जिन मुख्य तत्वों द्वारा—सृष्टि रचना हुई है, सबोंके लिये प्रकृतिदेवीने एकसा कर दिया, सब इन तत्वोंपर समान अधिकार रखते हैं। यहांतक कि सूर्य्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र आदिसे सारी सृष्टि समान लाभ उठाती है। जीव जो सृष्टिमें उत्पन्न होते हैं, सबका भोजन ही जन्मसे स्वाधीन रहता है। इसलिये परमात्माका यह नियम जान पड़ता है कि सबको स्वाधीन रहना चाहिये।

सृष्टिके विकासका मुख्य कारण जो प्रसन्नता है उसे स्वाधीनता ही ला उपस्थित करती है। पराधीनता प्रसन्नताको नष्ट करती है। बिना प्रसन्नताके पूरा पूरा विकास नहीं होता। विकासके अभावमें जीवन निरर्थक रहता है। इसलिये स्वाधीनताकी प्राप्ति अवश्य करनी चाहिये, खासकर दीन-हीन भारतको, जहां स्वतन्त्रता नाममात्रकी भी नहीं है।

परमात्माकी सृष्टिमें जितने पशु हैं सभी स्वतन्त्र हैं, जितने पक्षी हैं सभी स्वतन्त्र हैं, मनुष्योंका तो कहना ही क्या है, कीट-पतङ्ग आदि सब प्रकारके प्राणी स्वतन्त्रताका आनन्द लेते हैं, तब क्यों बलवान दुर्बलोंको दबाकर उनकी स्वतन्त्रतामें बाधा डाला करते हैं? उनका ऐसा करना कदापि उचित नहीं समझा जा सकता। उन्हें ऐसा करना न चाहिये। वही व्यक्ति ऐसी दशामें स्वतन्त्र हो सकता है जिसने ब्रह्मचर्य्यकी रक्षा कर व्यायामसे शारीरिक बल बढ़ाया है और भारतीय शास्त्रों और वेदोंका पूर्ण अध्ययन और मननकर मानसिक बल बढ़ाया है। जहां शारीरिक और मानसिक बल है वहां आर्थिक बल स्वतः हो जाता है। इन्हीं तीनों बलोंपर स्वाधीनता निर्भर रहा करती है। प्यारे! इसे अवश्य अपनाना चाहिये, बड़ेसे बड़े, अधिकसे अधिक मूल्यपर भी यदि यह मिले तो इसे प्राप्त करना चाहिये। इसके बिना जीवन निरर्थक है; वह अनुकरणीय नहीं हो सकता, क्योंकि प्रसन्नताका अभाव ही रहेगा।

प्यारे देशवासियो ! स्वतन्त्रता या स्वाधीनताके होनेपर यदि उदारता न हुई तो वह जीवन अनुकरणीय नहीं कहा जा सकता । अनुदार व्यक्ति स्वाधीनता-सम्पन्न होनेपर बहुत सम्भव है कि किसीका उत्पीड़न करे; इसलिये उदारता यदि न हुई तो जीवनमें अनुकरणीयता नहीं आ सकती ।

उदारताका अर्थ है हर एक बातमें अच्छा सलूक करना । बड़ेसे बड़े अपराधीको भी उतना ही दण्ड देना जितनेको वह प्रायश्चित्त समझकर खुशीसे भोग ले, दण्ड देनेपर भी उस अपराधीको उसके भोगनेके लिये समाश्वासन देना, किसी बातमें भी हृदयकी, मनकी, विचारकी, वाणीकी और कार्य्यकी संकीर्णताको स्थान न देना एक सच्ची उदारता है । प्यारे भारतवासियो ! जो जो बातें आपके हृदयमें, मनमें उगें, जैसे जैसे विचार मानस-पट्टपर अङ्कित हों, जिन जिन बातोंको आप अपने मुखसे निकालें और उनके अनुसार कार्य्य करें, उन सबमें सब प्रकारकी उदारताका परिचय देना आपको उचित है । इस गुणकी प्राप्ति सत्संगतिसे तो होती ही है, परन्तु स्वार्थत्याग भी बहुत करना पड़ता है । जबतक मनुष्य स्वार्थत्यागी नहीं होता, तबतक उसमें यथार्थ उदारता नहीं आती । इसलिये भारतवासियो ! अपने जीवनको अनुकरणीय बनानेके लिये आपको स्वार्थत्याग भी करना पड़ेगा; तभी तो आप यथार्थ उदार बनेंगे । उदारता प्राप्त करनेके लिये भारतीयो ! आपको क्षमाका आश्रय भी अधिक लेना पड़ेगा; क्योंकि क्षमाके बिना स्वार्थत्याग होना

कठिन है और उसके अभावमें उदारता नाममात्रकी—शायद वचनोंमें ही—रह सकती है, न कि कार्य्योंमें।

उपर्युक्त सारे गुणोंके होनेपर यदि समवेदना और सहानुभूति उस व्यक्तिमें नहीं है जो अपने जीवनको अनुकरणीय बनानेकी चेष्टा करता है तो उसका वह जीवन पूर्णतया अनुकरणीय कदापि न होगा, वह अधूरा ही रह जायगा। प्यारे भारतीयो! जब आप औरोंके दुःखमें दुखी और सुखमें सुखी होंगे, तभी आपका जीवन आदर्श होगा, दूसरे आपको अपना अग्रेसर समझकर आपके गुणोंको अङ्गीकार करेंगे। क्या आप भारतकी सड़कोंपर रोगियोंका, अनाथोंका दृश्य नहीं देखते? क्या उन्हें देखकर आपके हृदयमें दयाके भाव कभी उदित हुए हैं, यदि उदित हुए हैं, तो उन्हें दयासे और भी आर्द्र करनेकी आवश्यकता है। तब आप देखेंगे कि आपमें दयानिधि बननेकी शक्तिका संचार होगा और उसके प्रतापसे आपमें जगत्प्रेम उत्पन्न होगा। इस प्रकार आप प्रेममूर्त्ति होकर सारे भारत, नहीं नहीं—सारे जगत्‌की सेवा करनेके लिये कमर कसकर तैयार रहेंगे। आप दुखियोंके दुःखपर आँसू बहाया करेंगे और सुखी-समृद्ध लोगोंकी सुख-सम्पत्तिपर आप आनन्द प्रकाश करते रहेंगे। यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जिसके हृदयमें दर्द होता होगा, तो आपके हृदयमें दर्द होने लगेगा। इस गुणहीका नाम समवेदना और सहानुभूति है, यथा नाम तथा गुणः।

ऊपर जिन गुणोंका वर्णन किया गया है वे सब जिस

व्यक्ति विशेषमें होते हैं उसके हृदयमें उपकार-बुद्धि स्वतः उत्पन्न हो जाती है। फिर तो वह व्यक्ति मन, वाणी और कर्म्मके द्वारा सदासर्वदा उपकार किया करता है; अपने आपको विस्मृत करता हुआ लोकोपकारमें ही अपना सर्वस्व न्योछावर करता है, उसीको अपना सात्विक आनन्द मानता है, वही उसका मुख्य धर्म-कर्म बन जाता है।

यथार्थमें किसीका भी उपकार करना परम धर्म है, यदि वह अपने देशपर किसी प्रकारकी आपद् न लावे; क्योंकि एकके उपकार करनेसे सारे देशको यदि कष्ट उठाना पड़े तो यह उपकार यथार्थ उपकार नहीं हो सकता; वह तो देशोत्पीड़नमें पलट जाता है, इसलिये ऐसा उपकार कदापि नहीं होना चाहिये जिससे दूसरा हानि सहनेके लिये बाध्य किया जाय। हां, उपकारकी महिमा बड़ी भारी है। संसारमें इससे बढ़कर दूसरा कोई कार्य्य नहीं, इससे बढ़कर दूसरा कोई पुण्य नहीं। तभी तो महाभारत और अष्टादश पुराणोंके रचयिता महात्मा वेदव्यासने कहा है कि "पुण्यं परोपकाराय पापाय परपीड़नम्।"

प्यारे भारतवासियो! जीवनको अनुकरणीय बनानेके लिये उपर्युक्त गुणोंके अलावा यम-नियमोंकी बड़ी आवश्यकता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, परिग्रह, ब्रह्मचर्य—ये ही यम कहलाते हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान—ये नियम कहलाते हैं। इन दोनोंको; अर्थात् यम-नियमोंको जीवनमें प्रधान स्थान देनेसे जीवन अनुकरणीय बन जाता है।

प्यारे भारतवासियो! इस प्रकारका अनुकरणीय जीवन, आपके लिये आदर्श है। आप यदि इसका अनुकरण करेंगे तो अपने ही देशके लिए नहीं वरन् सारे संसारके लिये आदर्श होंगे। इन्हीं गुणोंसे सम्पन्न हो आपके भारतवर्षके कितने ही महात्मा लोग यद्यपि लीला सम्वरण कर चुके हैं तथापि अपने अपने जीवनका अनुकरणीय आदर्श यहां छोड़ गये हैं। ऋषियोंने, जिनकी सन्तान होनेका आपको पूर्ण अभिमान है, आपके लिए एकसे एक आदर्श छोड़ रखा है। आपको उचित है कि आप उनके आदर्शका अनुकरण करें। तभी तो आप वर्त्तमान समयमें सच्चे और अनुकरणीय नागरिक बनेंगे। आपहीकी ओर आपका देश—दीन भारत दृष्टि लगाये बैठा है। इसलिये यह आपको उचित है कि उस दीन भारतकी उन्नति कर उसे उठावें।

प्राचीन समयके ऋषियोंके आदर्श पर ही तो अर्वाचीन समयके नेता लोग चले आ रहे हैं। पर प्यारे भारतीयो, मेरा मतलब सच्चे नेताओंसे है; नकली नेताओंसे मुझे देशहितकी कदापि आशा नहीं। यदि देशका अहित उनके हाथों न हो तो वही बहुत है; देशहित करनेकी उनमें योग्यता ही नहीं है। उन्होंने स्वार्थका त्यागतक नहीं किया है; फिर देशहितकी बातका उनसे क्या भरोसा किया जाय? देशहितकी जिसके मनमें इच्छा रहती है, वह उसे ही अपना मुख्य ध्येय समझता है, वह उसीके पीछे दिन-रात लगा रहा करता है, उसीका ध्यान हरवक्त उसके मनमें जमा रहा करता है, वही सच्चा राष्ट्रीय संन्यासी है।

देशहितके लिये वह हर वक्त चिन्ता किया करता है। उसे देश-हितके मार्गमें चाहे जितने कण्टक मिलें, सबोंका वह संशोधन करता है। सब प्रकारके कष्टोंको वह देशहितके लिये सहन करता है। जिस प्रकार धार्मिक व्यक्ति धर्मके ख्यालसे, साम्प्रदायिक व्यक्ति सम्प्रदायके ख्यालसे उसके नियमोंका पूर्णतया पालन करते हैं, उसी प्रकार सच्चा देशहितैषी व्यक्ति देशहितको ही अपना धार्मिक नियम, देशसेवाको ही अपना साम्प्रदायिक कृत्य समझता है। वह देशवासियोंसे भिन्न ईश्वरको भी नहीं समझता। उसकी दृष्टिमें दीन-हीन दशावाले दरिद्र, अनाथ लोग जो फटे-चिटे चिथरे पहनकर नाममात्रके लिये लज्जा निवारण करते हैं, कापालिक भैरवके स्वरूप जान पड़ते हैं; और वह उनकी सेवाकर भैरवस्वरूप शङ्कर महादेवकी पूजा करना समझता है। जब वह सब प्रकारकी, सब अवस्थाकी, सब श्रेणीकी दीन-हीन, अनाथ, रोगी स्त्रियोंकी सेवा करता है, उस समय वह दश महाविद्याओंकी पूजा-अर्चा स्वतः की गयी समझता है। जब वह अनाथों एवं दीनोंकी मण्डलीको भोजन कराकर वस्त्र देता है उस समय वह सत्यनारायणकी पूजा स्वतः सम्पन्न की गयी समझता है। प्यारे भारतीयो! मेरा ऐसे ही सच्चे, देशहितैषी नागरिकसे, जो नेताकी उपाधि नाममात्रके लिये धारण करता है, मतलब है। ऐसा ही नेता—ऐसा ही नागरिक विश्वात्माका सच्चा भक्त है। ऐसे नेताकी चरणधूलि परम पवित्र है। ऐसे नेता आपके देशमें अर्वाचीन समयमें थे भी और

हैं भी। आपको उनके ढूंढ़नेकी जरूरत नहीं है। क्या कोई सूर्य्य-चन्द्रमांको ढूंढ़ता है? कदापि नहीं। वे तो स्वयं प्रकाशमय हैं; उनके आलोकसे जगत् आह्लादित होता है। प्रत्येक जीवको आपसे आप उनके दर्शन होते हैं। दिन तथा रात्रिके वेही प्रत्यक्ष देवता हैं!

प्यारे भारतीयो! मैं समझता हूं कि मेरे इशारेसे—सूर्य्य, चन्द्रमाका नाम लेनेसे आपको अर्वाचीन समयके उन दोनों सच्चे देशहितैषी नेताओंका ज्ञान हो गया होगा, क्योंकि जैसे सूर्य्य-चन्द्र नहीं छिपे हैं वैसे वे दोनों लोकमान्य और कर्मवीर भी नहीं छिपे हैं। पहले नेता जो वैकुण्ठके अतिथि हुए हैं, श्रीयुक्त बालगङ्गाधर तिलक थे। ये महात्मा विद्याओंसे पूर्ण, अनुभवोंसे युक्त, राजनीतिमें निपुण विदेषी भाषाओंसे भलीभांति परिचित एवं प्रसिद्ध देशभक्त थे। आपने देशसेवा सम्पन्न करते हुए जो कष्ट सहे, वे वर्णनातीत हैं। यद्यपि आप छः वर्षों तक कृष्ण-भवनके अतिथि रहे और कष्ट झेले, तथापि आपके देशहित-सम्बन्धी विचारोंमें जरा भी अन्तर नहीं पड़ा। आप सच्चे देशभक्त थे, इसी लिये भारतवर्ष ही क्या—सारा भूमण्डल आपका समादर करता था। इतना समादर और सच्चा देशहित करते देख, इन्हें भारतीय जनताने लोकमान्यकी उपाधि दे डाली। आप संस्कृत शास्त्रोंके अच्छे गंभीर विद्वान् थे। आपने वेदोंका खूब मनन किया था। आपकी बुद्धि विचार करनेमें अप्रतिहत गति रखती थी। आपका बहस बड़ा ही तर्कपूर्ण और युक्तिसंगत होता था। अङ्गरेजी आदि

कई विदेशी भाषाओंपर भी आपका अधिकार था। गणितशास्त्रके आप उद्भट विद्वान् थे। वेदान्तमें आप भलीभांति निपुण थे, तभी तो आपने कई ग्रंथ बनाये और उत्तम ग्रंथ बनाये जिनका भारतहीमें नहीं बल्कि पाश्चात्य संसारमें भी समधिक आदर हुआ। कई निबन्ध आपने लिखे और सब योग्य साबित हुए।

आपका जीवन जो ऐसा आदर्श हुआ इसका कारण यह था कि पहले लड़कपनमें संस्कृतका अध्ययन हुआ। बादमें अङ्गरेजी पढ़ाई गयी और आप बी० ए० एल० एल० बी० हो गये। इनकी विद्या पुस्तकस्थ नहीं थी बल्कि जिह्वाग्र थी और पढ़नेसे अधिक वे अपनी विद्याको गुना करते थे। लड़कपनमें जो संस्कृतका प्रभाव जीवनपर पड़ा वह अपनी निष्ठा, अपने धर्म्म-कर्म्ममें इन्हें निपुण एवं कट्टर बना बैठा। विद्याध्ययनके साथ साथ व्यायामने आपके शरीर और मन दोनोंको पुष्ट बना डाला। आप पेशवा खान्दानके थे। पूनामें आपका बड़ा विशाल मकान है जो गढ़ोंकी समता करता है। देशप्रेम आपमें कूट कूटकर भरा था! देशसे-वाले अन्य आपके जीवनका दूसरा लक्ष्य ही न था। आपके हाथमें देशसेवाके दो अमोघ अस्त्र थे। वे थे व्याख्यान और प्रकाशन। जिस बातको विपक्षमें देखते थे उसके विरुद्धमें व्याख्यान देते और प्रकाशन करते थे, तथा जिस बातको पक्षमें देखते थे, उसके पक्षमें वक्तृता देते व लेख प्रकाशन करते थे। आपका बनाया गीतारहस्य ऐसी सुन्दर रीतिसे प्रकाशित हुआ कि उसे देख प्रसिद्ध २ विद्वान् भी अवाक् रह गये। शङ्कराचार्य प्रभृति उद्भट

विद्वानोंने जिसे ज्ञानपरक सिद्ध किया, उसे लोकमान्यने कर्मपरक सिद्ध किया। क्या इनसे पहलेके विद्वान् टीकाकार भांग खाये हुए थे जो ऐसी गलती कर गुजरे? तबसे भारत देशसेवाकी ओर बड़े जोरों कर्मयोगमें दत्तचित्त है पर तैंतीस करोड़की जनसंख्यामें इतनी तेजी पर्य्याप्त नहीं कहा सकती।

लोकमान्यने देशसेवा करते हुए पहले पहल स्वराज्यकी आवाज उठायी थी सो भी ऐसे समय जब किसीको इस बातका साहसतक भी न होता था कि शासकमण्डलीके विरुद्ध स्वराज्यकी आवाज उठायी जाय। यद्यपि उसके फलस्वरूप छः वर्षोंके लिये लोकमान्यको मांडले (रंगून) का किला कारागारके रूपमें मिला, तथापि उसके अंदर एक अमूल्य साहित्यरत्न—गीतारहस्यकी सृष्टि हुई जिसने देशसेवामें बड़ी तत्परतासे लोगोंको अग्रसर किया।

लोकमान्यको एक अङ्गरेज व्यक्तिने जिसका नाम वेलेंटाइन शिरोल था, बलवायी कह डाला था जिसपर लोकमान्यने विलायत जाकर, यद्यपि जर्मन महासमर छिड़ा हुआ था, उसपर मुकदमा दायर किया था। बड़ी बेतरह बहस हुई, लोकमान्य अपनी ओरसे आप बहस करते थे। आखिरकार कायल होकर विचाराधिपतिको दंग रह जाना पड़ा। पर विपक्षीने लाचार होकर यह बात सुझायी कि लोकमान्यको मुकदमेमें विजयी बना देनेपर भारतके अङ्गरेजोंका प्रभाव कितना घट जायगा जिन्हें भारतवासियोंके साथ हमेशा बरतना है। यह सोच लें तब फैसला दें। इसीपर

विचारपतिने लोकमान्यके विरुद्ध फैसला दिया और उक्त बातको अपने फैसलेमें लिख दिया। इतनी दूर जाकर कई लाख रुपयोंकी हानि उठाकर लोकमान्यको यद्यपि वही फल मिला जो यहां मिल चुका था, तथापि वहां जानेके साथ ही, इनने भारतकी सच्ची अवस्था व्याख्यानों एवं छोटी पुस्तिकाओंके प्रकाशनके जरिये सबोंके कानमें डाल दी,अपने ध्येयको भी जनाया,भारतमें बनाकर प्रचलित किये गये सारे कानूनोंकी त्रुटियांतक लोगोंको दिखलायीं जिनमें स्वार्थपरताकी मात्रा बेतरह भरी हुई थी। शेषमें लौटकर आप भारत आये और अपने ध्येयमें दत्तचित्त हुए। जो काम आजतक किसीने नहीं किया था उसे लोकमान्यने-सो भी वहां जाकर—कर दिखाया। इससे बढ़कर देशसेवा क्या होगी?

लोकमान्यके इंगलैंड चले जानेपर शासकमण्डलीने वह रौलट ऐक्ट पास करना चाहा जिसका जिक्र पहले हो चुका है। यदि लोकमान्य यहां रहते तो वे भी इसके विरुद्ध आवाज अवश्य उठाते;क्योंकि यह स्वतंन्त्रताका एकदम नाश करनेवाला था। पर उनकी अनुपस्थितिमें भी सारे देशने एक स्वरसे उस दुष्ट कानूनका विरोध किया और अन्तमें महात्मा गांधी इस युद्धमें कूद पड़े जिसका फल यह हुआ कि अमृतसरका जलियानवालाबाग भारतीय हिन्दू-मुसलमानोंके खूनसे रंगा गया और इसलिये वह एक बड़ा राष्ट्रीय तीर्थ बन गया।

दूसरे नेता जिनकी उपमा चन्द्रमासे दी गयी है, स्वनामधन्य हृदय-सम्राट् श्रीयुक्त मोहनदास कर्मचन्द गांधी हैं जिनकी देश-

सेवाओंसे सन्तुष्ट हो भारतीय जनताने उन्हें कर्मवीरकी उपाधि दे डाली। महात्मा गांधी यथार्थमें कर्मवीर, धर्मवीर और राष्ट्र-वीर हैं। देशसेवा करनेमें जो कर्मवीरता आपने दिखलायी, उसका परिचय मैं यहापर भलीभांति देता हूं।

महात्मा गांधी गुजरात प्रान्तके अहमदाबादके रहनेवाले हैं। जिस समय इन्होंने अपनी भाषाकी शिक्षा प्राप्त की और अंगरेजी पढ़कर बैरिस्टरीकी उपाधिसे भूषित हो अदालतमें वकालत करने लगे; तभीसे आपका झुकाव सत्यकी ओर बराबर रहता था। तात्पर्य यह है कि जितने मुकदमे आप लेते थे वे सब सच्चे ही होते थे। एक बार आपको एक मुकदमा लेकर अफ्रिका जाना पड़ा। वहां जानेपर निर्दिष्ट रास्ता छोड़कर अन्य मार्ग द्वारा चलनेके लिये इन्हें काला आदमी देख भारतीय समझकर गोरोंने बूटोंकी ठोक-रोंसे मारा, सीढ़ीपरसे ढकेल दिये गये। ये जैसे कमजोर हैं मर ही जाते पर एक पादरीने उनकी मरहम पट्टीकर रक्षा की। इन्होंने भारतीयोंका अपमान अपनी आंखों केवल देखा ही नहीं था बल्कि स्वयं मार खाकर अनुभव भी किया था, इसलिये मुकदमेका लक्ष्य छोड़ बैरिस्टरीको तिलाञ्जलि दे वहां भारतीयोंपर गोरी जाति द्वारा होते हुए अत्याचारको दूर करनेके लिये भिड़ गये। आपका एक मात्र अस्त्र अंहिसा है। आपको इसपर बड़ा विश्वास है। इसे आप अमोघ शक्ति समझते हैं। बात भी सत्य है। मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसा करते हुए, कष्टसमूह झेलते हुए काम करते चले जाओ तो कामके अग्रसर होनेमें किसी प्रकारकी रुकावट नहीं

होगी। तदनुसार महात्माजी अहिंसाका अवलंबन कर अपनी सहधर्मिणी और शिशुपुत्रके साथ भारतीय जनताको वहां समझा बुझाकर काम करने लगे और भारतीयोंने अपने लिये निर्दिष्ट की हुई सीमाका उल्लंघन किया जिसके लिये महात्मा जेलमें रक्खे गये और वहां पाखाना फेंकनेका काम आपसे लिया गया। खैर, तारीफ इस बातकी है कि महात्मासे जेलके अफसर भी खुश ही रहते थे; क्योंकि ये सच्ची देशसेवा करते थे। अफ्रिकामें महात्माजी जिन अत्याचारोंको दूर करना चाहते थे और जिनके लिये जेलके कष्ट सहते थे वे सब दूर हुए और उस कार्य्यमें स्वनामधन्य प्रसिद्ध देशभक्त महात्मा गोखलेने भारतसे अफ्रिका और इङ्गलैंड जा-आकर महात्मा गांधीकी बड़ी सहायता की; अन्यथा महात्माजी शायद अफ्रिकाहीमें अपने जीवनसे हाथ धो बैठते। इसका कारण यह है कि अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये गोरी जाति भारतीयोंके प्रति सर्वदा निर्दयताकी पराकाष्ठा दिखला सकती है।

अफ्रिकासे सफल होकर लौटनेपर महात्माजी भारतके उद्धारमें प्रवृत्त हुए। उस समय चम्पारन जिलेमें निलहे गोरोंका अत्याचार अफ्रिकाके समान ही था। मजदूरोंकी मज़दूरी बिल्कुल कम मिलती थी जिससे अपना पेट भरना दूर रहता और स्त्री-पुत्र भूखों मरा करते थे। रातको सड़कपर किसीकी गाड़ी आने-जाने नहीं पाती थी। गाड़ीवान इतना डरते थे कि वे गाड़ी चलाते ही न थे। महात्माजीने प्रत्येक गांवमें जा जाकर प्रत्येक व्यक्तिसे इन अत्याचारोंकी पुष्टि करवा कर रिपोर्ट दी जिससे

सरकारी कमीशनने परिस्थिति जाचकर गरीब मजदूरोंकी मज़दूरी बढ़वाई और गाड़ी चलानेके लिये जुर्माना वसूल करनेपर निलहे साहबकी इस कार्रवाईको गैरकानूनी कह कर सरकारी अदालतमें उसे दोषी ठहराया और उसपर जुर्माना किया गया।

रौलट ऐक्टके समय जो देशसेवा महात्माजीने की वह वर्णनके परे है। सत्याग्रह करते हुए इनने जो असहयोगका प्रचार किया और तदनुसार देशमें भांति भांतिके भावपूर्ण चित्र तैयार हुए और देश स्वराज्य-पथकी ओर लगातार बढ़ता ही चला गया, इसकी जहांतक प्रशंसा की जाय थोड़ी है। देशमें हस्त-कौशल लानेवाला खद्दर लोग बड़े प्रेमसे, बड़ा पवित्र समझ कर पहनने लगे और यह विलायतीकी अपेक्षा बहुत ही टिकाऊ साबित हुआ, शान शौकत जाती रही, पैसा बहुत बचा, क्योंकि एक बार खरीदा और वह वर्षोंके लिये काफी हुआ, बादमें भी फटे अंशको काटकर और और चीजें उससे तैयार हुईं। स्वराज्यमात्र ही भारतीय जनताका अब ध्येय हो रहा है। भारत बगैर इसे प्राप्त किये चैन भी नहीं लेगा। असहयोग मज़ेमें चल रहा है। जनता असहयोगकी सफलताको खूब समझ चुकी है। पर सरकारके नौकर और पेंशन पानेवालोंकी संख्या बहुत बड़ी है और सरकार नोटोंके जरिये उन्हें वशीभूत किये हुई है जिनकी खपत सिवा भारतके अन्यत्र नहीं है। इस प्रकार भारतके हृदयमें एक बड़ा घाव नासूरकी किस्मका हो रहा है जो मरहम पट्टी सुनता ही नहीं। सिवा असहयोगके दूसरी औषधि

उस नासूरकी नहीं है, इसीसे भारत चंगा होगा यही आशा लोगोंको है।

कई जगहोंमें दंगे भी हुए हैं जिन्हें सरकार असहयोगियोंपर थोपती है और ये उन्हींपर उत्तेजना देनेका दोष लगाते हैं। पर महात्माजीने दुःखी होकर इन दंगोंके कारण अनशन भी किया और जनताने जिसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पार्सी आदि भी हैं उन्हें भोजन भी कराया और आपसमें सब मिल जुल गये।

असहयोगमें सरकारसे सहयोग करना मना है। इसीलिये असहयोगी विदेशी वस्तुओं, अदालतों, सरकारी नौकरियों और संस्थाओं तथा उपाधियोंतकका बहिष्कार करते हैं। यही कारण था कि सारे देशने सम्राट्के चचा और पुत्र युवराजके आगमन-तकका भलीभांति बहिष्कार किया, इसलिये, उनके भारत आनेके उपलक्ष्यमें उत्सव फलीभूत नहीं हुए। यह काम स्वयंसेवकोंने किया था, इसलिये वे बेतरह जेलोंमें ठूंसे गये जिनमें कितने ही स्वर्गलोकके अतिथि हुए। आज दिन सेवाके लिये जेल जाना पुण्य समझा जाता है और मरना तो देशोद्धारके लिये पुनर्जन्म पाकर इसको स्वतन्त्र बनाना ही असहयोगी मान बैठे हैं। मरना इनका निरर्थक नहीं; क्योंकि वह किये गये अत्याचारके प्रति घृणामें परिवर्त्तित होगा और देश-स्वतन्त्रताकी खोजमें आगे बढ़ेगा।

जैसे सभी देश उत्पीड़न पाकर असहयोग करते हुए स्वतन्त्रताकी प्राप्ति करते हैं वैसे ही भारतसे गुलाम देशने भी असहयोग किया। इसलिये इसके जन्मदाता महात्माजी, जो सत्याग्रह

और निष्क्रिय प्रतिरोध करनेपर तुले हुए थे और लोगोंको सरकारी मालगुजारी न देनेके लिये कहनेको थे,जेलके अतिथि बनाये गये। बहुत सम्भव था कि ऐसे हृदय-सम्राट्के लिये जनता अपनी जानें दे डालती, क्योंकि उत्तेजित होना उसके पक्षमें स्वाभाविक था, पर महात्माके उपदेशने उसे टससे मस नहीं होने दिया। ऐसे अहिंसा-व्रतके व्रती महात्माको जेलकी सजा जो मिली थी इससे सारा सभ्य संसार व्यथित हुआ था। इसीका नाम अनुकरणीय जीवनका आदर्श है, इसीका नाम सच्ची देशसेवा है! महात्माजीके शरीरमें बल बिलकुल नहीं है; वे दुर्बल हैं, इतनी आदर्शमें कमी है, पर मानसिक बलने उसे पूर्ण कर लिया है। उनका देशसेवाका जो आदर्श है वह एक सच्चे भक्तका है जिसे मैंने, खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर (पटना) से प्रकाशित होनेवाली साप्ताहिक पत्रिका "शिक्षा" के खण्ड २७ संख्या १२ में, 'सच्चे भक्तकी जांच' शीर्षक कवितामें; व्यक्त किया है। प्यारे भारतीयो! आप कृपा कर उसे अवश्य पढ़ें और वैसा ही आदर्श अपना रक्खें। कविता इस प्रकार है—

१—विनययुत रसीली स्नेह-वाक्यावलीसे
सुजन-समितिमें जो स्वर्ग-गङ्गा बहाता,
उचित पथ दिखाके लोकको जो चलाता,
उस बुध जनने ही भक्ति-सर्वस्व पाया।

२—अहह! अमित रोगी आज क्या कष्टमें हैं!
किस विधि उन सबका दुःख हो दूर शीघ्र!
यह अनुभव करके अश्रु जो है बहाता,

वह सब विधि सच्चा भक्त है धर्मशाली।

३—विकलतम अनेकों घूमते हैं अनाथ,
पुरुष-गण कहीं पै, अङ्गनायें कहीं पै,
लख कर उनको जो है दयाको दिखाता,
वह सब विधि प्यारा भक्त विश्वेशका है।

४—पर-उपकृति जिसके चित्तमें जागती है,
नय-सहित जिसे है न्यायका मार्ग प्यारा,
अहित जिस किसीका देखके जो दुखी हो,
वह परम अनूठा भक्त है पुण्य-शाली।

५—तज कर अपना जो स्वार्थ, त्यागी बना हो,
सकल-भुवन-व्यापी ईशको जानता हो,
गुण-गण गुणियोंके चित्तसे मानता हो,
वह सरल प्रकृति वाला भक्त है कीर्त्ति-शाली।

६—कटु वचन किसी पै जो न भूले निकाले,
हृदय धवल जिसका शुद्ध, सच्चा, उदार,
निज-कृत अपराधोंकी क्षमा चाहता जो,
उस मुनि-व्रत-धारीने लखा भक्ति-तत्व।

७—चरित, चलनसे जो उच्च आदर्श न्यारा
रख कर धरणी पै है अहिंसा सिखाता,
प्रतिसदन बहाता प्रेम मन्दाकिनी जो,
उस इक जनने ही भक्तिका तत्व जाना।

८—पर-धन जिसकी है मृत्तिका तुल्य साक्षात्,
परजन ललना को जानता जौन माता,
निज-सम सब जीवोंको सदा मानता जो,
वह इक जन प्यारा भक्त है न्यायशाली।

इति।

मालव-मयूर

राजस्थान (मध्यभारत और राजपूताना) का सचित्र मासिक पत्र, आकार बड़ा; पृष्ठ-संख्या ४०; मूल्य ३॥ वार्षिक।

सम्पादक

पं० हरिभाऊ उपाध्याय, महात्मा गांधीके "हिन्दी-नवजीवन"के उपसम्पादक।

मयूरका जीवन-कार्य

असत्य, अन्याय और अत्याचारका निर्भयता, शान्ति और विनय-पूर्वक विरोध करना तथा राजस्थानकी आन्तरिक शक्तिको जागृत और विकसित करना।

मयूरकी विशेषतायें

१. सत्य, शान्ति और प्रेम इसके जीवनका धर्म है।

२. यह विश्व-बंधुत्वका प्रेमी, राष्ट्रीय धर्मका उपासक और भारतीयताका अभिमानी है।

३. यह विवेक-पूर्वक प्राचीनताकी रक्षा करता है और नवीनताका स्वागत।

४. देशी--राज्योंको यह ममत्वकी दृष्टिसे देखता है।

५. विज्ञापनबाजीके अनर्थसे समाजको बचानेके लिये इसमें विज्ञापन नहीं लिये जाते। सिर्फ लोकोपयोगी विज्ञापन **मुफ्त** छाप दिये जाते हैं।

६. ललित कलाओंके नामपर विषय-विलास-प्रेरक सामग्रीका प्रचार करनेकी प्रवृत्तिका यह विरोधी है।

७. छपाई, कागज तथा पोस्टेजके अलावा किसी किस्मका खर्चा इसपर नहीं लगाया जाता है।

नोट—सस्ता-साहित्य-मंडलकी उन्नतिके सम्बन्धमें तथा कौन कौनसी पुस्तकें निकलीं और निकल रही हैं आदि सब बातोंका उल्लेख इस पत्रमें विशेष रूपसे रहता है।

कुछ सम्मतियोंका सार

पू० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—"मालव-मयूर" बहुत अच्छा निकला। छपाई और कागज उत्तम है। भाषा और विषय-योजना भी ठीक है।

सरदार माधवराव विनायक किबे—मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह एक उच्च कोटिका मासिक-पत्र है।

सर्वेन्ट आव् इंडिया—......ने एक महत्वपूर्ण पत्रकी वृद्धि की है। इस मासिक-पत्रका सम्पादन वे विशेष योग्यता और पूरी जिम्मेवारीके साथ करते हैं, जो कि हमें महात्मा गांधीकी प्रत्यक्ष देख-भालमें तालीम पाये सज्जनोंमें दिखा देती है।

प्रताप—"मालव-मयूर" में मौलिकता और सात्विकता है। अधिक विचार और विवेकके साथ चुनी हुई बहुतसी टिप्पणियां इसमें रहती हैं। हमें विश्वास है कि "मयूर" का मीठा और सात्विक ढंग अपना रंग अवश्य लावेगा और उससे म० भा० और रा० पू० के लोगोंकी अत्यन्त निर्बल और निर्जीव आत्माको बल मिलेगा।

मतवाला—सभी संख्यायें एकसे एक बढ़कर हैं। कवितायें और लेख बड़े ही सुन्दर, सरस और निर्दोष होते हैं। संपादकीय अंश अत्यन्त प्रशंसनीय होता है। अधिक पृष्ठ-संख्या वाले पत्र 'मयूर' से शिक्षा ग्रहण करें।

जयाजी प्रताप—लेख उच्च कोटिके हैं। उनपर दृष्टि रखते हुए अगला नंबर पिछलेसे बढा चढा मालूम होता हैं।...की टिप्पणियोंमें sense of proportion और sense of responsibility होती है, जिसकी इस समयके बहुतसे संपादकोंमें कमी नजर आती है।

कविकौमुदी—इसके सम्पादक हिन्दीके अच्छे और विचारशील लेखकोंमें हैं। संपादकीय नोटोंमें, उनकी स्पष्ट-वादिता, निर्भीकता और उत्तम विचारशैली देखकर चित्त प्रसन्न होता है।

पता—मालव-मयूर, अजमेर,
(राजपूताना)

लागत मूल्यपर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली
एक मात्र सार्वजानिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मंडल, अजमेर

उद्देश्य—हिन्दी साहित्यमें उच्च और शुद्ध साहित्यके प्रचारके उद्देश्यसे इस मण्डल- [का] जन्म हुआ है। विविध विषयोंपर सर्वसाधारण और शिक्षित समुदाय, स्त्री [औ]र बालक सबके लिए उपयोगी और सस्ती पुस्तकें इससे प्रकाशित होंगी।

इस मण्डलके सदुद्देश्य, महत्व और भविष्यका अन्दाज पाठकोंको होनेके [लि]ए हम सिर्फ उसके संस्थापकोंके नाम दे देते हैं—

[म]ंडलके संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज वर्धा, (२) सेठ [घन्श्य]ामदासजी बिडला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दजी (४) [ ] महावीरप्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० [ ]भाऊ उपाध्याय (७) बा० जीतमल लूणिया अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकोंका मूल्य—(१) प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंके लिये लगभग [लाग]त मात्र रहेगा अर्थात् उन्हें लगभग १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकें ३) में मिलेंगी। [य]ह उन्हें १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तककी पुस्तकें मिलेंगी। अर्थात् [पुस्त]कपर छपे मूल्यसे पौनी कीमतसे भी कुछ कममें उन्हें मिलेंगी। (२) [द्विती]य श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंसे पुस्तकपर छपे मूल्यपर (सर्वसाधारणके लिये) तीन [आ]ना रुपिया कमीशन कम करके मूल्य लिया जायगा अर्थात् उन्हें १) में लगभग [सा]ढे चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी (३) सर्वसाधारणको १) में लगभग चारसो [पृष्ठों]की पुस्तकें मिलेंगी। सचित्र पुस्तकोंका कुछ मूल्य अधिक रहेगा।

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली दो मालाएं

हमारे यहांसे सस्ती साहित्य माला और सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक माला ये दो [मा]लाएं निकलती हैं। वर्ष भरमें प्रत्येक मालामें लगभग सात आठ पुस्तकें [(क]म या ज्यादा) निकलती हैं और इन सब पुस्तकोंकी पृष्ठ-संख्या मिलाकर [लग]भग १६०० पृष्ठोंकी होती है।

प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहक

स्थाई ग्राहक होनेके नियम

नोट—मालासे निकली हुई पूर्व प्रकाशित पुस्तकें चाहे वे लें या न लें पर आगे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी एक एक प्रति उन्हें अवश्य लेनी होगी।

(१) वार्षिक ग्राहक—चूँकि प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें पोस्टे के अलावा ।) प्रति पुस्तक वी० पी० खर्च ग्राहकोंको अधिक लग जाता है अत यह सोचा गया है कि वार्षिक ग्राहकोंसे प्रति वर्ष ४) पेशगी लिया जाय अथ तीन रुपया १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकोंका मूल्य और १) डाक खर्च। वार्षिक ग्रा जिस वर्षके ग्राहक बनेंगे उस वर्षकी सब प्रकाशित पुस्तकें उन्हें लेनी होंगी।

(२) जो सज्जन ॥) प्रवेश फीस देंगे उनका नाम भी स्थाई ग्राहकोंमें स लिये लिख लिया जायगा और ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी वैसे वैसे पुस्त कका लागत मूल्य और पोस्टेज खर्च जोड़कर वी० पी० से भेज दी जावेंगी

नोट—इस तरह प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें वर्ष भरमें कोई द रुपया पोस्टेजका खर्च ग्राहकोंको लग जायगा।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें।

क्योंकि इससे आप बार बार वी० पी० छुड़ानेके झंझटसे बच जावेंगे पोस्टेजमें भी आपको बहुत ही किफायत रहेगी। और स्थाई ग्राहक फी आठ आने भी आपसे नहीं लिये जावेंगे।

द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहक

(१) जो सज्जन मालासे निकलनेवाली सब पुस्तकें न लेना चाहें, अ मनकी पुस्तकें लेना चाहें वे ऊपर लिखे नं० २ के प्रवेश फीस वाले ग्रा हो सकते हैं। पर उन्हें वर्षभरमें कमसे कम २) मूल्यकी पुस्तकें जि मालाके वे ग्राहक बनें उस मालाकी लेनी होगी।

नोट—आप जिस मालाके जिस श्रेणीके वार्षिक या प्रवेश फीस वाले ग्रा बनना चाहें खूब स्पष्ट लिखें। दोनों मालाओंके बनना चाहें तो वैसा लिखें

सस्ती साहित्य मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) द० आफ्रिकाका सत्याग्रह (म० गांधी) पृष्ठ २७२ मूल्य ॥) (२ शिवाजीकी योग्यता-पृष्ठ १३२ मूल्य ।≠) (३) दिव्य जीवन पृष्ठ १३६ मू ।≈) (४) भारतके स्त्री रत्न-पृष्ठ ४०२ मूल्य १≈) (५) व्यावहारिक सभ्यता-पृ १०८ मूल्य ।)॥ (६) आत्मोपदेश पृष्ठ ११२ मूल्य ।-)

सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग-पृष्ठ १५२ मूल्य ।≈) (२) सीताजीकी अग्नि-परीक्षा-पृष्ठ १२ मूल्य ।-) (३) कन्या शिक्षा-पृष्ठ ६६ मूल्य ।) (४) यथार्थ आदर्श जीवन-पृष्ठ २६ मूल्य ॥-) (५) स्वाधीनताके सिद्धान्त (टेरेन्स मेक्सविनी) पृष्ठ २०८ मूल्य ।)

☞ स्थाई ग्राहकोंसे पिछले पृष्ठपर दिये हुए "पुस्तकोंका मूल्य" इसके अनुसार ही मूल्य लिया जायगा।

पता—सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल, अजमेर